उपन्यास

अंधेरे के बाहर

भूमिका

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

रवीन्द्रप्रकाश कुलश्रेष्ठ

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी
जयपुर जोधपुर

प्रकाशक :

दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी
जयपुर जोधपुर

मुद्रक :

दी यूनाइटेड प्रिण्टर्स,
जयपुर

आशीर्वाद

श्री रवीन्द्रप्रकाश कुलश्रेष्ठ के इस उपन्यास की पाण्डुलिपि पढ़ने का मुझे समय नहीं मिला। उसका सार पढ़ा है। श्री कुलश्रेष्ठ की भाषा प्राञ्जल है और उसमें प्रवाह है। उन्होंने अपने उपन्यास में जिन पात्रों और घटनाओं का सृजन किया है, वे मनोरंजक हैं। डाकुओं का जिस रीति से लेखक ने सुधार प्रतिपादित किया है, उसके समर्थक भी हैं और घोर विरोधी भी। बात मनोविज्ञान के क्षेत्र की है। कुछ मनोविज्ञानशास्त्री उपन्यास में बतलाए समाधान से विपरीत मत रखते हैं, कुछ अनुकूल। साधारण पाठक जिन्हें ग्रामीण जीवन का अनुभव है, खास तौर से 'डाकू-ग्रस्त' कहे जाने वाले क्षेत्र का, वे इस उपन्यास को पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करें तो मनोविज्ञानियों के लिए भी महत्व की बात होगी। लेखक इस रचना के लिए बधाई के पात्र हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा

उपन्यास के बारे में

अंधेरे के बाहर प्रकाश भी है और सुखद समीर भी। स्वतंत्रता की श्वासें हैं और अदम्य जिजीविषा भी। चाहिए तो केवल अन्धकार से संघर्ष करने, उससे बाहर निकलने का दृढ़ संकल्प, चाहे अन्धकार भीतर का हो या चारों ओर छाया हुआ।

आदि महाकाव्य के रचयिता वाल्मीकि भी अमानवता के अन्धकार से घिरे एक दस्यु ही थे। मुनियों की वाणी ने प्रकाश दिया और वे महाकवि बन गए। हृदय परिवर्तन का यह मूल सिद्धान्त भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू के युग तक हृदय परिवर्तन के प्रयोग, मानवता के इतिहास में निर्माणकारी सिद्ध हुए हैं, चाहे ये प्रयोग संसार की प्रबलतम शक्तियों के लिए हों, चाहे छोटे अपराधियों के लिए। महान मनोवैज्ञानिक रूसो के कथनानुसार 'बालक भगवान् की ओर से शुद्ध और पवित्र आता है और समाज के हाथों में आकर बिगड़ जाता है।' मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने इस मत की पुष्टि की है कि अपराधी जन्म से नहीं, परिस्थितियों की विशेषताओं से बनते हैं।

इस उपन्यास की रचना भी इन्हीं मान्यताओं के आधार पर हुई है। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की विस्तृत सीमाओं में, विशेष रूप से मुरेना, भिण्ड, इटावा और धौलपुर के बीच चम्बल के अगम्य भरकों में वर्षों से छाए इस डाकू तत्त्व से जनता और प्रशासन दोनों प्रभावित रहे हैं। इस क्षेत्र का सामाजिक और आर्थिक जीवन भी इस समस्या से जुड़ा रहा है।

लेखक जिला मुरेना की अम्बाह तहसील में तीन वर्ष तक रहा है और उसे घटनाओं और समस्याओं को निकट से देखने और अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। इसलिए यह कहना गलत न होगा कि उपन्यास में सहज प्रकार स्वाभाविकता का समावेश हुआ है।

विगत वर्षों में इस समस्या को लेकर अनेक प्रकाशन सामने आए हैं और तीन बड़े निर्माताओं की फिल्में 'जिस देश में गंगा बहती है', 'गंगा जमुना' और 'मुझे जीने दो,' बनी हैं तो इन सबमें एक ही स्वर मुखरित हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि यह एक कल्पना ही नहीं सिद्धान्त भी है।

भारत में 'युवक सेवक समाज और 'कर्मभूमि' मेरी अपनी कल्पनाएँ हैं। नई पीढ़ी को नैतिकता के मान ग्रहण करने होंगे, जभी वह आने वाले उत्तर-दायित्वों को वहन करने में सक्षम होगी। यह इस युग की चुनौती है, जिसे नए रक्त को स्वीकार करना है। उपन्यास में इसी पक्ष को प्रधान रखा गया है।

उपन्यास का शिल्प कसौटी का विषय है। यह मेरा प्रथम उपन्यास है। साहित्य की इस सर्वशक्तिमान और सर्वप्रिय विधा के सृजन में यदि मुझे तनिक भी सफलता मिली तो मेरा पथ प्रशस्त होगा।

उपन्यास के आधुनिक युग को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले, साहित्य के मूर्धन्य एवं प्रतिनिधि ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं नाटककार और सही अर्थों में उपन्यास-सम्राट् श्रद्धेय श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने अमूल्य आशीर्वाद के रूप में भूमिका लिख कर मुझे कृतार्थ किया है, और मेरा उत्साहवर्धन किया है, उसके लिए मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा।

अन्त में मैं श्री ताराचन्द वर्मा, प्रोप्राइटर दी स्टूडेण्ट्स बुक कम्पनी का आभार मनता हूँ, जिनके सतत परिश्रम और मेरे प्रति स्नेह से उपन्यास का यह मनोमुग्धकारी स्वरूप प्रस्तुत हो सका।

आशा है मेरा यह उपन्यास, उस मील का पत्थर तो अवश्य बनेगा, जिस मंजिल की तरफ मैं उन्मुख हूँ।

रवीन्द्रप्रकाश कुलश्रेष्ठ

अंधेरे के बाहर

१

हार्डीकर ने चिल्ला कर कहा—"अरे परदा उठाओ न।"

लतीफ ने विग्स खेलते हुए कहा—"हाँ, हाँ, ठीक तो कह रहा है, हार्डीकर। बारह बज रहे हैं और पूर्णिमा की नशीली ठण्ड। जल्दी करो न।"

शर्मा जो इतनी देर से ऊपर पोल्स पर लटका डोरी खोल रहा था, बोला—"अच्छा, अच्छा, रहने भी दो, बाँधने में देर लगती है, खोलने में नहीं।"

लतीफ मुस्कराया—"म्याँ! बरात ले जाने में देर नहीं लगती, बाद के खर्च निबटाने में जोहमत होती है। नाटक के पर्दे बाँधने में तो बाँधने ही थे, यहाँ खोल कर घरी करना है, उठा कर रखना है। और इस के लिए हमारे पास पहाड़-सी रात है।"

हार्डीकर ने कहा—"कुछ भी कहो भाई, ड्रामा अपना 'ए' वन रहा। वह समा बंधा कि गाँव वाले देखते रह गए। नरेन्द्र को तो कोई पहचान ही न पाया।"

शर्मा ने आगे जोड़ा—"और अपनी वो······छुन····छुन····छुनक···छुनक स्टेज पर चार चाँद लग गए, जी तो चाहता था कि··········।"

"हुश··········" लतीफ ने मुँह पर उँगली रख कर इशारा किया कि नरेन्द्र आ रहे हैं। सब अपने काम में जुट गए। सच तो यह है कि नरेन्द्र का आना किसी को मालूम ही न पड़ा, क्योंकि वह अभी नाटक की ही ड्रेस में इधर-उधर घूम रहा था और उचित निर्देश दे रहा था। उसे अपनी कोई सुधि न थी।

यह इलाका मुरैना जिले का एक कस्बा है, जहां आठ बजे बाद ही दिए बुझ जाते हैं, वहाँ आज आधी रात तक चहल-पहल है। क्योंकि आज युवक सेवक समाज के तत्वावधान में 'जलते गांव' का अभिनय किया गया। "जलते गाँव" में गाँव के वर्तमान प्रश्नों का समाधान खोजा गया था कि किस प्रकार सर्वोदय की भावना से मिट्टी के ढेरों के ये गांव स्वर्ग के टुकड़े बन सकते हैं? सेठ दानमल का किस प्रकार हृदय-परिवर्तन हो सकता है और किस प्रकार एक नर्तकी समाजसेविका का रूप ले सकती है? आज गांव का किसान एक सदी पहले का किसान नहीं रहा। आज का किसान, अपनी भूमि का मालिक है। आज का किसान गांव का पटेल है, मुखिया है, सरपंच है। उस ने दो बड़े चुनाव देखें हैं और नेताओं से कसमें ली हैं। आज के किसान में वह ताकत है कि वह इस जमाने को बदल दे, एक नया सृजन करे, एक नया निर्माण करे।"

"जलते गांव" का नायक सेठ दानमल नाटक होने के बाद उसी ड्रेस में अपने साथियों से कह रहा है—"विल्सन! तुम थक गए होगे, सो जाओ, यह मैं संभाल लूंगा।"

विल्सन ने छाती ठोंक कर कहा—"नरेन्द्र! तुम देखते भर रहो। सब चुटकियों में हुआ जाता है।"

"अच्छा, अच्छा! जैसी तुम्हारी मर्जी..........." नरेन्द्र घूमा, दिख गया रमाकान्त, बोला—"अरे रमा! अपने इस नाटक की रिपोर्ट तैयार करनी है एक प्रधान कार्यालय भेजनी है और उसकी प्रतियां समाचार-पत्रों को।"

रमाकान्त ने बन कर कहा—"आप बेफिक्र रहें मंत्री महोदय, वह मेरे दिमाग में हैं, सुबह तक कागज पर उतर जाएगी, तब आप के हुजूर में पेश करूंगा।"

"तुम ऐसी बात करोगे तो मैं चला जाऊंगा।" नरेन्द्र मुस्कराया।

"चले कहाँ जाओगे, मुझे भी तो बताओ ....मैं कितनी देर से तुम्हें ढूंढती फिर रही हूँ ....जैसे नरेन्द्र न हुए, सेठ दानमल ही हो गए।"

नरेन्द्र मुड़ा, देखा मृणाल है। बोला—"अरे अभी मेकप नहीं बदला, और यह ड्रेस भी नहीं......सच इसमें बहुत भली लग रही हो।"

"हटो भी झूठे कहीं के" मृणाल शरमा कर बोली—"तुम ने कौन ड्रेस बदल ली है जो मुझे कहते हो। चलो इसी ड्रेस में बाहर घूमें।"

"मगर कहां ! यह कोई घूमने का समय है। साथी काम कर रहे हैं, और तुम............" नरेन्द्र कह ही रहा था कि हार्डीकर बीच हीमें बोला—"नरेन्द्र भैया ! काम की फिक्र न करो। अभी खत्म हुआ जाता है। तुम मृणाल का कहना न टालो।"

लतीफ बोला—"नरिन्दरजी ! तुमने मिहनत भी बहुत की है। थोड़ी देर हवा में घूम आओ तो जी हल्का हो जायगा।"

शर्मा चिल्लाया—"देखते जाओ नरेन्द्र बाबू हमारे फौलादी हाथों का काम। आप पांच मिनट इधर-उधर चहलकदमी करके लौटो कि तुम्हें काम निबटा मिलेगा।"

नरेन्द्र घूमा। दो कदम बढ़ा। रुक गया, देखा कोई न था मृणाल थी, बोला—"आखिर बात क्या है, बताओ न............?"

"बात क्या है, देख नहीं रहे हो ? शुभ्र राका रजत किरणों से वसुन्धरा को गलहार पहना रही है। आज शरद् पूर्णिमा है। पूर्ण चन्द्र निशाओं के आलिंगन में मदमस्त झूम रहा है।" और मुझ से पूछते हो बात क्या है।" मृणाल ने चंचल होकर कहा।

"हैं हैं, यह क्या ? तुम तो नाटकीय भाषा बोलने लगीं। यह भूमि है, स्टेज नहीं और फिर देखो सब साथी काम में लगे हैं, तब क्या अच्छा लगेगा कि युवक सेवक समाज के मंत्री और अध्यक्षा विहार करें। कोई क्या कहेगा।"

"कोई कहेगा क्या ? क्या कोई जानता नहीं है कि मैं मृणाल हूं अपने मन की स्वामिनी, पर याचिका बनी हूँ तो केवल तुम्हारे आगे। और तुमने केवल मेरी इच्छाओं को ठुकराना ही सीखा है............।"

मृणाल रो पड़ना चाहती थी कि नरेन्द्र बीच ही में बोला—"अरे तुम ऐसा कैसे सोचती हो, मैंने कब तुम्हारी भावनाओं का आदर नहीं किया ? मगर मैं तो यह कह रहा था.........।"

"मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहती" मृणाल ने खीजते स्वर में कहा—"भला नगर में ये शुभ क्षण कहां मिलेंगे। गांव का उन्मुक्त वातावरण, पूर्ण चन्द्र रात्रि और शीतल रजत किरणों का सद्यः स्नान। तुम्हें मेरी कसम, ना न करो।"

"तुम मानोगी नहीं....अच्छा ड्रेस तो बदल आऊँ।"

"क्या जरूरत है, मैंने भी तो नहीं बदली। और फिर इस ड्रेस में तुम भले कितने लग रहे हो।"

नरेन्द्र हंसा, "अच्छा मेरा तीर मुझ पर छोड़ दिया।"

मृणाल ने कहा—"और नहीं तो क्या ? मैं अकेली बिंधी रह जाती।.... अच्छा चलो..... अब अधिक हठ न करो।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।"

नरेन्द्र ने बाहर आकर देखा, वास्तव में प्रकृति सुन्दरी अपने पूर्व यौवन पर इठला रही थी। दूर दूर तक हरे-पीले खेत मखमल की चादर के समान फैले हुए थे और रजत चन्द्रिका ने उनमें झिलमिल उत्पन्न करके धूपछांव का सा खेल उपस्थित कर रखा था। दूर कहीं पपीहा कूक रहा था। वृक्ष नव पल्लव लिये, स्वागत के लिए खड़ी नवयौवनाओं के समान शान्त खड़े थे।

नरेन्द्र और मृणाल बढ़े जा रहे थे, जैसे स्वर्ग की सीढ़ियां चढ़ रहे हों। मृणाल कह रही थी—"देख रहे हो न, इस प्रकृति की गोद छोड़ कर कहां जायँ। जी चाहता है, रात भर इसी प्रकार सपनों में डूबी रहूं। और सच, यह सपना और मदमस्त बना देता है, जब तुम मेरे साथ होते हो।"

नरेन्द्र ने कहा—"तुम ने मेरे हृदय की बात छीन ली मृणाल ! तुम मेरी कल्पना से भी अधिक मोहक लग रही हो, जी चाहता है तुम्हारा यह रूप अपने हृदय और मस्तिष्क में बिठा लूं, और जीवन भर के लिए निधि पा लूं।"

"तुम तो आ ही न रहे थे। समाज के कार्यों में इतने दब जाते हो कि किसी की सुधि ही न रहती। तुम यह भूल जाते हो कि मैंने तुम्हारी खातिर ही समाज में प्रवेश लिया है। और यहां भी ....।"

बीच ही में नरेन्द्र ने कहा—"ऐसा न कहो। समाज मेरा शरीर है तो तुम उसकी प्राण। तुम काफी समझदार हो। समाज अभी आरम्भ ही हुआ है। इन थोड़े दिनों में ही उस पर भारी कर्ज हो गया है। देखो न पाँच हजार तो दौलतराम को ही देने हैं, दो हजार लक्ष्मीचन्द के........।"

"और मेरा कर्जा कब निबटाओगे..........।" मृणाल ने बीच ही में कहा।

"तुम्हारा कर्जा तो.........."

नरेन्द्र कुछ कहता कि उस का मुंह कस कर बांध दिया गया। उसके हाथ, पैर सब एक क्षण में ही बांधे जा रहे थे। उस की आंखें भारी भारी

पट्टियों से ढंक दी गईं । उसे केवल मृणाल की चीख सुनाई दी । यह हो क्या रहा है ? और अब उसे उठा लिया गया । मालूम पड़ रहा है कि वह किसी के कंधे पर झूल रहा है । और एक-दो बार घुटी-घुटी सिसकियाँ सुनाई पड़ रही हैं । परन्तु यह आखिर क्यों ? अब उसे मालूम पड़ रहा है कि कुछ लोग तेज तेज चले जा रहे हैं । वह भी जिन्दा लाश सा किसी के कंधे पर ले जाया जा रहा है । कहाँ जा रहे हैं ? कुछ मालूम भी तो नहीं । पूछा जाए ! पर मुंह तो बन्द है । गूं गूं गूं । सुनाई पड़ा— 'अगर बोलने की कोशिश की तो गोली सीने के पार होगी''''''''!'' और न जाने क्या क्या ?

हे भगवान ! यह क्या हो गया ? लग रहा है कि एक साथ ऊपर चढ़े, चढ़े जा रहे हैं. जैसे पर्वत की चोटी पर । फिर नीचे, और नीचे, जैसे रसातल में ही चले जाएँगे । कभी कभी बड़े बड़े झटके लगते हैं । जैसे कोई गड्ढे में कूदा हो । धम धम धम । मालूम पड़ता है, एक नहीं, दो नहीं, कई हैं । अब क्या हो ? चलते रहे, चलते रहे, अनवरत, अनपेक्षित, ।

लाकर रख दिया, जैसी किसी ढेरी पर बिठा दिया हो । हाथ-पैर ज्यों के त्यों बँधे हैं । आँखों की पट्टी खोली जा रही है । अंधेरे की परतें धीरे-धीरे हट रही हैं, और प्रकाश की किरणों, एक साथ प्रवेश पा रही हैं । पट्टी खुलते ही मालूम पड़ा कि निविड़ अन्धकार ने आँखें बन्द कर दी हों । फिर शनैः शनै पलकें उठाईं धीरे धीरे, सहमी सहमी सी नयन पंखुरिया खोलीं, एक दूसरे को देखा, वहीं थे । नरेन्द्र भी था, मृणाल भी थी । एक दूसरे को पाकर सन्तोष हुआ । मुँह बन्द थे । आँखों, आँखों में ही कसमें खाईं कि एक साथ ही इस आकस्मिक मुसीबत से जूझेंगे । परवाह नहीं ।

सामने देखा, कोई गुफा जैसी निचली भूमि है, जहाँ एक मशाल जल रहा है, और भयानक चेहरे इधर उधर व्यंग्य भरी दृष्टि लिए, अट्टहास करते घूम रहे हैं । शोर सुनाई पड़ा, 'आ रहे हैं, आ रहे हैं ।' इतने में मालूम पड़ी, भारी कदमों की आवाज । सभी ओर मूक निवेदन छा गया ।

एक हृष्ट-पुष्ट शरीर । ब्रिजिस और बुश कोट में चुस्त सजा हुआ । गले में कारतूस की माला, हाथ में दुनाली बन्दूक । चेहरे पर तेज, आँखें खुमार में डूबी हुईं । उठी हुई नाक, दबे हुए ओठ । बड़ा गलमुच्छदार मूँछें । माथे पर तिलक, बाल पीछे बिखरे हुए । और एक दुर्दमनीय अट्टहास ।

'हः हः हः, आज तुम मेरे पंजों में आ ही गए। मेरे साथियों को खूब मौका हाथ आया। आज दो दो बात हो जाय। इनके मुँह की पट्टियाँ खोल दो।'' आज्ञा हुई।

मुँह की पट्टियाँ खोल दी गईं। मृणाल ने मुँह से निकाला—'' दुष्ट'।''

''हः हः हः '' उसका अट्टहास फिर गूँजा, ''इतने दिनों बाद हाथ लगे हो तो कुछ दिन हमारे मेहमान बनो। कहो यह छोकरी कहाँ से पकड़ी। सेठजी चाँदनी रात में लिए घूम रहे थे। कोई आस पास की बेड़िनी है या बाहर से मँगाया हुआ माल............।''

नरेन्द्र कुछ समझ न पा रहा था कि बात क्या है। बातों के छोर मिलाने पर भी, अर्थ निकालना मुश्किल हो रहा था। वह कुछ कहना चाहता था, खड़ा हो गया।

''बैठ जाओ सेठ दानमल! यहाँ से भागने की कोशिश न करना, वरना गोली से उड़ा दिये जाओगे। और तुम तो लखपति सेठ हो। ऐसे ही थोड़े छोड़ दिया जायगा। बीस हजार से क्या कम माँगे जाँय।.... ..बोधासिंह ?'' उसने आवाज दी।

''जी सरकार ?''

''इनसे पूछकर इनके घर पत्र लिखो। बीस हजार रुपए तीन दिन के अन्दर ड्योढी वाले मन्दिर के पीछे वाली दीवार के पास रख दें। चौथे दिन रुपए न मिलने पर इन्हें गोली से उड़ा दिया जावेगा।

''जो आज्ञा हजूर........।'' हाथ जोड़ते पीछे हटते बोधासिंह ने कहा।

''नाहरसिंह जिन्दाबाद!'' गुफा में गूँज उठा।

ओह तो यह नाहर है, नरेन्द्र की समझ कुछ कुछ आया। दस्यु सम्राट नाहर। भिण्ड मुरैना के भरकों का एक मात्र सर्वेसर्वा नाहर। जिसका नाम सुनकर अच्छे अच्छे सेठों की घिग्घी बंध जाती है। शासन के लिए जो सिर दर्द बना हुआ है। जिसे पकड़वाने के लिए दस हजार का इनाम घोषित किया जा चुका है। यह है वह नाहर।

उसने अपनी ओर देखा। अभी भी उसी ड्रेस में था। आह! उसकी यह ड्रेस ही तो उसके लिए अभिशाप बन गई। उसने पगड़ी उतार कर फेंक दी। सुन्दर लटें माथे पर बिखर आईं। उसने कोट उतारा। साधारण खादी का कुर्ता दिखाई देने लगा। उसने मूँछे उतार दीं। और दूसरा मेकप हटा दिया।

नाहर ने देखा । यह क्या हो रहा है । देखा सेठ दानमल के आवरण की बाहरी पर्तें केले के छिल्कों के समान उतरती जा रही हैं । सामने एक युवक खड़ा है, शालीन युवक । नाहर देखता ही रह गया । इतना मोहक व्यक्तित्व । एकदम चीख पड़ा—"अरे ! तुम लोग ! किसे भूल से उठा लाए.......... ।"

बीच ही में नरेन्द्र ने कहा—"अच्छा ही हुआ नाहर । मैं तो स्वयं तुम से मिलना चाहता था । मेरे जीवन की साध पूरी हुई । आओ गले मिलो नाहर ।"

नाहर खड़ा देखता रहा । नरेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ा और उसे छाती से लगा लिया, कहा—"देखो, मैं तुम्हारे कितने नजदीक आ गया हूँ । मुझे पहचानो, मैं हूँ नरेन्द्र । कालेज का विद्यार्थी । जनसेवा में मेरी रुचि है । युवक सेवक समाज का मंत्री हूँ । सामाजिक चेतना जागृत करने के लिए कटिबद्ध एक छोटा सा कार्यकर्ता ।........"और ये हैं मेरी सहपाठिनी.......मृणाल ।........तुम भी आवरण उतार दो ।"

मृणाल ने भी नर्तकी के वस्त्राभूषण उतार दिए । अब वह एक सीधी सादी नवयुवती लगने लगी थी । नरेन्द्र ने कहा—"इन्हें तुम पहचानते हो नाहर ! यह हैं मृणाल । शहर के जस्टिस बोस की एकमात्र लाड़ली मृणाल ।"

नाहर जो इस समय तक चुप सुन रहा था, जाग सा पड़ा—"अरे तब तो तुम दोनों हमारे मेहमान हो । आओ, देखो... । दूर से सुहावना दिखने वाला हमारा जीवन कितना भयानक है । फिर भी तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ न होगी ।"

मृणाल ने कहा—"अच्छा तो यह हो कि अब हमें आज्ञा दो नाहर । हमें जाने दो ।"

'जब आए ही हो तो यहाँ का सब देख ही जाओ" नाहर ने कहा, "फिर शायद किसी डाकू को इतने नजदीक से देखने का मौका मिले या न मिले । यह भी तो देखो कि डाकू, डाकू बाद में है, इन्सान पहले ।"

नरेन्द्र ने कहा—"मृणाल ! नाहर भाई का आग्रह मानने में कोई हानि नहीं है । जीवन के अनुभवों में यह एक अध्याय और जोड़ने को मिलेगा ।

"तब तुम लोग अभी आराम करो । सुबह ले चलूँगा, अपनी दुनिया की सैर कराने ।" यह कह कर नाहर चला गया ।

थोड़ी देर बाद वहीं भूमि पर घास बिछा दी गई और उनके ऊपर मोटे मोटे गद्दे डाल दिए गए। नरेन्द्र और मृणाल अपने अपने बिस्तरों पर लेट गए। कम्बल ओढ़ लिए। मशाल जल रही थी। वातावरण शान्त था, वहाँ और कोई न था।

रेन्द्र ने कहा—"अहा...कैसा सुहावना समय है। स्तब्धता अपनी मूक वाणी में वातावरण को संगीतमय बना रही है। लगता है, आकाश के पूर्णचन्द्र को बन्दी बना कर यहाँ ला दिया हो.......आनन्द आ गया.......रजत राका विहार का.......।"

मृणाल शरमा गई, बोली—"तुम्हें हंसी सूझती है। यहाँ जान निकली जा रही है। खुद उस भयानक आदमी से कैसी घुल-मिल कर बातें कर रहे थे, जैसे वहाँ और कोई न हो....।"

"वाह! तुम ऐसा कैसे सोचती हो मृणाल? तुम तो मेरे मानस में हर दम छायी रहती हो। और अब भी, इतनी दूर हों...फिर भी....।"

"अच्छा, अच्छा, ज्यादा बातें न बनाओ" मृणाल ने मुस्कराकर कहा, "चुपचाप सो जाओ।" यह कर मृणाल से कम्बल से मुँह ढंक लिया?

नरेन्द्र बोला—"सोओ तुम! मैं तो सारी रात जागूँगा। अपनी प्रियतमा से बातें करूँगा। आज की सी रात, सूनी अकेली रात, मधुर मधुर सुहानी रात.......।"

नरेन्द्र और न जाने क्या कहता कि मृणाल नें उसके मुँह पर हाथ रख दिया। नरेन्द्र ने मृणाल का हाथ पकड़ लिया और अर्थ भरी दृष्टि से देखने लगा, मृणाल ने कहा—"नरेन्द्र! तुम्हें मेरी कसम।.........।"

दोनों चुपचाप अपने अपने बिस्तरों पर नींद में खो गए।

* * *

सुबह नाहर के साथ हो लिए। आगे आगे नाहर, पीछे पीछे दोनों। ऊँचे नीचे भरके। नाहर एक छलंग में कूद जाता। नरेन्द्र प्रयत्न करता, मृणाल खड़ी रह जाती। हाथ पकड़ कर, सहारा देकर उसे आगे बढ़ाया जाता। नाहर नंगे पैरों घूम रहा था, नरेन्द्र जूतों समेत, मृणाल चप्पलों में। नाहर के पैरों के नीचे काँटे कुरमुरा जाते, टूट जाते। नरेन्द्र बच बच कर चलता और मृणाल के पैरों में काँटे जैसे जान कर चुभ जाते। एक मीठी चीख निकलती। नरेन्द्र दौड़ पड़ता, काँटा निकालता, रक्त को रूमाल से बाँधता। नाहर देखता, मुस्करा देता। देखते

देखो बढ़े । आगे जंगल । घना जंगल । हवा साँय साँय कर रही है । नाहर बढ़ा जा रहा है । और नरेन्द्र मृणाल का हाथ पकड़े पीछे पीछे चल रहा है । अरे यह क्या ? नारी के शुभ्र श्वेत वसन के समान नदी बल खाई बड़ी है । नाहर एक छलांग में उस पार पहुँच गया । नरेन्द्र पत्थरों पर पैर रख कर निकल गया, मृणाल भीगती भीगती, उई उई करती जैसे तैसे पार हुई ।

आगे बढ़ते रहे, बढ़ते रहे । झरके ही झरके । ऊंचे-नीचे झरके । घास, झाड़ियाँ और दूर दूर पेड़, फिर थोड़ी दूर पर घना जंगल । मृणाल थक सी रही है, चल नहीं पा रही है, कि देखा नाहर रुक गया । एक पेड़ की ओर इशारा किया ।

"वह देखो मचान बना है, उस पर तुम लोग बैठ जाओ, आज शिकार करेंगे ।" नाहर ने कारतूस टटोलते हुए कहा ।

"शिकार......... ..।" मृणाल के मुँह से निकला ।

"हाँ शिकार............तुम लोग जल्दी ऊपर चढ़ जाओ ।"

"और तुम............," नरेन्द्र ने कहा ।

"मैं यहीं नीचे रहूँगा, तुम्हारे पास ।" नाहर ने कहा, "जल्दी करो ।" दोनों सीढ़ी पर पैर रख कर मचान तक पहुँचे । मचान बहुत ऊंचाई पर बनाया गया था और बहुत छोटा ही था । दोनों एक दूसरे से सट कर बैठ गए । इतने में नाहर ने सीटी बजाई । बहुत से बन्दूक धारी नौजवान निकल आए ? नाहर ने आवश्यक निर्देश दिये । सब अपनी अपनी दिशाओं को चले गए । नाहर ने दूसरी सीटी बजाई । सैकड़ों व्यक्तियों की आवाजें आने लगीं ।

"यह क्या हो रहा है......... ?" मृणाल ने पूछा ।

"ये लोग हाँका कर रहे हैं, जिससे जंगली जानवर इधर-उधर भागने लगें और खुले में आ जाँय, तब ये लोग शिकार करेंगे ।" नरेन्द्र कहा ।

"ओह !" मृणाल ने दाँतों तले ऊँगली दबाकर कहा और बड़ी बड़ी आँखों से देखने लगी ।

फिर हाँका हुआ । सीटियाँ बजीं । जंगल जैसे जाग पड़ा हो । हो हो हो हो । प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी, हो हो हो हो । सीटियाँ बजीं । वह निकला, कहाँ, वह । भगाओ भगाओ । सैकड़ों आवाजें एक साथ आ रही थीं । घुर्र घुर्र । खूं खूं खुर्र खुर्र । इधर ही आ रहा है, आने दो । सब ने छर्रे टटोले । बन्दूकें सीधी कीं । वह देखो, वह आ गया । जंगली सुअर है । ओह इतना बड़ा सुअर ।

इधर से गोली चली, नाहर ने भी उधर से गोली दाग दी। सुग्रर के पुट्ठे पर लगी। खूंखार जानवर। खिसिया कर पलटा तो नाहर की ग्रोर दौड़ा जैसे एक क्षण में ही खा जायगा। मृणाल की चीख निकली, नरेन्द्र ने उसका मुंह बन्द कर दिया। नाहर ने दूसरी गोली दाग दी थी। सुग्रर के जबड़े पर पड़ी। खें खें करता तीसरी तरफ भागा, उधर से भी गोली लगी, पिछली टाँग पर। खिचड़ने लगा। चौथी गोली लगी दूसरे पुट्ठे पर। नाहर ने बन्दूक संभाली, निशाना मिलाया। इधर ही ग्रा रहा है। गोली चले, इस से पहले ही वह झपटा ग्रौर नाहर की बन्दूक एक साथ छूट गई। ग्रब जंगली सुग्रर नाहर के सामने ही था। नाहर उछला। भाला उठाया ग्रौर सुग्रर पर कूद पड़ा। भाला सीधा सुग्रर के मुंह में पड़ा। सुग्रर कें कें करने लगा। नाहर ने भाला जोर से पकड़ लिया ग्रौर जोर लगाकर उसका जबड़ा फाड़ने लगा। सुग्रर गिर पड़ा। नाहर उसके ऊपर चढ़ गया। उस के ग्रगले पैर ग्रपने पैरों के नीचे दबा लिये ग्रौर भाले को जबड़े में ग्रौर घुमेड़ने लगे। कैं कैं करते सुग्रर ने पिछले पैर उठा कर नाहर की गरदन पकड़ ली ग्रौर एक साथ नाहर को गिरा दिया। ग्रब नाहर नीचे था। उसने सुग्रर के ग्रगले पैर हाथों से पकड़ कर जोर से धक्का दिया। सुग्रर ग्रौंधा गिरा। नाहर फिर सवार हो गया। नाहर ने भाला उसके पेट में भौंका। एक बार, दो बार, तीन बार। सुग्रर कैं कैं करता समाप्त हो गया।

यह सब देख कर मृणाल की ग्रांखें पथरा गईं। सुग्रर जब ग्राखिरी कैं कैं कर रहा था तो नरेन्द्र भी उसे संभाल न पाया ग्रौर वह एक साथ गिर पड़ी, कि नीचे पसीना पौंछते नाहर ने उसे गोद में ले लिया। कैसा फूल सा शरीर। नाहर ने ऐसा स्पर्श ग्राज तक न किया था। उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई। इतने में नरेन्द्र पेड़ पर से उतर ग्राया था। नाहर ने मुस्करा कर कहा—
"यह संभालो, ग्रपनी धरोहर। घबड़ाग्रो नहीं, ग्रभी ठीक हो जाएगी।"

यह कह कर उसने सीटी बजाई। सब लोग ग्रपनी ग्रपनी जगह से निकल ग्राये ग्रौर मरे हुए सुग्रर के चारों ग्रोर घिर गए। जंगल में गूंज उठा—"नाहरसिंह जिन्दाबाद।"

सुग्रर को बाँधा गया। बल्ली पर लटका कर ले चले। मृणाल भी होश में ग्रा चुकी थी। नाहर खून से लथपथ उसी गति से ग्रागे बढ़ रहा था। नरेन्द्र मृणाल का हाथ पकड़े, उसे सहारा देकर धीरे धीरे लिये चल रहा था।

तीसरे दिन विदा दी नाहर ने। इन दो दिनों में नाहर ने हृदय खोल कर खातिर की। अपने यहाँ की व्यवस्था दिखलाई। भोजन के उपरान्त दोनों को खेतों पर ले गया। बाजरे के भुट्टे तोड़े, भूने, दाने निकाले, दोनों को खिलाए। ओह कितने मीठे हैं ये ? फिर ले गया चर्खी की ओर, जहाँ गन्ने का रस निकल रहा था। देख कर सब किसान खड़े हो गए। हुक्म हुआ। दो गिलास ताजा रस आ गया। दोनों ने पिया। आह ! जीवन का सच्चा रस तो यहीं है। कैसा मादक जीवन है यह ? फिर कढ़ाहे में बनता गरम गरम गुड़ खिलाया। इतना स्वादिष्ट होता है यह, आज मालूम हुआ।

रात को देर तक नाच-गाने हुए। पास के गाँव से एक बेडिनी बुला ली गई थी। मधुर आवाज थी, रूप भी था। जंगल नशीले संगीत से झूम उठा। सब ने मदिरा उडेली, भर भर के पी। ढोल की गति पर सब थिरकने लगे। आधी रात तक यह सब चलता रहा।

प्रातः चलने को हुए। नाहर चाहता था, दो-एक दिन और ठहरें। मृणाल जल्दी कर रही थी। नरेन्द्र का हृदय भर आया था। उसने नाहर को छाती से लगा लिया, बोला—"जीवन भर नहीं भूलेंगे नाहर, ये दिन। इन दो दिनों में जो कुछ देखा है वह सारे जीवन भर नहीं देख पाते।"

"हम किन शब्दों में धन्यवाद दें नाहर भाई !" मृणाल ने कहा।

"मेरे पास है ही क्या जो आप लोगों की खातिर करूं ? एक भटका हुआ मुसाफिर हूं, जो जंगलों में ठोकरें खा रहा हूँ।" नाहर ने विकल होकर कहा।

"नहीं, ऐसा न कहो नाहर ! तुम जंगल के राजा हो।" नरेन्द्र ने कहा, "अच्छा अब हमें विदा दो चलते समय मैं कुछ माँगना चाहता हूं, दोगे नाहर।"

"मेरे पास हिंसा के सिवाय और है ही क्या ?"

"इसीलिए तो माँगना चाहता हूं कि कभी किसी गरीब पर तुम्हारी गोली न चले।" नरेन्द्र ने कहा।

"और न किसी नारी पर तुम्हारी बुरी दृष्टि हो।" मृणाल ने कहा।

"मैं दोनों को वचन देता हूं।"

"हमने सब कुछ पा लिया।" दोनों ने कहा और मुड़ कर चल दिये। नाहर के आदमी साथ चल दिए। नगर सीमा तक छोड़ आने की व्यवस्था कर दी थी नाहर ने। चलते चलते दोनों ने मुड़ कर देखा, सजल आँखें लिये हाथ जोड़े खड़ा था नाहर।

२

बेबी आ गई। वह लौट आई। दानवों के बीच में से बच आई। यह भगवान की दया है। यह मृणाल का सौभाग्य है। वर्ना जस्टिस बोस आधे पागल जैसे हो गए थे। उनकी एकमात्र सन्तान! उनकी आँखों की पुतली। नाजों से पाला, स्नेह से संवारा। कैसे रही होगी वहाँ बीहड़ में, जंगल में। ओह् कल्पना से ही रोमांच हो आता है। अब वह वापस आ गई है। जैसे जस्टिस बोस के चेहरे की मुस्कराहट लौट आई है। इन का बंगला खुशियों से थिरक रहा है। मेहमान आ रहे हैं, अफसर आ रहे हैं, शुभचिन्तक आ रहे हैं। जाने पहचाने, अपने-पराए सभी आ रहे हैं। बेबी की सलामती मनाने। मौत के पंजे में से निकल कर आई है। कैसे रही, कहाँ रही। कैसा वर्ताव किया, किस प्रकार आ सकी। एक नहीं, जितने मुंह उतने ही प्रश्न। मृणाल किसका जवाब दे? उसका तो एक ही जवाब है, "नरेन्द्र मेरे साथ थे, तब फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। मैं यहाँ लौट सकी, यह उनकी चतुराई का फल है, उनका एहसान है, मुझ पर, मेरे पिता पर।"

नरेन्द्र! कहाँ है नरेन्द्र। बड़ा जीवट का आदमी है। हरेक की निगाह उसे ढूंढ रही थीं। मगर वह यहाँ नहीं था। वह दूर, बहुत दूर, इस जमघट से दूर अपने कमरे में शान्त पड़ा है। उसके लिए यह अनहोनी घटना कोई महत्त्व नहीं रखती। वह इसे जीवन का एक अनुभव मानता है। बस और कुछ नहीं। हाँ! एक उलझन अवश्य पैदा हुई है, जिसे और अधिक उलझा रहे हैं ये लोग। आसपास के लोग। उसके जान-पहचान के लोग। युवक सेवक समाज के सभी युवक उसे घेरे हुए हैं। समाज में जागृति आ गई थी। वह अपमान का

बदला लेना चाहता था। मगर यह क्या ? वही प्रश्न, वही बातें, वही धारणाएं। नरेन्द्र घबरा गया है, उकता गया है। जी चाहता है कि कमरा बन्द किये पड़ा रहे, और तब तक न उठे जब तक कि यह बादल फट न जांय।

"कोई आया है, तुमसे मिलने..........." नरेन्द्र को सूचना दी।

"कौन है..............." इतना ही कह पाया नरेन्द्र कि उसके मुंह से निकला—"ओह ! तुम सरीन।"

नरेन्द्र उठा, सरीन को गले लगाया, बोला—"अब मिले हो इतने दिनों बाद। एक उम्र गुजर गई। बी० ए० में साथ साथ पढ़ते थे........अब मिल पाए हैं। मगर तुम तो बिल्कुल बदल गए हो ? और यह क्या..........? ऐसा लगता है कि तुम मुझे गिरफ्तार करने आए हो इस वेश में ....।"

"हाँ नरेन्द्र" सरीन ने मुस्कराकर कहा—'देख रहे हो न। क्लास में पीछे चलने वाला तुम्हारा दोस्त आज तुम्हारी दुआओं से इस क्षेत्र का डी० एस० पी० हो गया है..........।"

"डी० एस० पी०.......वाह वाह.......मिठाई खिलाओ यार" नरेन्द्र ने उसकी पीठ थपथपा कर कहा।

"हाँ ! और सरकार ने मुझे यह कार्य सौंपा है, डाकू उन्मूलन का। तुम तो जानते ही हो कि मैं इस क्षेत्र के लिए नया ही हूं..........।" सरीन ने कहा, "मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत है।"

"मैं तुम्हारे क्या काम आ सकता हूँ ? मैं सामाजिक कार्यकर्ता, तुम सरकारी अफसर।"

"तुम उसके मेहमान जो बन आए हो।" सरीन ने पास खिसक कर कहा।

"किसके ?" नरेन्द्र अनजान बन बोला।

"नाहर के..........सुना है बहुत बहुत खातिर हुई, कैसा है वह ?"

"मुझसे पूछते हो, उसकी तस्वीर तो तुम्हारे रिकार्ड में होगी ही, वैसा ही है।" नरेन्द्र ने हंसकर कहा।

"अच्छा मजाक छोड़ो.......तुम्हें क्या मालूम कि तुम्हारी वजह से हम लोग कितने परेशान रहे। तुम और मृणाल घूमने चले गए। सब लोग सामान संभाल कर कैम्प में ले आए। तब भी तुम लोग न आए, तो लोगों को शंका हुई।

इधर-उधर दौड़े। कहीं पता न लगा। थाने में खबर की गई। पूछ-ताछ छान-बीन हुई। मुझे तार दिया गया। मैं कार लेकर सीधा पहुँचा। खोजने निकला। थोड़ी दूर तक तो तुम्हारे पदचिन्ह मिले ....फिर न जाने कहाँ गायब हो गए।" सरीन थोड़ा रुक कर बोला, 'मैं यही तो पूछ रहा था कि तुम लोग किधर गए थे? कौन से रास्ते, कितनी दूर कहां तक.......... और वहाँ सब क्या था?"

"सच सरीन भाई! मुझे कुछ भी पता नहीं। मेरी और मृणाल की आँखें बन्द कर दी गई थीं, मुंह में कपड़ा ठूंस दिया था और हाथ-पैर बाँध दिये थे। मृणाल तो बेहोश ही हो गई थी, और मेरा सिर चक्कर खा रहा था। ऐसी दशा में बोलो, मुझे क्या पता लगे कि वे लोग कहाँ जा रहे हैं?..........हाँ, मैं यह जरूर कह सकता हूं कि मुझे वहाँ कोई तकलीफ नहीं हुई और हम सकुशल लौट आये..........।"

"चलो अच्छा ही हुआ, कि तुम वहाँ हो आए। सब अपनी आँखों देख लिया है। मेरे दोस्त हो तो मुझे भी वहाँ ले चलोगे कभी न कभी, ऐसी मुझे आशा है। अच्छा चलता हूं.... ....।" उठ खड़ा हुआ, बोला, "आओगे न परसों..............?"

"कहाँ..........?"

"जस्टिस बोस के यहाँ।"

"पर आखिर क्यों?"

"अरे मालूम नहीं..............मृणाल का जन्मदिन है न।" यह कहकर सरीन मुस्कराता चला गया।

* * *

जस्टिस बोस के बंगले की सजावट देखते ही बन रही है। जैसे बंगला स्वयं खुशी में झूम रहा है। गेट से भवन तक बगीचे की कली कली मुस्करा रही है। स्वच्छता स्वयं में सिहर सिहर उठती है। बंगला नवयौवना सा मादक श्रृंगार लिए संगीत के स्वरों पर मस्त हो मूक खड़ा है, जैसे सारे भाव इस मौन में ही आ गए हैं। अन्दर ट्यूब लाइट के प्रकाश में दिन और रात का भेद ज्ञात नहीं हो रहा। प्रत्येक कमरा अपनी रंगीनी लिए है। मृणाल के कमरे की कुछ न पूछो। फूलों-कलियों की महक से महमहा रहा है। मृणाल की सहेलियाँ रंगीन

तितलियों सी, स्वर्ग की अप्सराओं सी स्वप्न की परियों सी चहक रही हैं और मृणाल को सजाने में लगी हैं।

मृणाल ने अंगूरी साड़ी पहनी है, क्योंकि उसी साड़ी में वह पहले पहल किसी को भा गई थी। इस विचार से वह शरमा गई, और उसके गोरे गालों पर अस्फुट लाली दौड़ गई। किन्तु उसकी आँखें किसी को खोज उठीं। चले खोजे उसे मगर यह सहेलियाँ उसे छोड़ती कहाँ हैं ? उसकी वेणी में गजरा लगाया जा रहा हैं। उसके गले में कीमती मोतियों का हार। कानों में बड़े बड़े कुण्डल। आँखों में काजल, माथे पर बिन्दी। एक सहेली उसके हाथों और पैरों में मेंहदी सजा रही है। चारों ओर अबीर-गुलाल उड़ रहा है। मगर मृणाल यहाँ कहाँ है, उसकी आँखें दर्वाजे पर लगी हैं।

मेहमान आ रहे हैं। एक नहीं, अनेक। बाहर का बड़ा हाल मेहमानों से भर रहा है। शहर के सभी प्रतिष्ठित पुरुष व महिलाएँ। अफसर व उनकी पत्नियाँ। बाहर से आ रहे भद्र जन व सगे-सम्बन्धी। सभी तो आरहे हैं। जस्टिस बोस खुशी से उठ खड़े हुए, पुलिस की वर्दी में टिपटाप सरीन। बोस ने हाथ मिलाया, गले लगा लिया। और लोग भी आए, यथास्थान बैठे।

घण्टियों के मधुर स्वर होने लगे, जैसे खुशियाँ एक दूसरे से टकरा रही हों। जन्म का समय हो गया। मृणाल सखियों में धीमे धीमे आ रही है। एकएक पग सहेजती हुई। पलकें झुकी हुई। कभी कभी दर्वाजे की ओर झांकती हुई। आकर बीच की बड़ी मेज के पास खड़ी हुई। सखियों और मेहमानों ने उसे घेर लिया। मधुर स्वर में आर्केस्ट्रा बजने लगा। मेज पर बड़ा सा एक खुशनुमा केक रखा हुआ था, जिसकी शक्ल एक गुलदस्ते जैसी बनी हुई थी, जिसमें बीस बहारें मुस्का रही थीं और उसमें बीस केण्डिल्स लगी हुई थीं, जिनकी शिखाएँ प्रज्वलित हो मस्ती में झूम रही थीं। सबने कहा, रस्म अदा की जाय। मृणाल ने एक बार फिर दर्वाजे की ओर देखा, दर्वाजा प्रतीक्षा की भांति आंखें गड़ाए खड़ा था। उसने एक एक करके केण्डिल्स बुझाईं, और केक को टुकड़ों में बाँट दिया। चारों ओर तालियाँ बजने लगीं, उनमें एक तालियों की आवाज मृणाल को अलग ही सुनाई दी। उसने देखा, दर्वाजे से सटा नरेन्द्र खड़ा है। ओह! बिल्कुल सही समय पर। आ ही गया। मृणाल के हृदय में खुशियों का ज्वार उमड़ आया। वह झूम उठी। बोली—"मंजुलता! आज ऐसा नाचो कि मैं अपने में खो जाऊँ.........।"

"अपने में या किसी और में ।" मंजु ने कहा और उसने पायल से छुन की । वह मस्त नागिन सी बल खा खा कर नाचने लगी । बोस और मृणाल मेह-मानों को यथास्थान बैठा रहे थे । मृणाल ने देखा । नरेन्द्र, छोटा दुबला सा मोहक नरेन्द्र । कुर्ता और पाजामा में जाकेट पहने हुए । गेहुँआ रंग । छोटे छोटे नक्श बाल लापरवाही से कढ़े हुए जिन में से कुछ माथे पर झुक आए थे । कैसा अच्छा लग रहा था । मृणाल उसे मेज के पास ले गई । केक का एक टुकड़ा उसके मुँह में दिया । देखा पास में ही सरीन खड़ा है । बोला—"क्या हमको यह केक का टुकड़ा नसीब न होगा ।"

"हाँ ! हाँ ! लीजिए न ।" कह कर मृणाल आगे बढ़ गई ।

"कब आए ?" सरीन ने पूछा ।

"अभी अभी…………," नरेन्द्र ने छोटा सा उत्तर दिया ।

नृत्य के बाद प्रीतिभोज का आयोजन था । उसकी व्यवस्था निकट के हाल में की गई थी । बफेट सिस्टम था । बड़ी मेज पर सामान लगा हुआ था । सभी मेहमान खड़े खड़े अपनी अपनी तश्तरियों में पदार्थ लिए खा रहे थे और एक दूसरे से बातें कर रहे थे । स्त्री-पुरुषों के जोड़े इधर-उधर मधुर वार्तालापों में खो रहे थे । सरीन, बोस से उलझ रहा था । बोस उसके कारनामों पर उसे शाबाशी दे रहे थे । नरेन्द्र भी इधर-उधर घुल-मिल रहा था और अन्दाज लगारहा था कि इस इमारत की ऊँचाई कितनी है, जिसके शिखर पर मृणाल बैठी है । क्या वह इतनी ऊँचाई चढ़ सकेगा, वैभव की ऊँचाई । नहीं, इस जीवन में तो नहीं । वह जमीन का प्राणी, जमीन पर ही रहेगा । तब मृणाल को उतरना होगा । आसमान से जमीन पर……। और न जाने किन विचारों में खो रहा था ?

मेहमान विदा होने लगे । सभी अमूल्य उपहार लाए थे । मृणाल उपहार ले रही थी, बोस धन्यवाद दे रहे थे । पास खड़ी सहेलियाँ संभाल रही थीं । उप-हारों का ढेर हो गया । साड़ियाँ, आभूषण और शृंगार की अन्य चीजें । बोस खास मेहमानों को दर्वाजे तक पहुँचाने गए ।

"यह लीजिए, मेरा छोटा-सा उपहार ।"

"ओह आप……. ।"

सरीन ने मखमल का डिब्बा खोल दिया । कीमती नेकलेस जगमग करने लगा । मृणाल ने कहा—"इतनी तकलीफ क्यों की ?"

" यह तो कुछ भी नहीं " सरीन का छोटा सा उत्तर था।

" आप तो जानते ही हैं कि मुझे आभूषणों से कोई लगाव नहीं।"

" आप स्वयं एक आभूषण जो हैं, आभूषण पर यह कृत्रिम आभूषण क्या जँचेगा।"

" नहीं, ऐसी बात नहीं, यह तो बहुत अच्छा है।" मृणाल लजा गई। और सिमट गई अपने में जैसे कोई उसे छू न ले। सरीन मुस्कराता चला गया। सखियों ने नेकलेस ले लिया और मीठी चर्चाओं में डूब गईं।

" तुम कहाँ थे इतनी देर······?" मृणाल ने नरेन्द्र को देखकर कहा।

" मैं तो तुम्हें ही खोज रहा था।"

" मैं खुद तुम्हारी बाट जोह रही थी।"

" बताओ मैं क्या लाया हूँ, तुम्हारे लिए ?"

" मेरा सपना, मेरा जीवन, मेरा संसार।"

" स्वीकार करो यह छोटी सी भेंट।"

" ओह ! " मृणाल ने खादी की साड़ी हाथ में लेकर कहा—" मैं तो निहाल हो गई। उपहारों में सबसे अमूल्य उपहार है यह। जीवन भर सहेज कर रखूंगी। यह मुझे मेरे देश के प्रति जागृत रखेगी। मैं तुम्हारे प्रति बहुत आभारी हूँ नरेन्द्र।"

" और मैं तुम्हारा चिर ऋणी ?"

मृणाल कुछ कहती, कि बोस लौट आए। आते ही बोले—" अरे यह कौन युवक है, मृणाल ! तुमने परिचय तो कराया ही नहीं।"

" ओह मैं तो भूल ही गई थी।" मृणाल ने मुस्करा कर कहा—" ये हैं— नरेन्द्र श्रीवास्तव एम. ए. फर्स्ट क्लास। आदिवासियों की संस्कृति पर रिसर्च कर रहे हैं। साथ ही युवक सेवक समाज के मंत्री, जिन्होंने अपनी जिद से मुझे उसका अध्यक्ष बना दिया है।"

" ओह ! बड़ी खुशी हुई मिलकर।" जस्टिस बोस ने हाथ मिलाते हुए कहा।

" और मुझे भी।" नरेन्द्र ने धन्यवाद देते हुए कहा।

मृणाल बोली—" और पिता जी ! यही हैं वह नरेन्द्र जिन्होंने डाकू क्षेत्र में मेरा साथ दिया, मुझे हर मुसीबत से बचाया।"

बोस बोले—" तब तो मैं इनका और भी अधिक कृतज्ञ हूँ ।"

" जी ! मैं तो आपका बच्चा हूँ, यह तो मेरा फर्ज था । आप मुझे आशीर्वाद दीजिए ।" नरेन्द्र ने मुस्कराकर कहा ।

" अच्छा ! अच्छा बहुत होनहार बच्चे हो ।" कह कर बोस ने पीठ थपथपाई और एक ओर को चले गए ।

नरेन्द्र ने कहा—" अच्छा अब मैं चलूँ मृणाल ।"

" चले जाना, अभी जल्दी क्या है," मृणाल ने आग्रह के स्वर में कहा—"अभी मन की बातें तो हुईं नहीं……… ।"

" मृणाल दीदी, मृणाल दीदी ! कोई बाहर आदमी आप से मिलना चाहता है ।" किसी ने सूचना दी ।

" कौन है, चलो नरेन्द्र देखें, बाहर यह कौन है ।" मृणाल ने कहा । दोनों साथ हो लिए । बाहर बोस, अन्य सगे सम्बन्धी और लड़कियाँ आगन्तुक को घेरे खड़ीं थीं, और तरह तरह के प्रश्न पूछ रही थीं, मगर वह बार-बार यही कह रहा था—"मैं तो मृणाल से ही मिलने आया हूँ । मैं उसके जन्म-दिन का उपहार लेकर आया हूँ । कहाँ है वह !"

" यह रही मैं " मृणाल ने कह।" कौन हो तुम, मैं तो तुम्हें नहीं पहचानती ।"

मृणाल ने देखा । हृष्ट-पुष्ट वृद्ध शरीर । बाल, मूंछ और दाढ़ी सन से सफेद । फटे चिथड़ों में लिपटा हुआ । तीखे नक्श, आँखों में तेज , मुंह पर मुस्कराहट ।

मृणाल ने दुहराया—"सच मैं तुम्हें नहीं जानती । कौन हो तुम, अपना परिचय तो दो ।"

" मै तो जानता हूँ । लो मेरा उपहार ।" यह कह उसने बगल में से निकाल कर चीते का छोटा बच्चा मृणाल के हाथों में थमा दिया ?

" उई" कह कर मृणाल चीख पड़ी । सभी लोग पीछे हट गए । सारी लड़कियों की चीख एक साथ निकली । मृणाल गिरने को हुई । नरेन्द्र ने उसे संभाला । धीरे से उसका हाथ दबाया । मृणाल की आँखों में प्रश्नचिन्ह नाच रहा था । नरेन्द्र ने नयनों की भाषा में सब कुछ बता दिया । सब की चेतना लौटी, देखा वह बुड्ढा आदमी वहाँ नहीं था ।

अभी चर्चा हो रही थी कि सरोन दौड़ता हुआ आया—"कहाँ है, कहाँ गया वह आदमी ? बुड्ढा सा, सफेद बाल, कमर झुकी हुई।"

"क्यों तुम्हें क्या काम था उससे ?" बोस ने पूछा।

"वह नाहर था।"

"नाहर," सबके मुँह से अनायास निकला।

"यह रहा नाहर।" मृणाल ने चीते के बच्चे की ओर इशारा करते हुए कहा, उसने उसे गोद में उठा लिया। प्यार से थपथपा कर कहा, "पिताजी हम इसे पालेंगे।"

"अच्छा बेटी।"

सबकी आँखों में घटना प्रश्न-चिन्ह लिए नाच रही थी। वह प्रश्नचिन्ह लिए सब विदा हुए।

३

दूर, दूर बहुत दूर जहाँ धुँए की काली परतें, घुमड़ती सी बुझी बुझी सी उठ रही हैं, जैसे कोई दिलजला सिगरेट का लम्बा कश लेकर धीरे धीरे धुँआ ऊपर को छोड़ता हो, जैसे खुद को जला कर खाक कर देना चाहता हो, जो बोले नही, रोए नहीं, ऐसा गम उठाए कोई, वैसा ही एक छोटा सा गाँव, दूर क्षितिज के किनारे अपने अस्तित्व को बिखेरता सा एक गाँव है यह सन्तपुरा।

सच तो यह है कि सन्तपुरा एक सरल सादा गाँव है, जहाँ न छल है न कपट है। बहुत थोड़े झोंपड़े जैसे घर हैं, कुछ खाते-पीते लोगों के पक्के मकान। एक पटेल की छोटी सी हवेली। यहाँ पटेल का लड़का भी भैंस चराता है और हरिजन का छोकरा स्कूल पढ़ता है, कालेज का मुँह देख आया है। ब्राह्मणी विधवा सब की मौसी है, सुन्दर तेलिन सब की भाभी है। जैसे सारा गाँव एक घर है, एक कुन्बा हो।

इस गाँव के पटेल हैं ठाकुर चरणसिंह। उन्होंने एक जमाना देखा है। इस गाँव के शहंशाह थे वे। चाहा तो किसी को खेत का खेत बख्श दिया और अगर किसी पर नजर हेठी हुई तो उसे बरबाद कर दिया। पर अब वह समय नहीं रहा। आजादी के बाद उनकी छोटी-सी जागीर जिसे एक सेठ भी खरीद सकता था, छिन गई है। मगर अब भी गाँव के पटेल है। अब भी उनकी पूछ है, बिरादरी में साख है। अब भी मूँछ नीचे नहीं हैं।

उनका एक लड़का है जयदेल। उसने बाप की जागीरदारी देखी है। भला बड़े बाप का बेटा कहीं पढ़ता है? कौन इसको नौकरी करनी है, दूसरो की गुलामी। खेत हैं, खलिहान है, चौपाए हैं। मेहनत करो, मस्त रहो। और सच ही तो जयदेल का शरीर बड़ा गठीला है। पूरे छः फीट का साँवला सा जवान,

रग पुट्ठे उभरे हुए । देह माँसल । मसें भींग रही हैं । जिधर से निकलता है, लोग कतराते हैं । गालियों की बौछार मुँह में रहती और लाठी हाथ में । कभी कभी बन्दूक लटकाए घूमता जैसे माँद में से शेर निकल आया हो ।

और एक लड़की है । पतली, छरहरी । सोलह से ऊपर । रंग चाँदी सा, रूप चन्दन सा । सिर से पैर तक, जैसे साँचे में ढली हुई । वही छोटा सा मुख, बड़ी बड़ी मदभरी आँखें, लाल पतले अधर, नुकीली चिबुक । उठा, भरा बक्ष, पतली, बल खाती कमर । पतली लम्बी बाँहें । हाथ और पैर छोटे छोटे मेंहदी जैसे लाल । पैरों में पाजेब । छुन छुन करती घूमती तो दुनिया डोल जाती । दर्वाजे तक आती, फिर अन्दर भाग जाती, अटारी पर चढ़ती, घन्टों मेघ निहारती । अपनी कोठरी में घुस जाती । बैठी रहती । कजरा लगाती, बेंदी लगाती । दर्पण को देखती तो देखती रहती ।

दशहरे के दिन थे । एक दिन अटारी पर गई तो देखा, गली सुनसान थी । कलेजे पर हाथ रखा । हाय ! एसे में कोई आ जाय तो !........हाय दइया....यह कौन है ? थोड़ी देर में उसे दिखाई दिया । सफेद दूध मे धुले कपड़े पहने एक जवान । रंग गेहुँआ, चेहरा भरा भरा । आँखें किसी को ढूँढती सी । मस्तानी चाल में, सीटी पर कोई राग गा रहा था । ऊपर नजर उठाई, कि गोमा से टकरा गई । एक टक देखता रहा । गोमा लजाई और उल्टे पैर दौड़ी तो अटारी में पड़े पलँग पर गिर हड़ी । उसकी छाती धौंकनी सी उठ गिर रही थी । उसने छाती पर हाथ रख लिया । कौन है यह ? बड़ा बांका जवान है । पर होगा कोई, मुझे क्या ? कपड़े कितने उजले थे, बाल कैसे सँवारे हुए, और आँखें ? मुझे देख रहा था, जैसे जनम जनम से जानता ही हो ।

शाम को पटेल चौपाल पर गए, जगढेल खेत पर । वह फिर अटारी पर चढ़ी । अँधेरे में चारों ओर देखा, कोई न था । खड़ी रही, मालूम पड़ा जैसे कोई आ रहा है, दूध सा देवता । वह, वह । बाँहें फैलाए हुए । आकर उसने गोमा को कस लिया । गोमा मुँडेर से टकरा गई । उसका सपना टूट गया था । देखा वहाँ कोई नहीं है । वह बैठ गई मुँडेर पर । बैठी रही । दूर से स्वर सुनाई दे रहा था । बाँसुरी का मधुर स्वर । बोल तो मालूम न पड़ते थे, पर लय तो मन मोह रही थी । वही है, वही है । कहाँ है, कहाँ है ?

दूसरे दिन वह फिर दिखाई दिया। इधर आ रहा था। लपक कर पौरी में गई। हाय वही तो है। किवाड़ की आड़ में से देखा। देखा वह खड़ा हो गया है, उसने इधर देखा। वह पलटी तो पाजेब आवाज छुन छुन करती भाग गई, जैसे सैकड़ों रागिनियाँ राहें बिछा रही हों।

"ठाकुर साहब! ठाकुर साहब हैं क्या?" बाहर से आवाज आई।

अब वह क्या करे। वह नहीं जायगी। उसके पैर नहीं पड़ते। अरे वह तो अन्दर पौरी में आ गया। आवाज दे रहा है। वह नहीं जायगी। पर कहीं वह अन्दर आ जाय तो। पूछ तो लेना चाहिए। देहरी पर जा लगी। पलकें झुकी हुईं। पलकें उठाईं, देखा, वह एक टक उसे ही देख रहा है? पूछा—"क्या है?"

"ठाकुर हैं क्या········?"

"नहीं तो········।"

"तो फिर चलूँ········।" वह चलने को हुआ।

"कोई काम है········?"

"हाँ········" वह लौटा, "काका ने भेजा था, कर्जा चुकाने के लिए।"

"············" गोमा चुप।

"आप ले लीजिए········।" वह मुस्कराया।

"कर्जा बना रहने दीजिए," गोमा बोली और भीतर चली गई। पाजेब फिर बज उठीं छुन छुन।

"अच्छा! फिर आऊँगा········" पौरी में से आवाज आई। मालूम पड़ा जैसे वह चला गया।

छीतू का लड़का जब से आया है, गाँव में एक रौनक आ गई है। इतने उजले कपड़े यहाँ कौन पहनता है। पिछली साल दसवीं पास की थी, कालेज में जाने के लिए जिद करने लगा। अब जो शहर का मुँह देखा है तो रंग ही बदल गए। हर वक्त मक्खन से पेराट और कमीज में जुल्फें काढ़े, सुरमा लगाए, गाँव में घूमता है। कभी पेड़ के नीचे बैठा बांसुरी बजाता है तो कभी अपने साथियों में गप्पे ठोंकता है, और शहर की कालेज की बड़ी बड़ी बातें करता है तो सब दाँत तले ऊँगली दबा लेते हैं। ऐसा होता है कालेज, वहाँ तो सब जण्टिलमेन बने परियों में घूमते होंगे। गाँव वाले सोचते पढ़ा-लिखा है, होनहार है। अपनी चिट्ठी

पढ़वाते, लिखवाते । स्त्रियों के सामने वह गिटपिट कर गलत-सलत अंग्रेजी बोलता, वे ही ही कर हँस पड़तीं, "हाय राम । जे कौन सी बोली है ?"

एक दिन उधर से चला आ रहा था कि उसकी मस्तानी दृष्टि ऊपर उठ गई, और वहीं अटक गई । ओह ! यह रूप, यह यौवन । उसने आज तक ऐसा मादक सौंदर्य न देखा था । गोरे कमल से मुख पर बड़ी-बड़ी काली आँखें भँवरों सी चंचल मँडरा रही थीं और लाल पतले ओंठ मन्द मन्द मुस्करा रहे थे । उसने दूसरे ही क्षण देखा कि छुन छुन की आवाज हो हुई है, जैसी किसी ने उसके अन्दर की सारी घण्टियाँ बजा दी हैं । गली में कोई न था । वह थोड़ी देर तक बाट जोहता रहा शायद फिर आए । नहीं आई । कोई आ न जाए । क्या कहेगा ? वह चल दिया । ध्यान से देखा, ठाकुर का मकान है । वह आगे बढ़ रहा था, पर मन उसका पीछे खदेड़ रहा था ।

दोपहर में ही बैचेन था वह । शाम को झुटपुटे में फिर इच्छा हुई कि उस रूप की रानी को एक बार और देख आए । पर भय खा रहा था, कि अगर कोई देख ले तो । और फिर जण्डेल······ । उसका ख्याल आते ही विचार बदल गया । वह नहीं जायगा उस तरफ । दूर एक आम के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया । बाँसुरी बजाता रहा, बजाता रहा, और अपने में खो गया ।

आधी रात को वहाँ से लौटा । टूटी खाट पर पड़ रहा । आज उसकी आँखों में नींद न थी । वही मोहनी नाच रही थी । लग रहा था जैसे कोई उसके आस-पास ही थिरक रहा है । वह हाथ बढ़ाए तो पा सकता है । कालेज में भी एक से एक परी मौजूद है, पर ऐसी मस्त जवानी नहीं देखी । इस लावण्य के आगे तो वे सब पानी भरती हैं । वह क्या करे, क्या करे वह ।

उसे याद आया । उसके एक साथी ने प्रेम के पेंग बढ़ाने के कई तरीके बताए थे । कहा था, अगर लड़की अकेले में मिल जाय तो उसे ज़रा सा छेड़ दो । अगर नाराज होगी तो चुप हो जाएगी, कुछ न कहेगी । अगर शरमा जाय तो आगे बढ़ो । वह कई बार उसके साथ सिनेमा भी देखने गया था । उसने देखा था, कि गाँव की हसीन लड़की खेत रखा रही है, गोफन मे ढेला फेंक रही है, खटाक से ढेला फैंका, वह जा लगा एक रसीले जवान पर । लड़की ने देखा, घबरा गई, दौड़ी । नौजवान मुस्करा रहा था । चोट खाकर भी लड़की का अहसान मान रहा था ।

लड़की निहाल हो गई। हाय.......हाय ऐसी ही चोट वह खाना चाहता था। वह भी चाहता था कि पत्थर फेंक कर उसके मार दे। उसके माथे में खून निकले। वह छाती पर हाथ धरे मुस्कराता रहे। तब तो जालिम पसीजेगी।

रात भर वह ऐसी ही ऊलजलूल बातें उसके दिमाग में घुमड़ती रहीं। सुबह उठा तो देह भारी भारी थी। दूर खेत के कुँए पर गया। देर तक साबुन मल मल कर नहाता रहा। बाल्टी पर बाल्टी पानी डालता रहा। अचानक देखा कि ठाकुर घोड़े पर बढ़े जा रहे हैं। तब तो ठाकुर घर पर नहीं रहेंगे। और जण्डेल, वह खेत पर होगा।

वह घर आया। तेल लगाया, बाल संवारे। क्रीम लगाई, सुरमा लगाया। सफेद धोती पहनी, झक कुरता निकाला। रूमाल हाथ में लिया। चल दिया। सोचा कर्ज का बहाना ठीक रहेगा। पहले भी कई बार ठाकुर के यहाँ कर्ज के सिलसिले में अपने काका के साथ गया था। रास्ते में योजनाएँ बनाता जा रहा रहा ऐसे जाऊँगा, ऐसे कहूँगा। यह कहूँगा, वह कहूँगा। यह होगा, वह होगा। न जाने क्या क्या ? वह बार बार भगवान की मनौती मना रहा था।

भगवान ने उसकी सुन ली। उसकी मुराद पूरी हुई। पर न जाने उसको क्या हुआ ? उसके मुँह से बोल न फूटा। फिर आने का कह कर चला आया। उधर से भी कोई जवाब न मिला। अब क्या हो ? उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। उसके मंसूबे धरे के धरे ही रह गए।

वह आकर चारपाई पर औंधा लेट गया। आकर अखबार पढ़ने लगा। मगर अक्षर दिखाई नहीं दे रहे थे। इतने में उसने देखा। जण्डेल आ रहा है। हाय! कहीं इसने देख तो नहीं लिया। जालिम मार ही डालेगा। पटेल का लड़का है। वह उठ खड़ा हुआ। जण्डेल मुस्कराता हुआ आया, बोला—"कब आए यार!"

"परसों.........." एक सूखा सा उत्तर दिया।

'चलो बाग में ताश खेलें.......जब तुम यहाँ थे तो खूब खेलते थे।"

"खेलता तो सही......." उसने छिपाया, "मगर इस वक्त पेट में कीड़े कुडबुड़ा रहे हैं.......।"

"अरे सच ? तो उठ, मेरे घर चल, गूँजे खिलाऊँगा।" जण्डेल ने कहा

"अरे रहने भी दे।" बनावटी आनाकानी दिखाकर उसने कहा।

" चलेगा या उठाकर ले चलूँ ....।"

दोनों बातें करते चले। पौरी में पहुँचते ही उसका दिल धकधक करने लगा। अभी थोड़ी देर पहले तो वह यहाँ आया ही था, उस रूप की मदमाती रानी की झलक देखने। अब खुलकर देखने का अवसर मिलेगा। पर जण्डेल साथ है। और अगर उसने अभी आने की चर्चा छेड़ दी तो। हाय तब क्या कहूँगा ....?

वह यही सोच रहा था कि आँगन आ गया। जण्डेल ने आवाज दी—"गोमा ......अरी ओ गोमा ......।"

"आई......." ऊपर से आवाज आई। मधुर कण्ठ की वह रागिनी उसके कलेजे से छू गई और उसके सारे शरीर में गुदगुदी हो उठी।

छम छम करती वह आई। देखते ही हिरनी सी ठिठक कर खड़ी हो गई! जण्डेल ने कहा—"कोई नहीं है; अपने बचपन का साथी है,.........हाँ दो तश्तरियों में गूँजे तो ले आ।"

छुनक छुनक करती गोमा अन्दर लपकी। दोनों ने खाट बिछा ली और उस पर बैठ गए। जण्डेल ने बात चला कर पूछा—"पढ़ाई कैसी चलती है?"

" पढ़ाई तो ठीक चलती है," उसने देखा गोमा निकल आई थी, बोला, " गाँव की बहुत याद आती है.......।"

" हाँ भाई! अपना देस किसे भूलता है?" जण्डेल ने कहा।

गोमा गूँजे ले आई थी। दोनों के आगे रख दिए। देखा, गोमा के गाल लाल और गहरे लाल हुए जा रहे थे। दोनों खाने लगे। जण्डेल ने बात जारी की, "अपने राम की तकदीर में पढ़ाई नहीं है, तुम कालिज में पढ़ते हो, हमें इसकी खुशी है।"

" तुम्हारे एहसानों पर पल रहा हूँ। ठाकुर न कर्जा देते न मैं पढ़ता।"

" अरे इसकी परवाह मत करो। इस घर के दरवाजे तुम्हारे लिए सदा खुले हैं।"

जण्डेल ने खत्म कर लिया था। वह उठा, घड़े में से लेकर पानी पिया। और कहता हुआ चला गया, "एक गिलास पानी देना इसे। मै सुपारी लाता हूँ।" और दूसरे कमरे में चला गया।

गोमा पानी का गिलास लेकर आई। पलकें झुकी हुईं, होठों पर मुस्कराहट, गिलास आगे बढ़ाया। इसने भी हाथ बढ़ाया और गिलास पकड़े गोमा की पतली

लाल उंगलियों को दाब लिया। वह और लजा गई, और लाल हो गई। पलकें उठाई, बड़ी बड़ी आँखों से मुस्करा कर देखा, धीमे स्वर में बोली -"छोड़ो भी, अगर दद्दा ने देख लिया तो........।" इतने में आने की आवाज हुई। उसने धीरे धीरे उँगलियाँ छोड़ दीं। और गिलास मुँह से लगा दिया, और गट गट करके सारा गिलास पी गया। अरे इतना मीठा पानी ?

जण्डेल ने सुपारी दी, बोला—"चलो, अब तो खेलोगे ?"

"खूब जमकर खेलूँगा अब तो" उसने कहा और साथ हो लिया।

शाम तक दोनों ताश खेलते रहे। और वह हर बाजी हारता रहा। हर पत्ते में उसे वही सूरत नजर आ रही थी, और वह उसे फिर देखने के लिए अधीर हो रहा था। धुंधलका हुआ। जण्डेल ने कहा—"अरे चलूँ यार! खाना खाकर आना है। मैं न आऊँ तो कोई खेत ही काट ले जाय।...फिर आओगे, रात को बाजी जमेगी।

"भई! आज तो मैं बहुत थक गया हूं। रात भर सोऊँगा। उसने कहा और दोनों अपने घर की ओर मुड़े।

× × ×

जण्डेल खाना खाकर चला गया तो गोमा बाहर की किवाड़ें लगाने आई, तो उसे सुनाई पड़ा—"ठाकुर ....ठाकुर साहब।

गोमा के पैर रुक गए, वह दो कदम पीछे हट गई। देखा, वही था। उसकी छाती धक धक कर रही थी। बाहर अन्धा बुड्ढा नाई सो रहा था और खों खों कर रहा था। उसने देखा गली बिल्कुल सुनसान है, दो कदम आगे बढ़ गया, हकलाते गले से पूछा—" ठाकुर हैं क्या ?

"कक्का तो चले गए हैं। पास के गाँव में डाका पड़ गया है न ?"

"मैं .....मैं........" वह और आगे बढ़ा।

गोमा चुप, सुन्न सी खड़ी रही। उसने बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया। विनती के स्वर में गोमा बोली—" अगर कोई आ जाय तो..........कोई देख ले तो....... ?"

"कोई नहीं देखता....... ।" उसने उसका हाथ दबाते हुए कहा।

"नहीं....नहीं ...... ।"

"तो फिर....... ?"

"........ ।"

" चलो न········ ।"

" हाय ! अभी नहीं········ ।"

" तो कब····· ·· ?"

" ········"

" तो फिर मैं आऊँगा ।" उसने हाथ दबाया, "इन्तजार करना······।" यह कह कर वह चल गया । गोमा खड़ी रही देर तक । हाय यह क्या हुआ ? वह वह आगे बढ़ी । देखा गली में कोई न था । उसे धीरज आया । देखा, बुड्ढा नाई अब भी खें खें कर रहा था । उसने साँकल लगाई, और ऊपर चली गई । उसका हृदय जोरों से धड़क रहा था ! हाय! यह क्या किया मैंने ? क्या क्या कह दिया ? कहीं आ जाय तो····· ? पर है कितना अच्छा ? कैसी मीठी बात करता है ? पढ़ा है, लिखा है । शहर में, बड़े कालिज में पढता है । बड़ा आदमी है, खबसूरत है । आएगा तो क्या कहूँगी मैं । और अगर किसी को मालूम पड़ गया तो ? उसने छाती पर हाथ धर लिया । कुँए में डूब मरूँगी । मुँह न दिखाऊँगी । वह पड़ी रही, पड़ी रही । टुकुर टुकुर आँखों से चन्दा को देख रही थी जिसका प्रकाश धीमा धीमा पड़ता जा रहा था और अंधेरा घिरता आ रहा था । इतने में घटाएं छा गईं । चारों ओर घटाटोप छागया । उसे कुछ सुनाई दिया, जैसे कोई दीवार चढ रहा हो । वह बाहर निकलकर देखे कि इतने में मुंडेर कूद कर वह आ ही तो गया । हाय ! वह आ गया । अब·········।

अँधेरे में वह आगे बढ़ा और अटारी में गोमा को पालिया । गोमा न हिली न डुली, चुपचाप उसके सीने से चिपक गई । उसने गोमा को अपनी बाँहों में कस लिया । गोमा की गदराई जवानी कसमसा उठी । गोमा को यह कसाव अच्छा लग रहा था । आज उसने जाना था कि आदमी क्या होता है । उसने गोमा की ठोड़ी पर उंगली रखी, ऊपर को उठाया । गोमा को गर्म गर्म सासें छू रही थीं, जैसे कोई उसे मस्त शराब पिला रहा हो । वह उस मस्ती में डूबती गई । दो जलते मोटे मोटे ओंठ उसके पतले अधरों पर आ लगे । दोनों की सासें मिल गईं ।

गोमा ने खुस फुसाकर पूछा, "कौन हो तुम ! नाम तो बताओ ।"

" नाम····मेरा नाम····मोहन ।" उसने बताया ।

" मोहन····मुरलिया वाले···· ।"

" नहीं···अपनी राधा का मोहन।" उसने गोमा को और कस लिया। बाहर घटाएँ उमड़ रही थीं और ठण्डी हवा चल रही थी। ऐसी ठण्डी हवा का स्पर्श पार गोमा और मोहन से चिपट गई, बोली—"छोड़ तो न जाओगे ?"

" जनम जनम साथ रखूँगा····तेरी कसम···शहर ले चलूंगा अपनी रानी को। ग्वालियर देखेगी तो निहाल हो जाएगी।"

गोमा चुप रही। मोहन बोला, "जिस दिन पहली बार देखा था, उसी वक्त निछावर हो गया था। ऐसी रूपवती अलबेली नार मैंने सौ जनम में भी नहीं देखी····।"

गोमा लजाकर बोली, "झूठे कहीं के, शहर में तो बीसियों होंगी।"

" तेरी जैसी एक भी नहीं····तू तो परी है परी····।"

बाहर मेंह पड़ रहा था। बोली— "अब जाओ न, कोई आ जाय तो····।"

" ऐसी बरसात में कहाँ जाऊँ····अभी मन की मीठी बातें भी नहीं हुईं।"

" कैसी होती हैं मीठी बातें····।"

" तुम जैसी, गूँजे जैसी।"

वह लजा गई, बोली— "कैसे थे, मैं ने ही बनाए थे।"

" उन्हें खाकर ही मैं तुम्हारा गुलाम बन गया। ख्याल रखना इस गुलाम का·······।"

" क्या ख्याल रखूँ····मैं तो कुछ जानूँ नहीं।"

"रोजाना मिलना···ऐसे हीं····।"

" हाय! रोज कैसे होगा। कक्का हैं, भैया हैं···।"

" कैसे भी हो, मैं बिना तुम्हें देखे जी नहीं सकता।"

" हाय राम! मैं क्या करूँ।"

" वादा करो···।"

" ·······।"

" करो वादा····तुम्हें मेरी सौगन्ध।"

" जैसी तुम्हारी मर्जी।"

मेघ थम गया था। बोला, "अब चलूँ···कल फिर आऊँगा, इसी वक्त।"

यह कह कर वह मुंडेर पर से अंधेरी रात में धीमे धीमे नीचे खिसकने लगा। वह कलेजे पर हाथ रखे देखती रही अपलक।

४

मृणाल लॉन में मूढ़े पर बैठी स्वेटर बुन रही है, पास में ही चीते का छोटा बच्चा उछल-कूद रहा है। जब से यह बच्चा आया है, मृणाल का सारा ध्यान इस ओर केन्द्रित हो गया है। हर समय उसका ध्यान रखती है। उसके खाने-पीने का, उसके आवास का। है भी कितना प्यारा ? पीला, लाल गहरी धारियां भूरी आँखें, पैनी मूँछें। गले में जंजीर, पैरों में घुंघरू बंधे है। उछलता, कूदता, है तो छम छम कर उठते हैं, और जब तब मृणाल का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। मृणाल नई बुनाई आरम्भ कर रही थी कि उसे चीख सुनाई पड़ी। वह एक साथ उठ खड़ी हुई। देखा उस के शेरा ने रूपा को चपेट लिया है। और रूपा चीख कर दो कदम पीछे हट गई। यह देख कर मृणाल खिल-खिला कर हंस पड़ी और जंजीर अपनी तरफ खींच ली। बच्चा खुर्र खुर्र करता रहा।

"यह तो किसी दिन मेरी जान ही ले लेगा।" रूपा बड़बड़ाई।

"आओ रूपा, आज अकेले कैसे आई, ताई कहाँ है ?"

"वे तो काम पर गई हैं, मैं ने सोचा, मृणाल दीदी से मिल आऊं। मुझे क्या पता था कि वहाँ भी मेरा दुश्मन पाल रखा है।"

"अरी दुश्मन नहीं है, जंगल का राजा है, देख कैसा मेरे इशारे पर नाचता है ?" मृणाल इठला कर बोली।

"तुम्हारे इशारे पर तो चाहे कोई नाच जाए।" रूपा ने कहा, "मगर हमने क्या कसूर किया है कि फाटक में पैर रखते ही..........।"

"अरे जान जायेगा, तो ऐसा सलूक नहीं करेगा।" मृणाल ने कहा,

"अरे हाँ ! तू अच्छी आई। मुझे कुछ जरूरी बात करनी थी। देख इसके आने से मैं समाज का काम भी नहीं देख पाई। अब तू············?"

"मुझे क्या करने को कहती हो······?" रूपा ने ठोड़ी पर उंगली रख कर कहा।

"या तो इसे संभाल······"

"हाय ! इसे, मेरे दुश्मन को······"

"या समाज का काम देख······"

बीच में ही रूपा बोली—"क्यों मजाक करती हो दीदी। मैं किस लायक हूं। झूठे ही क्यों आसमान पर चढ़ाती हो, यहीं रहने दो।"

"नहीं सच" मृणाल बोली—"मुझे सहायता की जरूरत है। तू बस इतना करना कि रोज की डाक देख लेना, उनका उत्तर लिख देना।"

"अच्छा इतना कर दूंगी······।"

"और कभी कभी नेताओं का स्वागत करना पड़ेगा।"

"मैं······? क्या कह रही हो दीदी······मैं······किसी के सामने भी जाने लायक हूँ ?"

"हाँ, तू······! क्या ऐब है तुझ में··········?" मृणाल ने कहा और प्यार भरी निगाह से उसकी ओर देखा !

रूपा ,बीस से ऊपर। मैली-सी धोती में गोरी, सलोनी लजाली सी रूपा। कैसी भली लग रही थी ? कैसा अछूता सौन्दर्य था ? गोरा कोमल गात, कलाकार की तूलिका से रचा अंग प्रत्यंग। भरा भरा गुद-गुदा शरीर। निरन्तर विकसित यौवन। बड़ी बड़ी भँवर-सी आँखें, उठी नाक, पतले लाल अधर, नोकदार ठोड़ी। मृणाल ने देखा तो उसके अधर मुस्कराते रह गये।

"सच तू मुझसे भी अच्छी है।" मृणाल ने कहा।

"अच्छा भगाना चाहती हो, तो जाऊं।" वह चलने का अभिनय कर बोली।

मृणाल ने उसका हाथ पकड़ लिया—"जाओगी कहाँ, मालूम नहीं किसके पंजे में हो।"

"तुम्हारे······" वह पास खिंच आई, बोली, "इस हाथ को थामें

रहना दीदी। आँधी-पानी में छूट न जाए। तुम्हारा ही तो साया है।" यह कहते कहते उसकी आँखें डबडबा आईं।

"हठ पगली! परवाह क्यों करती है?" मृणाल ने कहा तो पर उसकी कसकती टीस को भाँप लिया।

रूपा, एक विधवा की एकमात्र सन्तान है। रामवती ने बड़े अरमान से पाला था इसे। सोचा था कि दामाद पाकर वह पुत्र पा जाएगी। रूपा जवान हुई। पहली बार ससुराल गई तो वहाँ से माँग से सिंदूर पोंछ कर और चूड़ियाँ तोड़ कर ही लौटी। रामवती ने देखा तो छाती पीट ली। दामाद ट्रक ड्राइवर था। एक दुर्घटना का शिकार हो गया। रूपा ने यह भी न जाना कि जीवन क्या होता है, जीवन साथी क्या होता है, कि उसका सुहाग छिन गया। तब से वह अपनी माँ के पास ही है। रामो काम पर जाती है, तो रूपा घर पर अकेली ही रह जाती है। बीस की उमर और खिलती उठती जवानी। अड़ौस-पड़ौस के नौजवानों को सोचने पर मजबूर करती है। इसलिए गरीब ने मृणाल का सहारा पकड़ा है। माँ काम पर जाती है। बेटी मृणाल से पढ़ना-लिखना सीखती है। मृणाल के लिए भी रूपा एक प्रश्नचिन्ह बन गई है। इस पहेली को वह सुलझाना चाहती है, पर कैसे हो, क्या हो?

मृणाल ने उसके आँसू पोंछ कर कहा—"देख तू रोएगी तो मैं फिर कभी न बोलूंगी। तू तो ऐसी प्यारी सहेली है कि जीवन भर तुझे साथ रखूं..............।"

"........." रूपा कुछ न बोली, गुम-सुम देखती रही।

"तेरे हाथ में तो वह जस है ......" मृणाल ने छेड़ कर कहा।

"अच्छा रहने भी दो दीदी," रूपा ने मीठा झुंझला कर कहा, "मेरे हाथ का छुआ तक भी कोई न खाए। मेरा मुँह देखे तो भोजन न मिले।

"अच्छा ठीक है.... "तब तो आज मैं तेरे हाथ का ही बना खाना खाऊंगी। तुझे मेरी कसम है........चल चल। आज मैंने तुझे सबसे पहले देखा है, देख कितने अच्छे व्यंजन मिलते हैं मुझे।"

मृणाल ने उसे उठाया और रसोई में ले गई। रूपा का जी हल्का हुआ, वह काम में लग गई। मृणाल समझा कर अपनी बैठक में आ गई। वही प्रश्न

उसके दिमाग में घूम रहा था। वह मेज पर बैठ गई। लिखने लगी। थोड़ा लिखा, फिर काट दिया। थोड़ी देर बाद झुंझला कर कागज को मोड़-तोड़ कर गुड़ीमुड़ी किया। कस कर मुट्ठी में बन्द किया, और जोर से बाहर फेंकने लगी कि उसे सुनाई दिया, "हैं हैं यह क्या करती हो ? देखती नहीं हो, कौन आ रहा है ....?"

मृणाल ने देखा, जस्टिस बोस, सरीन को साथ लिए चले आ रहे है। वह अपने किए पर लजा गई और मुस्कराकर बोली, "आइए न सरीन बाबू! अब के तो बहुत दिनों बाद दर्शन दिए........बैठिए.... ..बैठिए...... सोफा पर बैठिएगा।

"पहिले आप.. ....लेडीज फर्स्ट.......।" सरीन ने मुस्कराकर कहा।

"नहीं, नहीं पहले पिताजी........फिर अतिथि, बाद में मैं........?"

"अच्छा लो, मैं ही बैठा जाता हूँ........" श्री बोस ने कहा—"अब बहुत शैतान होती जा रही है।"

"कहिए! और इस क्षेत्र के नये समाचार क्या है ?" मृणाल ने बात चलाई।

"इस क्षेत्र के बारे में तो कुछ न पूछिए," सरीन ने उत्तर दिया—"यह क्षेत्र तो बना ही इसलिए है। रोजाना लूट, मार, डकैती की घटनाएँ होती ही रहती हैं। लाठी चलाना तो एक मामूली-सी बात है। और यह क्षेत्र अभी ऐसा है, ऐसी कोई बात नहीं है। अकबर के शासनकाल में भी यहाँ राहगीरों को लूट लेने की प्रथा थी। और अंग्रेजों के जमाने में भी यहाँ के ठग उनका सिर-दर्द बने रहे.......।"

"वाह....वाह...आप तो इतिहास के इतने अच्छे ज्ञाता निकले, यह तो आज ही मालूम पड़ा।" मृणाल ने मुस्करा कर कहा।

"हाँ! इतिहास मेरा प्रिय विषय रहा है, उस केअनुसार यह सच है....।"

बीच ही में मृणाल बोली—"मगर मानसिंह तौमर के समय में तो इस क्षेत्र में बहादुरी और स्वामिभक्ति ही दिखाई थी........।"

"अरे उसी के वंशज हैं वे लोग........" सरीन ने हंस कर कहा।

"तब तो ये लोग भी बहादुर और स्वमिभक्त होने चाहिए।" मृणाल बोली।

"हैं न," सरीन ने कहा—"गजब के बहादुर हैं, कोई निशाना नहीं चूकते। बात के पक्के इतने कि जो कहते हैं, पूरा कर लेते हैं। और स्वामिभक्त भी हैं, लेकिन अपने सरदारों के ही।

बोस ने कहा – "लगता है जैसे इनकी प्रतिभा गलत मोड़ पा गई है।

मृणाल बोली—"जभी तो कहती हूँ। दमन के बजाय, इनकी प्रतिभा को सही मोड़ देना चाहिए, जिससे कुछ निर्माण हो सके, कुछ कल्याण हो सके।

"क्या मतलब ?" सरीन ने पूछा।

"मतलब यह कि यदि उपयोग किया गया तो इनकी बहादुरी और स्वामिभक्ति हमारे देश की रक्षा कर सकती है, उसका नाम उज्ज्वल कर सकती है……।"

बीच ही में बोस बोले—"कैसी सपने की सी बातें करती हो बेटी, ऐसा कभी हुआ है……।"

मृणाल बोली—"नहीं हुआ है, इसका अर्थ यह नहीं कि नहीं हो सकता है। फिर ऐसी घटनाएं इतिहास में बिखरी पड़ी हैं। बाल्मीकि का उदाहरण किसे ज्ञात नहीं है। अंगुलिमाल का हृदय परिवर्तन तथागत ने किस सरलता से किया था। और…और…… ।

मृणाल और कुछ कहती कि इतने में नौकर दौड़ता हुआ आया, बोला—"सरकार ! गजब हो गया।"

तीनों उठ खड़े हुए, पूछा—"बात क्या है ?"

"जी…जी…वह…शेरा……," नौकर हकलाते हुए बोला।

"क्या हुआ शेरा को……" मृणाल ने चिन्तित होकर पूछा।

"जी उसने गाय पर हमला बोल दिया था, और जब मैं बचाने पहुँचा, तो मेरे ऊपर चढ़ बैठा……यह देखिए कैसे पंजे मारे हैं……।"

बीच ही में सरीन ने कहा—"अरे……अभी उसके दाँत नहीं निकले हैं, नहीं तो……।"

"मैंने तो पहले ही कहा था," बोस ने कहा, "पालना खतरे से खाली नहीं है। जंगल का जानवर है।"

"जंगली जीव कभी नहीं सुधर सकते।" सरीन ने कहा।

मृणाल समझ गई थी कि सरीन ने यह चोट कहाँ पर की है तिल-मिला कर बोली—"आप यह क्यों भूल जाते हैं कि यह केवल एक पशु है। अपने सुखद वातावरण से दूर, अनजानों के बीच। इसे प्यार चाहिए, सहानुभूति चाहिए।"

"और उचित व्यवस्था भी," बोस ने कहा—"खुला वातावरण भी चाहिए और शिकार भी ......।"

सरीन ने जोड़ा—"और ज्यों ज्यों यह बड़ा होता जायगा, इसके नाखूनों, इसकी मूंछों और बालों में, जहरीले तत्व आते जाएंगे।"

"तब क्या करूं मैं....मैं क्या करूं।" मृणाल आहत होकर बोली।

"इसे वापस कर दो।" बोस ने कहा।

"नहीं, नहीं ऐसा नहीं होगा। इसने ममता उत्पन्न कर ली है मेरे हृदय में।"

"मेरा एक सुझाव है, अगर आप मानें तो।" सरीन ने कहा।

"क्या? बताइए न........।" मृणाल ने आँखें फाड़ कर पूछा।

"हाँ सरीनजी! कुछ ऐसा करो कि शेरा भी पल जाए और बिटिया का दिल भी न टूटे।"

सरीन ने कहा—"इसे यहाँ के चिड़ियाघर को सौंप दें। वहाँ इसकी व्यवस्था भी रहेगी, देख-भाल भी होगी। मृणाल भी जब चाहे तब देख सकती हैं।"

"हाँ! हाँ! यही ठीक रहेगा, आप ऐसा ही कीजिए। क्यों ठीक है न मृणाल!"

"मैं क्या कहूँ" मृणाल ने कहा, "जैसी आप लोगों की राय हो।"

नौकर चला गया था। सरीन उठा, बोला—"अब चलूं, बहुत देर हो गई। बहुत समय लिया मैंने।"

"अरे बैठो न," बोस ने कहा, "चाय तो पीते जाओ..........मृणाल! व्यवस्था करो बेटी।"

"चाय ही क्यों, बारह बज रहे हैं, खाना खाकर ही जाएंगे। मृणाल ने अधिकार भरे स्वर में कहा, "आप बैठिए, मैं अभी आई।"

मृणाल वहाँ से उठ कर सीधे रसोईघर में गई। देखा रूपा काम में व्यस्त है। आग की तपन से उसके कपोल रक्ताभ हो उठे हैं, जिस पर एक दो लटें झुक आई हैं। मृणाल को बहुत भली लगी वह। देखा रसोई का बहुत सा सामान उसने तैयार कर रखा है। तीन-चार सब्जी, दो दाल, भात, चटनी, रायता तथा हल्के हल्के फुलके। मृणाल निहाल हो गई। बोली, "वाह मेरी रानी! तुमने तो कमाल कर दिया। इतनी जल्दी यह सब कुछ।"

"मजाक न करो दीदी," रूपा मुस्करा कर बोली, "मुझसे तो कुछ भी नहीं आता।"

"अच्छा उठ, उठ" मृणाल ने कहा, "यह सब नौकर संभाल लेंगे" चल अपन दोनों गुसलघर में चलें। दोनों सहेली आज मिल कर नहाएंगी।"

"मैं तो नहाई हूं·······पहले ही।"

"चल एक बार और सही।" मृणाल ने हाथ पकड़ कर उसे उठा लिया। खींच कर बाथ रूम में ले गई। टब में ढकेल दिया और खुद भी उस में उतर गई।

"हाय! मेरे पास तो कपड़े भी नहीं है।" रूपा बोली।

"मैं तो हूं" मृणाल ने उसकी चुटकी ली और पूछा, "कैसा लग रहा है?"

"कुछ पूछो मत·······," रूपा ने कहा। गुन-गुने पानी में साबुन का फेन भरा हुआ था। दोनों सहेलियों के आलोड़न से फेन और बढ़ गया था। मृणाल ने फेन के दो-चार गोले लेकर रूपा के मुंह पर दे मारे। रूपा लजा गई। मृणाल बोली, "अरे इस चन्द्रमा पर से बादल तो हटा।"

"क्या होगा·······?"

"बताऊं·······?" मृणाल पास आकर धीरे से बोली—"बोल! मैं मरद होती तो·······?"

"हाय·······," बीच में ही रूपा शरमाकर बोली, "तब तो मैं मर ही जाती। हटो दीदी·······ऐसी बातें न करो·······।"

"क्यों न करूं·······तू इतनी सलौनी क्यों है?"

"सच दीदी·······तुम बड़ी वैसी हो···········और कोई होती तो डाह करती।"

"मुझे तो सुख होता है········। अच्छा अब चल।"

दोनों उसमें से निकल कर साफ पानी के टब में उतरीं। खूब नहा-धो कर बड़े-बड़े तौलियों में लिपटी, पास के कमरे में पहुँचीं। वहाँ हिटर जल रहा था। तौलियों से शरीर खूब पोंछा, पाउडर छिड़का। सूट पहिने और मृणाल के कमरे में आई। वहाँ मृणाल ने रूपा के लिए बढ़िया जार्जेट की नीली साड़ी निकाली, जिस पर जरी के तारे चमक रहे थे और लाल शर्नील का ब्लाउज। अपने लिए अंगूरी नाइलोन की साड़ी और काला साटन का ब्लाउज। ड्रेसिंग टेबिल पर दोनों बैठीं। तेल डाल कर रूपा उठी तो पकड़ लिया मृणाल ने, "जाती कहाँ है, अभी तो बहुत बाक है।" मृणाल ने कहा और उसके जूड़ा बाँध दिया·······क्रीम लगाई, काजल लगाया, रूज लगाया। और पैंसिल से उसके गाल पर एक तिल भी बना दिया।

"उई·······तुम बड़ी दुष्ट हो दीदी········" पैंसल के दबाव से तिलमिला कर रूपा बोली,

"यह शृंगार मुझे शोभा नहीं देता····तुम्हें मालूम है·······मैं तो····।"

"चुप············तुझे मेरी कसम।" मृणाल ने मुंह पर उंगली रख कर कहा।

मृणाल भी तैयार हो गई थी। उसने रूपा को खड़ा कर दिया, आदमशीशे के सामने। रूपा अपना यह अतुल सौन्दर्य देख कर सिमट गई, शरमा कर गड़ गई, ओठ काटने लगी।

"बोल कैसी लगती है ?" मृणाल बोली।

"तुम्हारी जैसी········?"

"जभी तो कहती हूँ········,"

"क्या········?"

"अगर मैं मर्द होती········?"

"तो क्या होता ?"

"तुझ से ही ब्याह करती !"

"ऐसी बातें न करो जीजी" रूपा बोली—"मैं बड़ी अभागी हूँ········।"

बीच में ही मृणाल बोली—"तू बड़ी सुभागी है, तू क्या जाने………?"

"मृणाल…………ओ मृणाल बिटिया……कहाँ हो ….आओ।" बाहर से आवाज आई।

"आई पिताजी" मृणाल ने कहा—"चल री………बड़ी देर कर दी बातों में……।"

"अच्छा मैंने …… ?" रूपा मुस्कराई।

दोनों चलीं। डाइनिंग हाल में पहुंचीं। देखा, नौकरों ने सब सामान व्यवस्थित कर रक्खा है। श्री बोस व सरीन कुर्सियों पर बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं। दोनों पहुंचीं तो दोनों आश्चर्यचकित हो गए। सरीन की आँखों में तो जैसे अमृत बरस रहा हो। ऐसा युगल सौन्दर्य उसने कम ही देखा था। एक दूसरे से होड़ लेता हुआ। एक नीली साड़ी में लाल ब्लाउज में गोरी मोहक गुड़िया सी, दूसरी अंगूरी साड़ी में काले ब्लाउज में सौन्दर्य सम्राज्ञी। दोनों आईं, पास पास बैठ गईं। एक में शर्म थी, दूसरी में चंचलता। एक लज्जा से लाल हो रही थी, दूसरी चपलता से गुलाबी।

बोस कुछ कहें कि मृणाल ने परोसना आरम्भ कर दिया—"देखिए…. आज क्या……… " क्या ……'बनाया है।" और सब के आगे डिश बढादीं। सबने नेपकिन लगा लिए। मृणाल ने रूपा का नेपाकिन लगाया।

खाना आरम्भ हुआ। सब आँखें झुकाए खाने में व्यस्त थे। यह निस्तब्धता तोड़ी मृणाल ने ही—"खाने में थोड़ी देर हो गई सरीन बाबू! माफ करना।"

"नहीं, कुछ देर नहीं हुई" सरीन ने कहा—"और इस प्रकार के खाने के लिए कितनी ही प्रतीक्षा करनी पड़े। ऐसा स्वादिष्ट भोजन तो मैंने पहले कभी नहीं किया।"

बोस बोले—"सच बेटी! आज तो कमाल कर दिया।"

सरीन ने कहा—"मुझे शब्द नहीं मिल रहे मृणालजी कि किस प्रकार आप की कुशलता की प्रशंसा करूं।"

"प्रशंसा मेरी नहीं, इसकी कीजिए, सारा कमाल इसका ही है।" मृणाल ने रूपा की ओर इशारा किया। रूपा जो इतनी देर अपनी प्रशंसा से गड़ी जा रही थी, और अपने में सिमट गई, और खाने के बजाय चम्मचें इधर

उधर रखने लगी। सरीन ने देखा, उसका भोलापन उसके मादक यौवन पर किस प्रकार हावी हो रहा था, बोला—"अरे हाँ! इनका परिचय तो कराया ही नहीं आपने········।"

बोस बोले—"यह हैं········।"

बीच ही में मृणाल ने कहा—"मैं कराती हूँ परिचय। यह है रूपा···· मेरी बहन, मेरी सहेली।"

"बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर।" सरीन ने मुस्कराकर हाथ जोड़े।

उधर से भी दो छोटे छोटे हाथ उठे, और धीमे से स्वर निकला—"और और मुझे भी········।"

"और सबसे अधिक मुझे·······," मृणाल ने कहा और हँस पड़ी, "मुझे यह बताते हुए खुशी है कि रूपा न केवल अच्छा खाना ही बना लेती है, बल्कि अच्छा गा लेती है, और अच्छा नाच भी········।"

"हाँ! रूपा, बहुत गुणवती है।" बोस ने समर्थन किया।

"तब तो आज सुनने को मिलेगा" सरीन ने उत्सुकता से कहा।

"जी नहीं·······दीदी तो झूठी तारीफ करती हैं, मैं तो इनके आगे कुछ भी नहीं।" रूपा ने कहा।

"इनकी तारीफ तो हम हमेशा ही करते है, पर आज तो····।"

"सरीन कुछ कहता कि बीच में रूपा बोली—" आज तो मुझे माफ कर दें·······दीदी हो····।"

मृणाल बीच में बोल उठी—"चल माफ कर दिया········।"

खाना समाप्त हुआ। पान पेश हुए। सरीन बोला—"अच्छा, अब आज्ञा दीजिए····आज का समय तो बड़ा सुहाना बीता····।"

"आया करो बेटा····" बोस बाबू ने कहा और अपने कमरे की ओर चले गए।

दोनों सरीन को पहुँचाने दर्वाजे तक आई। दोनों ने हाथ जोड़े।

"अच्छा नमस्कार···············"मुस्कराकर सरीन ने हाथ जोड़े और हृदय में एक मीठी पहेली लिए विदा हुआ।

———

५

नरेन्द्र की डायरी के कुछ पन्ने

८ नवम्बर, १९५५

आज मेरा जन्म-दिन है। मैंने आज तक किसी पर यह प्रगट नहीं किया कि उस दिनांक को मैंने संसार में पहली सांसें लीं। यूँ ही चुपचाप ये मूक दिवस बिता दिए। पर यह दिन मुझे सूना नहीं छोड़ता। इस दिन जीवन की सारी घटनाएँ चलचित्र के समान मेरे मस्तिष्क में घूम जाती हैं और दिल में एक तूफान उठ खड़ा होता है, जो एक तड़प पैदा कर देता है, एक टीस उपजा देता है।

मैंने अपने पिता के दर्शन नहीं किए। मेरे जन्म के एक वर्ष पश्चात् वे मुझे व मेरी माँ को इस संसार से संघर्ष लेने के लिए छोड़ गए। अबला मेरी माँ और अबोध मैं। चक्की पीस पीस कर मुझे पाला मेरी माँ ने। बड़ी साधना से उसने मुझे पढ़ाया। मैंने कक्षा आठ ही पास की थी कि विधाता को यह न भाया। एक लम्बी बीमारी के बाद वह चल बसी। अब रह गया था मैं, अकेला मैं। सगे सम्बन्धियों की कृपा का भिखारी मैं। वे लोग चाहते थे कि मैं उनके घर का काम करूँ और दोनों समय दो टुकड़े मुझे मिल जाँय। पर मेरी आत्मा ने यह स्वीकार कहाँ किया? वह तो बराबर ठेल रही थी, और उसने मुझे इतना ठेला कि मैंने कानपुर आकर ही दम लिया। टकराते टकराते एक मिल में नौकरी मिल गई। खर्च कुछ था नहीं। पैसे बचते दीखे, लोभ बढ़ गया। कमाता था, जमा करता था। आठ महीनों में मैंने दो सौ रुपए बचाए।

जुलाई में मैंने हाईस्कूल में प्रवेश ले लिया। प्रयत्न करने पर फीस माफ हो गई। पुस्तकें भी निर्धन छात्र शुल्क में से प्राप्त हो गईं। और इस प्रकार खर्च

चलने लगा। मेट्रिक में सर्वप्रथम आया तो हैडमास्टर साहब ने छाती से लगा लिया। उनका एहसान मैं जीवन भर नहीं भूलूंगा। उन्होंने ही मुझे बढ़ाया है, आगे बढ़ने की हिम्मत दी है।

मुझे छात्रवृत्ति मिलने लगी। उन्होंने दो ट्यूशन भी लगवा दीं और इस प्रकार मेरी जीवन नैया धीरे धीरे बहने लगी। बी. ए. में प्रथम आया तो उनकी छाती दूनी हो गई। उन्होंने एक पत्र लिखकर मुझे ग्वालियर भेज दिया। यहीं मैंने एम. ए. किया और इन्हीं प्रोफेसर महोदय की छत्रच्छाया में रिसर्च भी कर रहा हूँ। देखें मंजिल कब हाथ आती है।

मैंने अपने छोटे कमरे में एक दीपक जलाया है। उसमें मुझे अपनी परछाईं दीख रही है। अपने जन्म-दिन पर सदा ही मैं एक दीपक सारी रात जलाता हूँ और उसमें बराबर तेल डालता रहता हूं, ताकि वह बुझे नहीं, उसकी शिखा कम न हो, ऊँची हो, और अधिक ऊँची।

बस दीपक की भाँति ही तो मैं जल रहा हूँ, और सभी ओर से स्नेह की याचना करता रहा हूँ; ताकि जिस साधना से यह जीवन का दीप जलाया है, वह धीमा न हो, और अधिक तेजी जले, बढ़े और सच कहूं, इसमें सबसे अधिक स्नेह उंडेला है मृणाल ने।

मृणाल! उसके बारे में सोचता हूं, तो जैसे जीवन की निधि पा जाता हूं। मृणाल, जैसे आकाश का नक्षत्र मेरे हाथों में आ गया हो। उसीके तो पावन स्नेह से मैं जल रहा हूं, नहीं तो कभी का बुझ जाता।

मेरा आज जन्म-दिन है। मृणाल! उस सूनेपन में केवल तुम मेरे साथ हो, इस दिए में तुम्हारा ही स्नेह है। जितना स्नेह दोगी, उतना जलूंगा। मुझे स्नेह से वंचित न रखना मेरी मृणाल! मैं किस प्रकार तुम्हारे ऋणों का बोझ उतारूंगा? तुम इतनी उदार हो कि मैं जीवन भर तुम्हें नहीं पा सकता। पर तुमने मुझे इतना बाँध लिया है कि अब मेरा व्यक्तित्व खो गया है। यह जीवन तुम्हें, तुम्हारे देश को अर्पित है। उस देश को, जिसके लिए तुम्हारे हृदय में दर्द है। उस समाज के लिए, जिसके लिए तुम्हारे अन्तर में तड़प है। तो लो मृणाल! तुम्हारे मन्दिर में मैं अपना चौबीसवां दीपक रखता हूं, स्वीकार करो।

१४ नवम्बर १९५५

आज एक महान दिवस है। उस व्यक्ति का जन्म-दिन, जो सारे विश्व की त्रस्त जनता को एक सन्देश दे रहा है। उसने अपने लिए कुछ भी तो नहीं रखा। यह दिन भी देश के नौनिहालों को दे दिया। सच आज तो मैं बच्चा ही बन गया।

युवक सेवक समाज का विशेष प्रोग्राम था आज। ललिता और प्रकाश दोनों सुबह आए थे। पूरी रूपरेखा बताई। दिल दूना हो गया। अब मेरे साथी सब जमा लेते हैं। कहने लगे, डाइरेक्शन तुम्हीं दो। मैंने कहा— "भाई आज-कल कुछ मानसिक उलझनें चल रही हैं। ऐसा करो मृणाल के यहाँ चले जाओ, वह मदद कर देंगी। वैसे भी वे बालसुलभ क्रियाओं को भली प्रकार जानती हैं।"

वे बोले— "वे तो बस अपने शेरा में ही बिजी रहती हैं, बात तक करने के लिए............।"

बीच ही में मैंने कहा— "अरे अब शेरा वहाँ नहीं रहा। सरीनजी की कृपा से अब वह शासकीय कटघरे में पहुँच गया है........।"

"अच्छा! कब ? तब तो हम जरूर जाएँगे। मगर आप प्रोग्राम में जरूर पधारें।"

"वाह क्यों नहीं, तुम बेफिकर होकर काम करो।" कह कर मैंने उन्हें विदा किया।

दिन भर मैंने 'मेरी कहानी' पढ़ी। आनन्द आ गया। अपनी तरह की एक ही पुस्तक है। किस प्रकार विद्रोही उबलने प्राण जवाहर पंचशील के मसीहा बन गए। आश्चर्य होता है।

शाम को जब मैं टाउन हाल पहुँचा तो देखा हाल खचाखच भरा था। सामने की सीट्स पर मेरे लिए भी एक सीट खाली थी। जाकर बैठ गया। पास में देखा, मृणाल भी वहीं थी। मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने सोचा था कि वह डाइ-रेक्ट कर रही होगी। उसके पास में ही श्री बोस व सरीन भी बैठे थे। सही समय पर प्रोग्राम आरम्भ हुआ। पर्दे पर नाम दिखाए जाने लगे। प्रत्येक कार्य पूर्ण व्यवस्थित ढंग से संयोजित किया गया था। अन्त में नाम निकला—'निर्देशिका — "स्वर्णवर्णा।"

मैंने मृणाल से पूछा— "यह स्वर्णवर्णा कौन है ?"

" बताऊँगी········ " धीरे से वह बोली ।

" तुम्हीं तो नहीं हो ?" मैंने हँस कर पूछा ।

" मेरे सिवा भी दुनियाँ में और हैं ?" मृणाल ने मुस्कराकर कहा ।

फिर हम देखने में लीन हो गए । प्रोग्राम बहुत ही सुन्दर था । किस प्रकार एक बालक आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है और कितनी बाधाएँ आती हैं, उसके मार्ग में । समाज से अपील की गई थी कि इस नन्हें मुख्य व्यक्ति की आवश्यकताओं पर पूरा पूरा ध्यान दे, नहीं तो प्रतिभाओं का विकास न होगा । छोटे छोटे बच्चों के डांस और संगीत कार्यक्रम भी बड़े मनोरम हुए । अन्त में था फेन्सी ड्रेस शो । अरे उनमें तो कोई पहचान ही न पाता था । मृणाल भी कुछ बता नहीं रही थी, वह चुपचाप देख रही थी । लगता था कि यह उसी के दिमाग की उपज है ।

शो खत्म हुआ । सभी विदा हुए । मृणाल ने कहा—" चलो कार्य-कर्त्ताओं को बढ़ावा दे आवें । कितना सुन्दर प्रयास किया है बच्चों ने ?"

" हाँ ! हाँ ! क्यों नहीं·······?" और मैं उसके साथ हो लिया ।

हम पीछे के दर्वाजे से ग्रीन रूम में पहुँचे । सभी अपनी ड्रेस उतारने में लगे थे । कोई अपना मेकअप हटा रहा था । मृणाल ने इशारा कर बताया— " देखिए, यह हैं रामू, यह चन्दन, यह खुशाली और वह अनवर·······यह गीता, वह मञ्जुला·······वह····।"

" और ये······· ।" मैंने बच्चों के बीच खड़ी एक सुन्दर युवती की ओर इशारा किया ।

" यही हैं स्वर्णवर्णा·······" मृणाल ने कहा तो वह युवती इधर को ही मुड़ गई और बड़ी बड़ी आँखों से देखने लगी ।

मैंने कहा— "इनका परिचय तो कराओ·········· ।"

"इसका असली नाम है रूपवती·······मेरी सहेली और यह हैं श्री नरेन्द्र, युवक सेवक समाज के मंत्री ।" मृणाल ने दोनों का परिचय कराते हुए कहा ।

रूहवती ने हाथ जोड़ दिए । मैंने नमस्कार का उत्तर देते हुए कहा— "विस्तृत परिचय तो कराओ न·······कौन हैं, क्या करतीं हैं······· ?"

" हाँ,दी दी······· " रूपवती ने भी कहा ।

" वह फिर होगा, अभी इतना ही काफी है कि रूपवती हमारे समाज की नयी कर्मठ सदस्या हैं........ ।"

" और हमें उनसे बड़ी बड़ी आशाएँ हैं ।" मैने जोड़ा ।

मृणाल वहीं व्यवस्था में लगी रही । मैं चला आया । सोचता हूं कि समाज में रूपवती का आना अच्छा ही हुआ, क्योंकि काम करने वालों की हमेशा आवश्यकता रहती है ।

आज मेरा दिन बहुत ही सुरुचिपूर्ण ढंग से बीता । मेरी उथल-पुथल को मुझे तंग करने के लिए थोड़ा भी समय नहीं मिला, यदि ऐसा ही रहा तो मैं कुछ कर सकूंगा, कुछ लिख सकूंगा ।

× × × ×

२५ नवम्बर १९५५

आज का दिन बड़ा अजीब रहा । सुबह सुबह ही एक पठान आया । आकर उधर उधर की बात करने लगा । मैं समझा ही नहीं बात क्या है । मैंने उसे कमरे में लाकर बैठाया । जब वह शान्त हो गया तो पूछा—"भई ! बातक्या है ?"

" बात बस यही है कि यहाँ के सेठों के पास मेरा कर्जा हैं, वह देते नहीं हैं । मैं खून कर दूंगा ।"

" हैं हैं, ऐसा न करना । सब मिल जायगा ।"

" मिल जाएगा ? तुम जिम्मेदारी लेते हो........।"

" मैं क्यों........ मैं कौन हूँ........ ?"

" हाँ ! तुमको यह काम करना पड़ेगा ।"

" मतलब........ ?"

" मतलब........ !" उसने छुरा निकाल लिया, बोला—"पहले सारे दर्वाजे बन्द करो ।"

मै एक साथ डर गया । फिर हिम्मत करके सारे दर्वाजे बन्द कर दिए । अब वह और मैं दो ही थे । छुरा लिए वह, और निहत्था मैं । वह मेरी ओर बढ़ रहा था, मैं उसकी तरफ । पास आते आते वह छाती से लिपट गया, बोला—"भैया । तुम सदा ही जीत जाते हो ।"

अरे तो यह वह था। मैं तो अब पहचाना। रूप बदलने में बड़े कुशल हैं ये लोग। पूछा—"यहाँ कैसे आए....?"

'यहाँ तो मैं महीने में एक बार आता ही हूं....।"

' अच्छा....पर क्यों ?"

"रुपए जमा करने....सामान खरीदने....।"

"किसके यहाँ से....।"

"नाम नहीं बताऊँगा। एक सेठ है। हमारी सारी रकम वहीं जमा रहती है। जो चीज की जरूरत होती है, वहीं से मंगा लेते हैं।"

"और बन्दूक, कारतूस वगैरह....।"

"इसके बारे में मत पूछो....।"

"मुझे भी न बताओगे....।"

"बताऊँगा ' फिर कभी....।"

मैंने उसके लिए चाय बनायी। मैंने बताया कि हम इस सप्ताह में गरीब युवक-युवतियों के सहायतार्थ एक 'कर्म-भूमि' नाम की एक संस्था खोलने के लिए दान माँगने जाने वाले हैं। दोपहर बाद तो मैं नहीं मिलता।

"कितना दान चाहिए....।" पूछा

"यही दस-बीस हजार....।"

"अगर मैं अकेला ही दे दूँ तो....।"

"मगर हम तुम्हारी रकम लेंगे नहीं....।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वह धन तुम्हारी मेहनत का नहीं है। बल्कि यह तो किसी की आत्मा को कुचल कर प्राप्त किया हुआ धन है....।"

बीच ही में वह बोला, "और यह सेठ क्या करते हैं? कितना ब्लेक करते हैं? ब्याज में किस प्रकार लूटते है? किस प्रकार गरीबों की आत्माओं को कुचलते हैं और अपनी हवेली खड़ी करते हैं....।"

"मगर उनके तरीके हिंसापूर्ण नहीं हैं।"

"सच्ची हिंसा तो वही है। हम उनसे अधिक ईमानदार हैं, बात के पक्के हैं।"

"मैं कब तुम्हारी तारीफ नहीं करता, पर तुम्हारी ईमानदारी का सही उपयोग नहीं होता....।"

'तब तुम मेरा दान स्वीकार न करोगे।"

"मुझे माफ कर दो भाई ...।"

"अगर मैं श्रम करके दूँ तब भी ...।"

"कैसा श्रम....।"

"निश्छल श्रम। सुबह से रात तक कड़ी मेहनत। दिन भर मजदूरी....।

"उसका प्रमाण....।"

"वह भी दूँगा।"

"तब हम सहर्ष स्वीकार करेंगे।"

"अच्छा, तो अब हम चलें," यह कह वह उठा। मैंने उसे गले लगाया और वह सीधा चला गया।

× × × × × ×

३ दिसम्बर १९५५.

आज हम गाँवों से दान प्राप्त कर लौटे हैं। सच पूछा जाय तो आजकल दान प्राप्त करना बड़ा कठिन हो गया है। जनता वैसे ही आर्थिक भार से दबी है, नए कर उस पर अधिक बोझ डालते हैं, और इतनी पार्टियाँ, इतनी संस्थायें, इतने पर्व संयोजक आए दिन दान की रट लगाए रहते हैं, तो साधारण नागरिक चिड़चिड़ा हो उठता है। फिर भी हम और हमारे साथियों ने कड़ा परिश्रम किया और सारे गाँवों में घूमे। हमने पूंजीवादियों के आगे हाथ नहीं फैलाया। इस दान में केवल वही पैसा आया है, जो निजी श्रम से प्राप्त किया हो। दान की राशि थोड़ी होते हुए भी हमें सन्तोष है।

नागरिकों का अधिक दान प्राप्त करने के लिए हमने आज टाउन हाल में एक विशेष सभा का आयोजन किया। यह आयोजन नगर के मेयर की अध्यक्षता में किया गया। नगर के सभी प्रमुख व्यक्ति और कार्यकर्ता उपस्थित थे।

समाज की अध्यक्षा होने के नाते मृणाल को आज बहुत काम संभालना पड़ा। और यह उसकी वाकपटुता और व्यवहारचातुर्य था कि इस अकेले नगर से ही हमें अपार धन-राशि प्राप्त हुई। मृणाल ने अपनी अपील में बताया कि

हमारे सदस्यों ने गाँव-गाँव घूमकर ढाई हजार रुपया एकत्र किया है। यह धन इतनी बड़ी संस्था के लिए पर्याप्त नहीं हैं। 'कर्म-भूमि' एक ऐसी संस्था होगी, जहाँ कागजी कार्यवाही कम, काम अधिक होगा। इसके सभी अधिकारी अवैतनिक होंगे। इसका सारा धन नई पीढ़ी को आवारगी, बेकारी और अकर्मण्यता से पल्ला छुड़ाने में मदद देगी। वह उनके लिए कई प्रकार के रोजगार आरम्भ करेगी। अम्बर-चर्खा केन्द्र, हस्तशिल्प परिषद् और एम्प्लायमेन्ट एक्सेचेन्ज का सक्रिय सहयोग हमें प्राप्त होगा। इस प्रकार यह संस्था पढ़े-लिखे युवकों को बेकारी के दिनों में राहत प्रदान करेगी, तथा शीघ्र से शीघ्र उन्हें उचित पद दिलवायेगी जिससे निराशा उनका गला न घोट सके, अन्तर का क्षोभ उन्हें ग्लानि से अभिभूत न कर दे और अकर्मण्यता तथा कायरता उन्हें आत्महत्या करने पर बाध्य न कर दे।

आज देश के महान तपस्वी जननायक राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के जन्म-दिवस के पुण्य पर्व पर हम इस कार्य का श्रीगणेश कर रहे हैं, और आशा करते हैं कि आपका सक्रिय सहयोग और आशीर्वाद हमें सदा ही प्राप्त होता रहेगा।

मृणाल की इस अपील के बाद हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। मेयर ने अपने भाषण में घोषणा की कि नगरपालिका की ओर से कर्म-भूमि को पाँच सौ रुपया मिलेगा। दूसरे अन्य सज्जनों ने भी अपने-अपने दान की घोषणाएँ कीं।

अन्त में एक बहुत ही रुग्ण व्यक्ति स्टेज पर आया, और मृणाल से कुछ बातें कीं और एक कोने में माथे पर हाथ धरे बैठ गया। मृणाल ने माइक पर घोषणा की "हमें आपको बताते हुए हर्ष होता है कि मजदूर कॉलोनी से सामूहिक रूप से एक हजार रुपया प्राप्त हुआ है, साथ में मिल मालिक का यह सार्टीफिकेट भी, जिसमें लिखा है कि करमचन्द और उसके ४० साथियों ने इस कारखाने में २३ नवम्बर से २ दिसम्बर तक एक सप्ताह दिन और रात दोनों पालियों में काम कर यह रुपयाँ अर्जित किया है। करमचन्द का कहना है कि उसके साथियों ने यह रुपया केवल 'कर्मभूमि' के दान के लिये ही कमाया है।

तालियों की गड़गड़ाहट में सबने चाहा कि श्री करमचन्दजी के दर्शन सबको कराये जायें। काफी ढूंढने पर वह बूढ़ा रोगी कहीं न मिला। मेरा हृदय

धड़धड़ कर रहा था और पुरानी घटना जैसे उभरती आ रही थी, मानों कोई दबी आग कुरेद रहा हो।

सभा समाप्त होने पर हमने योग लगाया। पांच हजार से कुछ कम रुपये थे। आरम्भ करने के लिए यह भी पर्याप्त था, सोचा काम अभी आरम्भ कर दिया जावे, और जब जम जाए तो २६ जनवरी को किसी माननीय नेता से इस संस्था का उद्‌घाटन कराया जावे। शासन से भी सहायता की प्रार्थना की जावे।

आज रात भर उसी अज्ञात व्यक्ति की शक्ल आँखों में नाचती रही, जिसने अपने साथियों समेत युवक सेवक समाज के लिए श्रम किया।

× × × × × ×

१२ दिसम्बर १९५५

जीवन के मधुरतम दिनों में आज की भी गिनती कर ली जावेगी, क्योंकि कल रात की थकान का मारा जब मैं सुबह अपनी रजाई में लिपटा खुमारी में डूबा मधुर स्वप्नों में खो रहा था कि एक झटके से रजाई मेरे मुँह पर से उठा दी गई। आँखों में प्रकाश चौंध गया और मुँदे पलक धीमे-धीमे खुले तो सामने ही एक मुस्कराती मधुर छटा खड़ी मेरी पुतलियों में समा रही थी, वह मृणाल थी।

पूछा—"आज सबेरे-सबेरे कैसे आना हुआ ?"

उत्तर मिला—"खुद से पूछो ? किसी समय भी मिलते हो। न यहाँ, न समाज में, न कालेज में। आखिर कोई मिले तो कब और कहाँ ?"

"सपनों में····" मैंने मुस्कराकर कहा।

"मजाक छोड़ो····उठो" उसने मीठा झुँझलाकर कहा, "आज कुछ जरूरी बातें करनी हैं।"

मैं उठा ! हाथ-मुँह धोया। लौटकर देखा स्टोव जल रहा था। बोला—"हैं हैं क्या करती हो, मेरे घर पर तुम काम करो, यह ठीक नहीं, और तुम बड़े घर की बेटी। हाथ झुलस जाएँगे।"

"मेंहदी नहीं लगी मेरे हाथों में····।"

"मेंहदी तो लगेगी ही एक दिन····और फिर ये हथेलियाँ भी बिना मेंहदी के इतनी सुर्ख हैं कि····"

बीच ही में वह बोली–"मानोगे नहीं···आओ···इधर बैठो···आ जहुत दिनों बाद साथ-साथ चाय पियें···।"

"कुछ नाश्ते के लिए भी तो ले आऊँ।" मैंने तैयार होकर कहा।

"नहीं···मैं आज अकेली चाय ही पियूँगी···तुम तो रोज पीते हो।"

चाय के दौरान में उसने कहा–"मैं इसलिए आई थी कि रूपवती के बारे में क्या करना है···?"

"कौन रूपवती···!" मैंने पूछा।

"अरे वही स्वर्णवर्णा···जिससे तुम्हारा परिचय ग्रीन रूम में कराया था।"

"हाँ, ठीक तो है···अच्छी लड़की है। युवक सेवक समाज में करने दो काम।"

"युवक सेवक समाज में काम करने से ही काम नहीं चलेगा।"

"तब फिर···?"

"वह बाल विधवा है।

"बाल विधवा···वह···इतनी कोमल कली और यह वज्रपात, तब तो उसे कर्मभूमि से उचित पोषण प्रदान करना होगा।"

"पोषण ही सब कुछ नहीं है···जीवन की और भी आवश्यकताएँ हैं। तुम देखते नहीं हो, उसकी पहाड़ सी उम्र पड़ी है और उसका यह 'अछूत यौवन! क्या युवक सेवक समाज और 'कर्मभूमि' में उसका सारा जीवन कट जायगा।"

"तब फिर क्या किया जाए?"

"उसका विवाह···।"

"विवाह···क्या वह, उसके माता-पिता और उसका समाज उसके लिए तैयार है!"

"इसकी जिम्मेदारी मुझ पर है···।"

"मुझे क्या करना होगा?"

"उसके लिए उचित साथी की तलाश।"

"वह कैसे होगी?"

"तुम यह समस्या युनक सेवक समाज में रख सकते हो?"

"युवक सेवक समाज में ? लोग यह न कहेंगे कि यह सेवक समाज न हुआ, वर-वधू दिलाऊ दफ्तर हो गया ।"

"तब यह काम कौन हाथ में लेगा । युवक युवतियों को अपनी समस्यायें आपस में विचार विनिमय कर सुलझाना चाहिये ।"

"तुम्हारा कहना ठीक है····पर मेरा ख्याल है कि वहाँ राय देने वाले सब मिलेंगे, पर आगे आने वाला कोई न होगा ।"

"यह देश के नौजवानों की परीक्षा होगी । अगर तुम होते तो क्या करते ?"

"मैं तो सहर्ष तैयार हो जाता । रूपवती जैसी अकिंचन नारी किसी को मिल जाय तो भाग्य जग जाय····।"

"मर्द हो न····।"

"तो क्या हुआ ।"

"सदा ही तैयार रहते हो । सुन्दर नारि देखी और फिसले ।"

"तुम जैसी अलबेली होते हुए भी····तुमने तो राय माँगी थी, वही मैंने दी । मना करता तो झट कायर कहतीं । तुम स्त्री जाति ही ऐसी हो, चट भी मेरी, पट भी मेरी ।"

"अच्छा मज़ाक छोड़ो । समस्या पर गम्भीरता से विचार करना है ।"

"मैं सोचूँगा ।"

"अच्छा अब मैं चलूँ····।"

"इतनी जल्दी····।"

"तुम्हें पता नहीं कि मैं किसी की पुत्री भी हूँ ।"

"ओह मैं तो भूल ही गया था····अच्छा नमस्कार ।"

और वह मुस्कराती हुई चली गई ।

६

रंगीन मौसम, सुहाना समाँ। और फिर मन का मीत मिल जाय तो स्वर्ग भी जाने को जी न चाहे। मोहन को भी गाँव छोड़कर जाने की कोई चिन्ता न थी। उसकी छुट्टियाँ खत्म हो चुकी थीं, मगर अपढ़ माँ-बाप को भुलावे में रखना कोई कठिन न था। मगर यह कब तक चलता ? एक दिन वह सजा-बजा सीटी बजाता स्कूल के पास से गुजरा तो वहाँ के प्रधानाध्यापक ने बुला लिया। पूछा—"कहो, पढ़ाई कैसी चल रही है ?"

बेफिक्री से बोला—"अरे साहब ! कालेजों में कहीं पढ़ाई होती है। सिर्फ हाजिरी लगती हैं नाम के लिए।"

"मगर तुम तो यहाँ हो, हाजिरी कैसे लगे !"

"मैं तो अब गाँव का काम संभालता हूँ, कक्का की मदद करता हूँ।"

"नहीं नहीं पढ़ाई मत छोड़ो। इस वक्त की मेहनत जीवन भर काम आएगी।"

"सर ! आप पढ़ा दें तो मैं तो यहीं पढ़ लूँ।"

"मेरा दर्वाजा सदा खुला है।

"तब ठीक है''''अब मैं यहीं पढ़ूँगा। यह कह कर वह चला गया।

कहने को वह कह तो आया, पर वह पढ़ने एक दिन भी न गया। हालांकि वह जानता था कि श्री भँवरसिंह इस गाँव में ही नहीं, प्रधानाध्यपकों में सबसे योग्य व्यक्ति हैं। इस छोटी सी उम्र में ही उन्होंने एम. ए., एल. टी. पास कर ली है और गाँव के इस स्कूल को बड़ी कुशलता-पूर्वक चला रहे हैं। मगर मोहन का सारा तन, मन केवल एक ओर ही लगा था। आते, जाते, उठते,

बैठते, जागते, सोते उसे केवल एक ही चित्र दीखता और बस हर वक्त अपनी मनमोहिनी में ही खोया रहता ।

गोमा भी अपने में ऐसी खो गई थी कि उसका घर के काम में जी भी न लगता । हर वक्त यही चाहती कि बस अटारी में ही पड़ी रहे और कोई आ जावे । घर के खाने वगैरह में कभी देर-अबेर हो जाती, कभी ठीक से न बनता । एक दो बार ठाकुर भी बिगड़ चुके थे । मगर उसे उस वक्त कुछ सुझाई नहीं पड रहा था ।

एक दिन साँझ को गोमा दूध की हाँडी रख कर छम-छम करती ऊपर चली गई । नीचे जण्डेल अपनी बन्दूक साफ कर रहा था । इतने में दूध उफन कर चूल्हे में गिरने लगा । वह चिल्लाया—"अरी गोमा ! कहाँ गई ! सारा दूध फैल गया ।"

"आई....!" कहती हुई गोमा नीचे उतर आई, और काम में लग गई । जण्डेल ने बन्दूक खूंटी पर टांग दी और बाहर चला गया । बाहर देखा गलीयारे में मोहन जा रहा है । आवाज दी—"मोहन ।"

मोहन मुड़ा । मुस्कराकर बोला—"कहो जण्डेल, कैसे हो ?"

"अरे बहुत दिनों में दिखे, शहर चले गए थे क्या ?" जण्डेल ने पूछा ।

"नहीं तो ।" मोहन बोला, "यहीं था, फुर्सत ही न मिली । घर काम ज्यादा था !"

"तो क्या अब तक तुम कालेज नहीं गए ?" जण्डेल ने आश्चर्य से पूछा ।

"मैंने कालेज छोड़ दिया समझो । यहीं अपने हैडमास्टर साहब से पढ़ लूँगा ।"

"अरे यह भी ठीक है हैडमास्टर हैं तो ठाकुर, पर पढ़े खूब हैं । ठाकुरों में कौन इतना पढ़ता है ? फिर सुभाव कितना अच्छा है । आदमी को तो एक निगाह में परख लेते हैं ।" जण्डेल ने घमण्ड भरे स्वर में कहा ।

"हाँ, सो तो है ही....अच्छा मैं चलूँ, जै राम जी की ?"

"अच्छा जैरामजी की ।" जण्डेल ने कहा और भीतर आ गया । गोमा रोटी बना रही थी । उसने खाना खाया । आज कुछ जल्दी थी । सोचा खेत में बाद में जाऊँगा । स्कूल हो आऊँ । हैडमास्टर से मिलने की उसकी बड़ी इच्छा थी । अपने जात भाई हैं । यहाँ परदेस में पड़े हैं । उनके सुख दुख की भी खबर रखनी चाहिए ।

जिस समय वह स्कूल में पहुँचा तो मास्टर साहब लैम्प जलाए कोई किताब पढ़ रहे थे। इसे देखकर एक साथ उठ बैठे, बोले—आओ, आओ, छोटे पटेल ! तुम तो दिखते ही नहीं हो।"

"दिखूँ क्या ? फसल पकी खड़ी है। खेत पर ही रहना पड़ता है।"

"अरे हाँ मैं तो भूल ही गया, कैसी रही तुम्हारी यह फसल।"

"सच बताऊँ, सोना उगा है अबके। सब तुम्हारा ही आसीरवाद हैं।

"क्यों न उगेगी, जण्डेल जैसा मेहनती और योग्य किसान अगर अपना तन-मन न्यौछावर कर दे। हमें आज ऐसे ही किसानों की जरूरत है।"

"पर मास्टर जी ! ऐसे किसान कहा काम के। काले अच्छर भैंस बराबर।"

"अरे तुम पढ़े-लिखों से लाख अच्छे हो। और फिर जी छोटा क्यों करते हो, अब पढ़ लो।" भँवरसिंह ने उसे बढ़ावा दिया।

"सच मास्टरजी ! अब पढ़ सकता हूँ मैं....?" जण्डेल ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"क्यों नहीं ? थोड़ा समय निकाल कर आ जाया करो, पढ़ा दिया करूँगा।"

"मोहन भी तो आता होगा, आपसे पढ़ने ?" जण्डेल ने पूछा।

"कहाँ आता है ?" मास्टरजी ने कहा, "वह नहीं पढ़ सकता। मुझे तो वह आवारा लड़का लगता है।"

"होगा, हमें क्या....अच्छा अब चलूँ, कल से पढ़ने आऊँगा।"

जण्डेल घर लौटा तो देखा दरवाजे पर मोहन खड़ा है। पूछा—"अरे कैसे आए मोहन ?"

"मैं ठाकुर को देख रहा था," मोहन ने कहा, "कक्का ने भेजा था, कुछ पैसे चाहिए।"

"कक्का शायद आँगन में सो गए होंगे। आजकल तबियत कुछ खराब रहती हैं। कहो तो जगाऊँ।" जण्डेल ने पूछा।

"अरे नहीं, कल ले जाऊँगा।"

"अच्छी बात है।" कह कर जण्डेल अन्दर आया। देखा ठाकुर आँगन में

सो रहे हैं। गोमा ऊपर जा चुकी है। आवाज दी—"अरी गोमा! मैं जा रहा हूँ, सांकल लगा ले।"

"आई!" गोमा की आवाज आई।

जण्डेल ने बन्दूक कन्धे पर रखी। कारतूस संभाले। गोमा आ चुकी थी। पूछा—"अरे! आज बन्दूक कैसे ले ली?"

"खेत पर जंगली जानवर आ जाते हैं····और देख! तुझे डर तो नहीं लगता। नहीं तो नीचे आंगन में ही कक्का के पास सो रहिए।"

"नहीं भैया, नीचे गरमी लगती है। और फिर····मुझे तुम्हारे रहते डर किसका?" गोमा बोली।

"अच्छा, मै चलूं। किवाड़ लगा ले।" कहकर जण्डेल चला गया।

गोमा ने सांकल लगाई। और धीरे-धीरे ऊपर चढ़ गई। ऊपर जाकर अटारी में देखा, तो धक से रह गई, "हाय! तुम?"

"हाँ··· मै····" कहकर मोहन ने उसे अपनी भुजाओं में भर लिया।

"हाय! भैया अभी गए हैं। कहीं देख लिया हो तो? इतनी जल्दी?"

"जल्दी····मेरी रानी! तेरे बिना एक एक पल काटना दूभर पड़ता है। सोचता हूँ, कब साँझ हो, कब मैं अपनी प्यारी के पास जाऊँ?"

"सच्ची! मेरा भी दिन नहीं कटता। हरदम आँखों में छाए रहते हो। तुमने मुझे यह क्या जादू कर दिया है।"

मोहन ने आँखों को चूमते हुए कहा—"जादू तो इन कटोरों-सी आँखों ने किया है। जब से देखी हैं, सारी सुध-बुध भूल गया हूँ।"

मोहन ने गोमा को और कस लिया। गोमा बोली—"सच, हर वक्त तुम्हारे पास रहने को जी करता है।"

"कम से कम रात में तो रोज मिलेंगे ही।" मोहन ने कहा।

"रोज कैसे····कुछ दिन में फसल कट कर घर में आ जायगी तो भैया भी यहीं रहेंगे।" गोमा बोली।

"रहने दो न। हमारा मिलन थोड़े ही बन्द होगा।"

"हाय! मुझे तो उनका बड़ा डर लगता है। देखेंगे तो गोली मार देंगे।"

"गोली लगेगी, तो दोनों के। परवाह मत करो। संग-संग जिएंगे, संग-संग मरेंगे।"

"हाय ! ऐसी अशुभ बात मत कहो।" गोमा ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। मोहन ने उसका हाथ चूम कर कहा—"फिक्र न करो, कुछ न कुछ करेंगे। अगर तुम तैयार हो तो अपन दोनों यहाँ से चले चलें।"

"कहां ?" गोमा ने आंखें फाड़कर पूछा।

"ग्वालियर ले जाऊँगा, मेरी मृगनयनी को।"

"ग्वालियर कितनी दूर है, चाहे कोई पकड़ लेगा।"

"इन्दौर चले चलेंगे। बम्बई चले जाएँगे।"

"हाय ! बम्बई ! सुना है वहाँ तो परियाँ रहती हैं।"

"अरे तुम कौन परी से कम हो ? चलोगी बम्बई ?"

"..... ..." गोमा चुप रही।

मोहन ने उसकी ठोड़ी उठाकरपूछा—"बोलो, चलोगी न····।"

"मैं क्या जानूं, जैसा तुम कहो।"

"तब ठीक है" कह मोहन ने उसे और कस लिया। गोमा मस्त हो रही थी पर डर भी लग रहा था, बोली—"आज खूब देर हो गई···अब तो जाओ न ?"

"अभी कैसे जाऊँ। बाहर चाँदनी खिली हुई है। जाऊँगा तो कोई देख लेगा।"

"हाय राम ! कोई देखे न। नहीं तो मैं तो जहर खा लूँगी।"

"तभी तो कहता हूँ, अंधेरा हो जाय तो जाऊँ। तब तक मन की प्यारी-प्यारी बातें हो जाँय।"

"कैसी होती हैं प्यारी-प्यारी बातें।"

"जैसी तुम हो !" मोहन ने उसे चूम कर कहा।

"तुम भी तो हो।" गोमा ने हंसकर कहा,—"कैसा बस में कर लिया है मुझे।"

"बस में तो तुमने ही किया है। मेरा चैन छीन लिया है तुमने।"

"छीना ही छीना है········।"

"नहीं, नहीं, सब कुछ दे भी दिया है। सच रानी ! मैं तो जनम-जनम में तुम्हें ही मांग लूँगा भगवान से।"

थोड़ी देर बाद चाँद बादलों में छुपा तो मोहन बोला—"अब चलूँ थोड़ा अंधेरा हुआ है।"

"और बातें करो न। बड़ी भली लगती हैं, तुम्हारी ये बातें।" गोमा, बोली। मोहन उस की लटों से खेलते हुए बोला, "सच ऐसा लगता है, जैसे काली घटाओं में चन्दा निकला हो।"

"और तुम कौन हो?" गोमा बोली।

"तुम्हारे रूप का चकोर।"

"चन्दा-चकोर।"

"गोमा-मोहन।" मोहन ने उपमा को बदल कर कहा—"कहो कैसी जोड़ी है।

"नजर न लग जाय इस जोड़ी को।" गोमा बोली—"अच्छा, अब जाओ, सवेरा होने को ही है।"

"अच्छा चलता हूँ।" यह कह मोहन मुँडेर की ओर आया। गोमा भी उससे लिपटी हुई मुँडेर तक आई। मोहन नीचे उतरा। गोमा ने सहारा दिया। मोहन गोमा का हाथ पकड़े नीचे खिसक रहा था। गोमा मुंडेर पर झुकी उसे नीचे तक सहारा दे रही थी। मोहन गोमा का हाथ पकड़े धीरे-धीरे उतर रहा था। अब उँगलियाँ हाथ में रह गईं तो बोला—"वायदा याद रखना गौरी।"

"हाँ!" गोमा ने कहा। मोहन ने बड़ी मजबूती से गोमा की हथेली पकड़ रखी थी। गोमा की उँगलियां धीरे-धीरे छूटने को ही थी कि धांय, धांय, धांय तीन आवाजें हुईं। उंगलियों की पकड़ एक साथ छूट गई, और मोहन लुढ़क कर गली में गिर पड़ा। गोमा ने देखा तो चीख पड़ी। 'हाय' कहती हुई कलेजे पर हाथ रखा, अटारी की ओर दोड़ी और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उधर गोली चलने की आवाज सुनकर गाँव के लोग जग गए। ठाकुर भी एक साथ भागे। जाकर देखा तो गली में भीड़ लगी थी। देखा लाश जमीन पर पड़ी है। ठाकुर ने बन्दूक उठाई, पहचानी। यह बन्दूक तो उन्हीं की है। सारे गाँव में शोर मच गया। छीतू ने लाश पहचान ली और सिर पीट लिया। उसके रिश्तेदार बिरादरी वाले पास के कस्बे को दौड़ गए। थोड़ी देर बाद पुलिस भी आ गई। छीतू और उसके साथियों ने गवाही दी कि बन्दूक ठाकुर के हाथ में थी। ठाकुर गिरफ्तार कर लिये गए। भँवरसिंहजी भी आ गए थे, और मामला समझने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने पुलिस को समझाया कि ठाकुर बेकसूर है। जण्डेल को बुलाने आदमी दौड़ाए। उसका कहीं पता न था। पुलिस ठाकुर को

ले चली । ठाकुर कोआँखों में आँसू आ गए बोले—"बेटा भँवरसिंह ! अब क्या करूँ ?"

"आप बेफिक्र रहो," भँवरसिंह जी बोले—"हम कल ही आपकी जमानत दे देंगे।"

"और घर...." ठाकुर बिलखते हुए बोले—"गोमा अकेली है।"

"उसकी जिम्मेदारी मुझ पर, उसका बाल भी बाँका न होगा।"

"मैं तुम्हारा अहसान नहीं भूलूँगा बेटा।" ठाकुर रो पड़े।

भँवरसिंह जी ने उन्हें दिलासा दी। पुलिस ठाकुर को ले गई। लोगों में तरह-तरह की बातें होती रहीं। किसने खून किया और क्यों किया ? जितने मुँह थे, उतनी ही बातें।

७

जराडेल स्कूल से लौट कर जब खलिहान पर गया, तो उसकी बाईं आंख फड़क रही थी। दो एक दिन से उसे ऐसे ही अपसकुन हो रहे थे। इसलिए उसने सोचा, चलो अच्छा हुआ, बन्दूक साथ में ले ली। वैसे तो इस गांव में किसी की हिम्मत नहीं थी कि कोई उनके माल की तरफ आंख भी उठा जावे। पर जमाना बुरा है। किस की कब नीयत बदल जाय।

वह सोचता जा रहा था कि कक्का की तबियत अब खराब रहती है। वह अब अधिक मेहनत करेगा। उन्हें कोई काम न करने देगा। वह कक्का की चिन्ता जानता है। गोमा उमर पकड़ गई है। इन लड़कियों के बढ़ते देर नहीं लगती। उठती जवानी और बहते पानी को जब तक रोक न हो तो न जाने किस ओर बह जांय। इसलिए उसका ब्याह उसी बैसाख में हो जाय तो अच्छा रहे। कौन हो, जो गोमा के लायक हो। उसे मास्टर जी का ख्याल आया। अगर मास्टर जी मंजूर करें तो।

मास्टर जी तो बहुत ऊँचे आदमी हैं। वह पढ़ने भी जाया करेगा। इस छोटी-सी उमर में इतनी पढ़ाई कमाल है। आदमी तो एक नजर में परख लेते हैं। मोहन के बारे में कुछ यों ही कह रहे थे। मोहन है भी अजीब आदमी। शहर की पढ़ाई छोड़कर गांव की गलियों के चक्कर लगाता है। अभी आज ही दो बार तो मैं ही उसे अपने दरवाजे पर देख चुका हूँ। भला यह भी कोई शरीफों के ढंग हैं। मैं तो बचपन की दोस्ती का लिहाज करता हूँ, वरना दो झापड़ में रास्ता भूल जाय। अपने टुकड़ों पर पले हैं, दो दिन शहर हो आए, तो बाबूगिरी में दम भरने लगे ?

जराडेल मचान पर बैठा इसी प्रकार उलझ रहा था। चांद खिल रहा था और उसकी फसल कटी हुई खलिहान में चांदी के ढेर सी पड़ी थी, और वह

विजयी सा इधर-उधर झूम रहा था। वह सोच रहा था, कि वह लाख बे पढ़ा-लिखा सही, पर उसके मन में मैल कभी नहीं आया। गांव में और लोग भी तो हैं। काल्लू है, शमशाद है, बिहारी है। और सबसे ऊपर अपने मास्टरजी हैं। कभी कोई इस तरह गली में चक्कर काटते हैं ?

वह बैठ गया। आज उसे चैन न था। उसकी आँखें जल रही थीं और उसकी देह टूटी जा रही जा रही थी। वह फूंस को सिर के नीचे रखकर लेट गया। सोचने लगा—"अब मैं करूँ भी क्या। अकेली जान। खेत पर रहूं कि घर पर। और गोमा भी बच्ची नहीं है। उसे भी घर का, कक्का का ख्याल रखना चाहिये। बार-बार अटारी पर चढ़ जाती है। देखो आज ही दूध फैल गया। अगर ऐसे ही घर का सत्यानास करेगी तो हम तो कहीं के नहीं रहेंगे।"

वह सोचते-सोचते उसकी पलकें झपक गईं और वह सो गया। सपने में भी उसके मस्तिष्क के झंझावात ने पीछा नहीं छोड़ा। उसने देखा एक बहुत बड़ा मन्दिर है, जिसमें सोने की मूर्ति है। अन्धकार बढ़ता ही जाता है। अन्धकार के बगूले कभी लाल, नीले और आसमानी हो जाते हैं कभी काले, गहन काले। वह इधर-उधर टहल रहा है, कि पीछे से खटका होता है। देखता है, कोई धीरे-धीरे बढ़ रहा है। वह डर गया, अरे यह तो राक्षस है। उसे खा जायगा और मन्दिर ढहा देगा। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। चुपचाप सांस रोके देखता ही रहा। वह राक्षस धीरे-धीरे बढ़ा, और मूर्ति को उठाने लगा। वह चिल्लाया—"खबर-दार ! जो मूर्ति को हाथ लगाया, तेरे छूने से वह अपवित्र हो जायगी।" मगर उसके देखते-देखते वह राक्षस उस मूर्ति को उठाकर चलने लगा। उसने देखा कि बूढ़े पुजारी ने मूर्ति के छुड़ाने की कोशिश की तो उसे ढकेल कर, लहू-लुहान कर मूर्ति लेकर भागा। वह भी भागा, और बन्दूक उसके सिर पै देकर चिल्लाया—"कमीने तेरी यह हिम्मत।"

वह एक साथ चिल्ला उठा। उसकी आँख खुल गई थी। उसके हाथ बन्दूक को मजबूती से थामे हुए थे। उसका माथा दर्द कर रहा था. और सपने की याद, बेयाद बातें उसे झुंझला रही थीं। वह चाह रहा था कि घर चला जाय। उसने जंमाई ली और चारों ओर देखा। रात ढल रही थी और सियार हाउ-हाउ कर रहे थे। उसने सोचा थोड़ा रुक कर चलूंगा।

थोड़ी देर बाद उसकी बेचैनी बहुत बढ़ गई। उसने बन्दूक उठाई और

चल दिया। आज उसका मन भारी-भारी हो रहा था। उसका मन भी कर रहा था कि घर जाये, दूसरी ओर वहां जाने में मन पीछे भी हट रहा था। मन मारे, सिर झुकाए वह चलता गया। सामने के रास्ते से कुत्ते बहुत पड़ते हैं, इसलिए वह पीछे के रास्ते से घर की तरफ आया। घर के पास आकर उसे कुछ खटका सा सुनाई दिया। उसने बन्दूक संभाल ली।

थोड़ी देर में उसने खुली छत पर गोमा को किसी आदमी के साथ देखा। उसका दिल धक से रह गया। वह सांस रोके वहीं बैठ गया। उसने देखा कि गोमा और वह मुंडेर तक आए और वह धीरे-धीरे दीवार की तरफ खिसकने लगा। उसने पहचाना, यह तो मोहन है। मेरे बचपन का दोस्त, जवानी में मेरी ही पींठ में छुरा भौंकेगा? हमारे ही टुकड़ों पर पला कमीन हमारे ही घर में डाका डालेगा? गाँव में रह कर गांव की बहन-बेटियों की इज्जत से खेलेगा? यह पढ़ा-लिखा मोहन है। धिक्कार है ऐसी पढ़ाई को। कैसा कुत्ते की तरह पीछे से भाग रहा है। साले जायगा कहाँ? मेरा मुँह काला करके तू साफ दूध सा धुला बच जायगा?

जराडेल की आंखों से चिनगारी निकलने लगी। उसके माथे में एक सौ एक विचार आने जाने लगे, उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और उसके हाथ काम कर गये। मोहन तड़फड़ा कर गिर पड़ा। वह मोहन के पास गया। उसके मुंह पर दो तीन बन्दूक मारीं, बोला—"कमीने, किसी की इज्जत से खेलने का मजा ले, और ले, और ले।"

मोहन चित हो गया। उसने देखा देखा मोहन की लाश खून में लथपथ पड़ी है। अभी गांव जग जायगा। पुलिस आयगी। पुलिस मुझे ले जायगी, हाय राम! पुलिस! पुलिस के चक्कर में कोई आया, उसकी दुर्गत हो जाती है। वही दुर्गत मेरी होगी। मुझे ले जाएँगे। जूते, कोड़ों से मारेंगे। मैं ठाकुर का बच्चा उनकी मार सहूंगा। फिर सब पूछेंगे। मुकदमा चलेगा। कक्का, गोमा सबको अदालत में जाना होगा। घर की इज्जत भी छीछालेदर हो जायगी। मुझे फांसी होगी, घर बरबाद हो जायगा। नहीं, नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। मैं मिट जाऊंगा। मगर इनके हाथ नहीं आऊंगा।

सोचा यह बन्दूक साथ रहेगी तो कोई भी शक कर लेगा। इसलिए उसे वहीं फेंका और चल दिया। कहां? कुछ पता ही नहीं। चलता रहा, चलता रहा।

अभी दिन निकलने में देर है। दिन निकलते-निकलते वह पांच-दस मील चला जायगा। पर जाये कहाँ ? अगर किसी गांव में जाता है तो पुलिस उसे खोज लेगी। उसकी सारी करी धरी बेकार हो जायगी। इसलिए गांवों में नहीं, बियाबान की तरफ, भरकों की तरफ वह दौड़ पड़ा। दौड़ता रहा, दौड़ता रहा। गांवों से दूर, बहुत दूर भरकों में होता हुआ, नदी के किनारे-किनारे, सुबह होते-होते जा लगा एक नए ठिकाने पर।

"कौन हो तुम ! हाथ ऊंचे करो, नहीं तो गोली मार दी जायगी।"

उसने हाथ ऊंचे कर दिए और खड़ा-खड़ा हाँफता रहा। पसीना उसके सारे शरीर से चुचा रहा था और उसके हाथ खून से लथपथ थे। एक कड़कतीसी आवाज ने पूछा—"नाम बताओ।"

"ठाकुर जण्डेलसिंह।"

"गांव···?"

"सन्तपुरा···········!"

"काम···········?"

"अब तक खेती था।"

"यहां कैसे आये ?"

उसने हाथ नीचे कर लिये, बोला—"दूर के रिश्ते के जीजा लगते हो नाहरसिंह। अभी पहचान नहीं पाया।"

"यहां बन्दूक का रिश्ता माना जाता है, जण्डेल" नाहर ने बन्दूक फेंककर मुस्कराते हुए कहा—"यह ले बन्दूक ! एक खून करके अपनी बहादुरी और हमारे अन्दर विश्वास का सबूत दो।"

जण्डेल ने बन्दूक थाम ली—"एक खून करके आया हूँ। ठाकुर बच्चा हूँ। पीठ नहीं दिखाऊंगा। एक नहीं दो-चार खून और करके आऊं तभी खुलासा बात करूंगा। अच्छा जय गोपालजी की।"

"जयगोपाल जी की।"

वह मुड़ा और अनजान भरकों में खो गया। नाहर के इशारे पर चार जवान उसके पीछे हो लिये।

८

नरेन्द्र ने जाकर पूछा – 'साहब हैं क्या ?"

"हैं तो", चोकीदार ने कहा—"मगर अन्दर आने की मनाही कर दी है।"

'तब कोई बात नहीं," कहते हुए नरेन्द्र ने दरवाजे को धक्का दिया और अन्दर चला गया। अन्दर देखा, सरीन मेज पर सिर रखे, दोनों हाथों से थामे झुका बैठा है। वह पास गया। धीरे से उसकी पीठ पर हाथ रख दिया।

सरीन ने स्पर्श पा अपना चेहरा उठाया। उसका चेहरा भारी था, और आँखें सूजी हुईं। जैसे हृदय का विद्रूप मुंह पर झलक रहा हो। उसने अनजाने में क्या समझा, कि उसका हाथ मेज पर पड़ी पिस्तौल पर चला गया। नरेन्द्र मुस्कराया। उसके उलझे बालों में उंगलियाँ फिराते हुए बोला—"यह खातिर करोगे हमारी।"

"ओह तुम !" उसकी चेतना लौटी, बोला, "आओ नरेन्द्र ! मुझे इस समय तुम्हारी सख्त जरूरत थी।"

"पहले मन को हल्का करो। मालूम होता है जैसे तुम्हारे दिल और दिमाग पर कोई बात बैठ गई हो ?"

"तुम ठीक कहते हो नरेन्द्र। मुझे निराशा ने घेर रखा है। जी चाहता है, यहां से वापस चला जाऊं।"

"इतनी जल्दी थक गये भाई। अभी तो पूरी मंजिल पड़ी है।" नरेन्द्र ने उसकी पीठ थपथपाई," और मुझे तुम पर पूरा भरोसा है। अच्छा यह तो बताओ तुम इतने परेशान क्यों हो ?"

सरीन ने कहा कुछ नहीं । उस दिन का अखबार, नरेन्द्र के आगे फैला दिया ।

नरेन्द्र ने पढ़ा—"मोहन का खूनी जण्डेल फरार ।

चमारपुरे में लूट । नाहरसिंह के गेंग में शामिल ।

ग्वालियर—ताजे समाचारों द्वारा ज्ञात हुआ है कि सन्तपुरा के पटेल का नौजवान पुत्र जण्डेलसिंह आज प्रात: गांव से फरार हो गया । सुना है उसने मोहन को अपने घर में सेंध लगाते देख लिया और गोली चला दी । और पुलिस के डर से फरार हो गया ।

अभी पुलिस पूरी तहकीकात भी न कर पाई कि जण्डेल ने चमरपुरे की झौंपड़ियों में आग लगादी और पांच चमारों को गोली से उड़ा दिया । सुना जाता है कि जण्डेल नाहरसिंह के गेंग में पक्की तौर से शामिल हो गया है ।"

अखबार पढ़कर नरेन्द्र बोला—"अरे बस ! यह तो यहां रोजाना की बात है ।"

सरीन बोला—"यहां तो डाकुओं की फसल है । इसे कहां तक काटा जाय ? जितनी काटो उतनी बढ़ती है ।"

नरेन्द्र ने कहा—"तुम ठीक कहते हो । आग, आग से नहीं बुझती । पानी चाहिए ।"

"क्या मतलब ?" सरीन ने पूछा ।

"मतलब यह कि यह इलाका पिछड़ा हुआ है और यहां का पानी गहरा है । इस पानी में ही क्रान्ति का रस मिला है । इसे पीकर लोग डरपोक नहीं बनते । ये लोग आदमी की जान को मामूली चीज समझते है ।"

"तब फिर क्या किया जाये ?"

"पहले समाज में क्रान्ति करनी होगी । इन्हें स्वय को पहचानने की क्षमता चाहिए । इसके लिए इनमें शिक्षा का प्रचार करना होगा, ऊँच-नीच की दीवार हटानी होगी ।"

"और शासन चूड़ी पहन कर बैठा रहे, क्यों ?" सरीन ने हंस कर कहा—"तुम भी कैसी बहकी-बहकी बातें करते हो यार ? समस्या इस समय की है । किस तरह इन्हें साफ किया जाय । पुलिस का काम समाज सुधार करना नहीं है, अपराधियों को उचित दण्ड देना है ।"

"तब तुम से यह समस्या हल न होगी।"

"मुझ से न हो, मेरे अधिकारी से होगी। मगर यह निश्चित है कि एक दिन ये सब पुलिस की गोली के शिकार होंगे, या फांसी के तख्ते पर झूलेंगे।"

"मगर यह परिणाम, देश के हित में नहीं होगा।" नरेन्द्र ने कहा।

"तुम्हारी निगाह में ही तो नहीं। वर्ना अगर यह सब हो जाय तो देश का कितना बड़ा झंझट दूर हो जायगा।"

"तुम जानो। मैं तो यह जानता हूँ कि यह इलाका वैसे ही गरम है। पुलिस की सरगर्मियों से इसमें आग और भड़केगी......................। अच्छा! मैं चलूं।"

"अच्छा! धन्यवाद।" सरीन ने कहा और दरवाजे तक उसे पहुंचाने आया।

नरेन्द्र वहां से चला तो आया। मगर उथल-पुथल मची रही। आखिर यह है क्या? यहां रोज डाकू उगते हैं। आज जण्डेल, कल भगवाना। अगर इन्हें भर-पेट रोटी मिले। इन्हें कोई असन्तोष न हो। तब फिर ये क्यों किसी का खून करें? किसी का नुकसान करने में आत्मा दुखती है। क्या इनकी आत्मा नहीं दुखती! जरूर इनकी आत्मा को ठेस पहुँचती है, और बहुत गहरी ठेस। जभी तो इन्हें सत्-असत् का ज्ञान नहीं रहता। वरना भूखा आदमी भी विवेक नहीं खोता, चोरी नहीं करता, जब तक उसकी आत्मा को झकझोर देने वाली घटना न हुई हो।

हिंसक उपायों से क्या होगा? क्या किसी की आत्मा को सन्तोष मिलेगा? इन्हें सही माग दर्शन चाहिए। कौन दे? पुलिस और इनके बीच में कौन आये? किसी पर ये दोनों विश्वास करें तब न?

उसके मस्तिष्क में झंझावात चलता रहा, चलता रहा। अपने कमरे में वह अंधेरे में बैठा रहा, बैठा रहा, न जाने कितनी देर? उस अंधेरे में उसकी आंखें कोई रास्ता खोजने की कोशिश कर रहीं थीं।

उसने लैम्प जलाया। उससे अन्धकार फट गया। उसने खिड़कियां खोल दीं। अन्दर का विषभरा वातावरण बाहर निकल गया, बाहर से स्वच्छ सुहानी वायु आई और कमरे में भर गई। वह पलक मूंदे पड़ा रहा और इस अनन्त सुख की अनुभूति में खो गया।

सहसा उसने अपनी पलकों पर शीतलता का अनुभव किया। चेतना लौटी। ज्ञात हुआ कि कोई उसकी आंखों को बड़े दुलार से स्पर्श कर रहा है। उसने पलक उठाये तो जीवन की निधि पा गया।

"ओह तुम, आओ, बैठो" उसने कहा, "इतनी रात गए कैसे ?"

"यों ही चली आई," मृणाल ने कहा, "एक गम्भीर विषय पर चर्चा करनी है।"

"गम्भीर विषय !" वह हँसा, "चारों ओर गम्भीर विषय छाये हुए हैं। अभी थोड़ी देर पहले सरीन के यहां से लौटा हूं। बेचारा डाकुओं की वजह से परेशान था।"

"इन्हीं लोगों के विषय में चर्चा करने मैं आई हूं।"

"तुम चर्चा की कहती हो। ये लोग इस आग में झुलसे जा रहे हैं। पुलिस खुद परेशान है, क्या करे। एक डाकू रोज पैदा होता है।"

"यह आग इनकी ही लगाई है, तो उसमें झुलसेंगे ही।

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि ये ही डाकू पैदा करते हैं, ये ही उन्हें पालते हैं।"

"तुम क्या कह रही हो मृणाल ?" नरेन्द्र ने साश्चर्य पूछा।

"यही तो कहने आई हूँ," मृणाल ने कहा, "मेरी बात सुनने के लिए क्या तुम्हारे पास बज्र सा हृदय है ?

नरेन्द्र ने कहा, "आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?"

मृणाल बोली—"मैं कहना चाहती हूँ कि तुम और सरीन, अपने-अपने तरीके से समस्या को हल करने में लगे हो। मगर यह समस्या कभी हल नहीं होगी।"

"आखिर क्यों ?

"क्योंकि आज मनुष्य स्वयं से ही गद्दारी करने पर तुला है।" मृणाल ने आवेश में कहा।

"मै तुम्हारा मतलब नहीं समझा।"

"मै पूछती हूं, इन डाकुओं के पास बन्दूक कहाँ से आती है ? कारतूस कहां से आते हैं ?"

"लूट से। और कहाँ से ?" नरेन्द्र ने उत्सुकता से पूछा।

"नहीं, खरीदा जाता है पुलिस से।"

"पुलिस से ! यह तुम क्या कह रही हो ?"

"मैं सच ही कह रही हूँ। कल ही नाहर ने दो हजार के कारतूस खरीदे हैं।"

"मगर कहाँ से ?"

"थानेदार इकबाल बहादुर से।" मृणाल ने कर्कश स्वर में कहा।

"सबूत........।" नरेन्द्र ने पूछा।

"इन चीजों का सबूत नहीं होता। यह आदान-प्रदान अँधेरे में होता है।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"एक विश्वस्त सूत्र से। समय आने पर तुम्हें बताऊँगी।" मृणाल कह ही रही थी कि पीछे से खटका हुआ। दोनों उठ कर खिड़की तक आए। बाहर अन्धकार में किसी के कदमों की आवाज आ रही थी। नरेन्द्र ने टार्च का बटन दबाया। देखा दूर एक सिपाही भागा जा रहा था। मृणाल ने कहा—"यह इक-बाल बहादुर का सिपाही शमीम है।"

"ओह ! नरेन्द्र ने कहा, बात यहाँ तक पहुँच गई है।"

"अच्छा मैं चलूँ। मृणाल ने कहा।"

"चलो, तुम्हें पहुँचा आऊँ........तुम्हारा अकेले जाना खतरे से खाली नहीं है।"

"मैं गाड़ी लाई हूँ। तुम फिक्र न करो। अच्छा नमस्कार।"

"नमस्कार।"

और मृणाल चली गई। नरेन्द्र कटा सा बिस्तर पर गिर पड़ा। और विचारों में खो गया। सरीन और मृणाल, दोनों ने उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा दी। सारी रात वह करवट बदलता रहा, सो न सका।

———

९

रूपवती के आने से युवक सेवक समाज चर्चा का केंद्र बन गया। मृणाल नवयौवना होते हुए भी बड़े घर की बेटी थी और उसका व्यक्तित्व गरिमामय था। साथ ही सब लोग यह भी जानते थे कि वह अपना जीवन नरेन्द्र को सौंप चुकी है अतः उसकी चर्चा दबी दबी जबान में होती। हालांकि रूपवती का परिचय मृणाल ने अपनी बहन के रूप में ही करवाया था, मगर सब जानते थे कि रूपवती मृणाल की सहेली भले ही हो, बहन कदापि नहीं। अतः जो प्रभाव मृणाल का समाज पर था वह रूपवती का न था। यद्यपि रूपवती बहुत ही हंस-मुख, मिलनसार और सरल हृदय की थी। और सच ही उसके इन गुणों ने समाज के युवकों को आदर्शों से फिसलने पर भी मजबूर कर दिया था। इसका कारण यह था कि उन दिनों मृणाल और नरेन्द्र दोनों ही समाज कार्यों के प्रति उदासीन थे।

रूपवती के एकाकी जीवन ने उसे समाज में घुल-मिल जाने पर मजबूर कर दिया। उसमें और भी युवतियां थीं, जिनके साथ रहकर उसकी दिनचर्या बड़े मनोयोगपूर्वक बीतती थी। परन्तु पाँचों उंगलियां बराबर नहीं होतीं। डायना जितनी चुस्त थी, उतनी ही चालाक। उसके लिये युवक और युवतियों का सम्पर्क एक सा ही था। युवक सेवक समाज में मृणाल के बढ़ते हुए प्रभाव को पहले ही पसन्द नहीं करती थी, और अब रूपवती के आ जाने से उसकी डाह को साकार रूप मिल गया था।

रूपवती रूप की अप्रतिम प्रतिमा थी, मगर डायना भी कम सुघर नहीं थी। वह चुस्त पोशाक पहनती थी और बेरोक बातें करती थी। रूपवती सीधी सादी तरह अपना काम कर रही थी। मगर जीवन में ऐसे भी क्षण आते

हैं जब लोग चुपचाप भी जीने नहीं देते । कई मनचले युवक उसको अपनी ओर खींचना चाहते थे और डायना रूपवती को समाज की दृष्टि में गिराने पर आमादा थी ।

पिछले दिनों जब नरेन्द्र श्योपुर की ओर गया था तो सहरिया जीवन पर पूरा अध्ययन कर के लौटा था । वहाँ की संस्कृति और सभ्यता पर उसने लेख भी लिखे थे और लोक-गीत भी संग्रह किये थे । इन सबके आधार पर उसने एक नृत्य-रूपक भी तैयार किया । उसकी इच्छा थी कि यह रूपक किसी अवसर पर खेला जाये, तो जनता का ध्यान आदिम जाति के कल्याण की ओर खींचा जा सके ।

एक दिन रूपा युवक सेवक समाज के दफ्तर में आई तो देखा वहां कोई न था । उसने उलट पलट कर देखा तो इस रूपक की पाण्डुलिपि उसके हाथ लग गई । वह उसे पढ़ने बैठ गई । पढ़ती रही, पढ़ती रही । उसका ध्यान जब टूटा, जबकि कार्यालय में शर्मा और लतीफ ने आकर स्विच आन किया । रूपा एक साथ हड़बड़ा कर उठ बैठी बोली, "ओह ! बड़ा अच्छा रूपक है, पढ़ा आपने ?"

"हाँ अच्छा है, मैंने पढ़ा है ?" शर्मा ने कहा

"नरेन्द्र भाई गजब का लिखते हैं ?" लतीफ ने कहा

"अगर खेला जाय तो कैसा रहेगा ।" रूपा ने पूछा

"बहुत अच्छा ! मगर नरेन्द्र को तो फुर्सत ही नहीं ।"

"उनसे मैं पूछ लूंगी ?"

"तब फिर क्या है ?" दोनों ने कहा ।

और वह एक दिन जाकर मृणाल से पूछ ही आई । मृणाल ने कहा—"इन दिनों वातावरण कुछ घुटा-घुटा सा है, अभी रहने दो ।"

"नहीं दीदी, यह सब मैं कर लूंगी" रूपा ने जिद्द की ।

"जैसी तेरी मर्जी ।" मृणाल ने विवश होकर कहा । वह उस का मन नहीं मारना चाहती थी । रूपा खुशी से उछल पड़ी । आज अकेले उसे सब संभालने का मौका हाथ लगा था । उसने समाज की बैठक बुलाई और उसमें प्रस्ताव रखा । सब सहर्ष सहमत हो गये । सबकी राय यह थी कि सहरिया युवा नर्तकी की भूमिका रूपवती ही करे और डान्स और नृत्य की विशारदा डायना

इस रूपक को डायरेक्ट करे। रूपा ने पहले तो मजबूरी दिखाई, फिर तैयार हो गई। और डायना को तो कोई एतराज नहीं था।

ड्रामे की रिहर्सल होने लगी। डायना एक कुशल कार्यकर्त्री थी। उसने सब लोक वाद्य जुटा लिये और वादक भी। उसकी ड्रेस भी तैयार करवाई गई और नित्य नृत्य का अभ्यास कराया जाने। लगा रूपा वैसे अपना काम बड़ी लग्न से कर रही थी, मगर डायना का कहना यह था कि रमाकान्त उसकी बगल में हाथ डाल कर उसे उछाल न दे तब तक स्वाभाविकता न आएगी। मगर ज्यों ही रमाकान्त उसकी कमर में हाथ डालने के लिए बढ़ाता वह भयभीत हिरनी की तरह दूर कूद जाती। डायना ने कई बार करके बताया। रमाकान्त डायना की ओर बढ़ता। डायना स्प्रिंग सी उसकी ओर बढ़ती। रमाकान्त उसे अपनी पकड़ में उछालता और वह चकरी सी घूम जाती। मगर लोगों का ख्याल था कि डायना में वह लचक नहीं है और उसका शरीर भारी भी है। अतः बात रूपा पर ही आकर टिक जाती। मगर रूपा किसी प्रकार भी इस अभ्यास के लिए तैयार न होती। हर बार बिदक जाती। उस दिन कई बार अभ्यास करने के बाद थक गई और सबसे माफी माँग कर चली गई।

रामेश्वर ने कहा—"बड़ी आर्टिस्ट बनती है, मगर बिदकती क्यों है।"

लतीफ मुस्कराया—"नया पंछी है।"

शर्मा बोला—"यह रमा ही लौंडियों जैसी हरकत करता है। नहीं तो तीन दिन में ही राह पर ले आए। इसे अभी गुर सिखाने होंगे।"

रमा बोला—"तुम हीरो बन जाओ शर्मा। मुझसे तो यह होता नहीं है। वह जरा लिफ्ट दे तो मैं उसे गुड़िया सा उठा लूँ। डियर डायना तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ।"

डायना बोली—"यह सीक्वेन्स सबसे ज्यादा टचिंग है, अगर यह न हुआ तो निरी उछल-कूद ही है।"

मोघे बोला—तब फिर क्या हो?"

अजरा बोली—"एक तजुर्बे की बात बताऊँ। स्टेज पर आदमी अपने को भूल जाता है। वह समां ही कुछ और होता है। उस वक्त जान पर खेल जाने को जी होता है। अभी रहने दो। स्टेज पर जब वह नाच में मस्त हो जाय तो रमा भाई उसे उछाल दें, उसे मालूम भी न पड़ेगा।"

"हाँ ठीक है·········"डायना बोली—"रमा ! तुम्हें यह ध्यान रखना पड़ेगा ।

"मैं कोशिश करूँगा ।"

इस प्रकार उस दिन की बैठक समाप्त हुई ।

नगर में जन जाति कल्याण दिवस धूम से मनाया गया। शाम को टाउन हाल में युवक सेवक समाज का यह प्रोग्राम था । एक दिन पहले रमाकान्त, डायना और लतीफ ने सारी स्थिति देख कर तय कर लिया कि क्या करना है, क्यों कि उनको पता था कि मृणाल और नरेन्द्र दोनों में से कोई भी उपस्थित न होगा । बोस बीमार है, रामवती बुढ़िया क्या आएगी ।

शाम को शो आरम्भ हुआ । पर्दा खुलते ही ऊबड़ खाबड़ पहाड़ियों पर झाड़ झंखाड़ पर बड़ी बेढब सी आवाज आ रही थी । फिर वाद्य बजने शुरु हुए । फिर धुन हुई । दूर पहाड़ी में से कोयल की सी आवाज आई । इधर झोंपड़ियों में से प्रेमी का स्वर सुनाई दिया । उधर रूपा पूरे मेकप में थिरकती हुई निकल पड़ी । आज उसका रूप ही अनूठा था । कजरारी आंखों का काजल बहा जा रहा था । बाल खींच कर बांधे गए थे और लम्बी चोटी लहरा रही थी । वक्ष पर एक पतली कंचुकी थी और कमर पर कोड़ियों और शीशों से जड़ा छोटा घाघरा था । पैरों में घुंघरु । गले में कोड़ियों और बीजों की माला । कमर पर मोर पंख का फैलाव । जूड़े पर नुकीली सींकों का घेरा । अंग अंग में थिरकन थी । दर्शकों ने देखा तो मुग्ध रह गए ।

इधर से रमाकान्त अपने साथियों सहित उसी प्रकार लोकभूषा में निकला । मनोहर ताल पर दोनों थिरक रहे थे और एक लोकगीत की लड़िया गूँज रही थीं ।

"सबै पतेरन तोला ढूंढो, कहाँ लुके है जाय ।
चोला रोवत है राम, बिन देखे परान ।।"

वाद्ययंत्र अपने पूरे आवेग में गूँज रहे थे । रूपा के पायल पागल हुए जा रहे थे । रमा भी झूम रहा था । ढोल ढम ढम कर रहा था । ढप ढिड़प ढिड़प कर रहे थे । पायल छुनक छुनक कर रही थीं । हाल का वातावरण जैसे एक क्षण को स्थिर हो गया ।

डायना ने इशारा किया । रमा को ध्यान ही नहीं था । वह आगे बढ़ा, वह बलखाती कमर में हाथ डालता, कि रूपा बिजली सी उछल कर दूर जा

गिरी। पर्दा एक साथ गिर गया। लाइट एक दम बुझ गई और हाल में सीटियां बजने लगी। इतने में सुनाई दिया। धाँय, धाँय, धाँय।

सरीन पिस्तोल लिए स्टेज पर पहुँच गया। लतीफ, रमाकान्त, शर्मा और डायना रूपा को उठाये लिये जा रहे थे। सरीन कड़क कर बोला—"हाथ ऊँचे करो।"

सब अवाक खड़े रह गए। बेहोश रूपा को नीचे डाल दिया। डायना ने चुपके से स्विच आन कर दिया, यह सरीन की तेज आँखों से छुपा न रह सका। सरीन ने माइक पर घोषणा की—"आप लोग चुपचाप हाल से बाहर चले जांय। स्थिति काबू में है। चोरों को गिरफतार कर लिया और सिपाहियों के हवाले कर दिया।

बेहोश रूपा को उसने अपनी कार में डाल दिया और कार तेजी से दौड़ा दी। वह कार तेजी से लिये जा रहा था, मगर उसके मन में द्वन्द्व उठ रहा था। रूपा, रूप की अपार राशि आज उसकी दया पर थी। वही रूपा, जिसे मृणाल के यहाँ डिनर पर देखा था। उसे मालूम न था कि मृणाल के समान भी और कोई युवती उसकी परिचित दुनिया में थी। और फिर रूपा अधिक हसीन थी, क्योंकि उसमें अल्हड़ता भरी थी, और यौवन अपने पूरे ज्वार पर था। मोटर हवा की तेजी पर तैर रही थी। रूपा के कपड़ों से मस्तानी गन्ध आ रही थी और सरीन के हृदय और मस्तिष्क पर जादू सा कर रही थी। सरीन का हृदय धड़ धड़ कर रहा था। उसका जी कर रहा था कि इस उजेली रात में वह रूपा को कहीं दूर ले जाए, जहाँ कोई न हो। पहाड़ हो, नदी हो, झरना हो। खुला आसमान हो, चाँद हो। वह हो और रूपा हो।

सरीन की आँखों में चकाचौंध नाच रही थी। उसने अपने कलेजे पर हाथ रख लिया। उसमें झंझा उठ रहा था। क्या करे, वह क्या करे? उसके मस्तिष्क में विचार आ रहे थे, जा रहे थे। वह सोच रहा था। वह एक जिम्मेदार आदमी है। पुलिस का बड़ा अफसर। वह ऐसा करेगा, तो वह देश को क्या जवाब देगा। उसका मुँह काला हो जायगा। वह उतना नीचा नहीं गिरेगा। अगर वह ऐसा करे तो उसमें, रमा, शर्मा और लतीफ में फर्क क्या रह जायगा? वह रक्षा के लिए आगे बढ़ा था, अब विनाश पर उतर आया है। नहीं नहीं ऐसा नहीं होगा।..........उसने गाड़ी हास्पिटल की ओर मोड़ दी।

उसे देखते ही डाक्टर नर्स सब दौड़ आए। फौरन रूपा को संभाल लिया। एक स्पेशल कमरे में उसे रखा गया। फौरन इंजेक्शन लगाया गया और दवा दी गई। एक विशेष नर्स उसके पास रखी गई। वह भी दूर स्टूल पर बैठ गया। देखता रहा, टुकुर टुकुर देखता रहा। रूपा·········रूपवती। एक एक अक्षर सार्थक था। रूपा शान्त पड़ी थी। सीपी से पलक झुके हुए थे। पतले अधर निश्चल थे।

थोड़ी देर बाद अधर हिले। सरीन उठा। पास पहुँचा। ग्लूकोज का पानी उसके मुख में बूँद बूँद डाला। कुछ जीवन आया। पलक उठे, और अधखुले नयन उसे टक टक देखते रहे, फिर मन्द भीना सा स्वर निकला—"आप····?"

"हाँ·· मैं····सरीन···। कैसे हो रूपा?" सरीन ने पूछा

"········" वह कुछ न बोली, "ओ····मा········" कह कर उसने करवट बदली।

"नर्स तुम देखो, मैं आता हूँ।" कह कर वह कार लेकर चला गया। बोस के बंगले पर। सब सो रहे थे। जगाना उचित न समझा। चपरासी से ही पूछा—"रूपा को जानते हो तुम····?"

चपरासी बोला "हाँ, मृणाल बिटिया की····?"

"हाँ वही····कौन सा मकान है उसका।"

"गली के मोड़ से तीसरा।"

"ठीक" और वह चल दिया। जाकर दर्वाजा खटखटाया। अन्दर से लालटेन लिए बुढ़िया आई, "रूपा है क्या····बड़ी देर लगा दी।" फिर अचानक सरीन को देख कर ठिठक गई, "हैं····आप····।"

"हाँ····मैं—रूपा को चोट आई है।"

"चोट····हाय मेरी बेटी········।"

"आप फौरन अस्पताल चलें।"

"हाय चलो····कहाँ है मेरी बेटी।" उसने घर को ताला लगाया और चल दी। सरीन उसे अस्पताल छोड़ आया और सुबह आने का वायदा कर आया।

सरीन सीधा घर पहुँचा। उसने टेलीफोन उठाया। करीमगंज थाने को फोन किया, चारों अभियुक्तों के विषय में बतलाया और जरूरी हिदायतें दीं।

फिर सभी अखबारों के दफ्तरों को फोन मिलाया—"देखिये कल सुबह तक आपको एक रोमांचक खबर मिलेगी।"

"हमको मिल चुकी है, युवक सेवक समाज के कार्यक्रम के बारे में।"

"हाँ, तो क्या कर रहे हैं आप।"

"मुखपृष्ठ पर जा रही है यह खबर!"

"देखिये सावधानी से काम लें, उसमें एक भले घर की लड़की की इज्जत का प्रश्न है। कहीं ऐसा न हो·········।"

"हम समझ गए····आप बेफिक्र रहें। समाचार कुशलतापूर्वक लिखा जायगा। आपके कार्य की भी प्रशंसा·········।"

"जी नहीं···· बीच ही में वह बोला, मेरा नाम हर्गिज न दें। न और किसी का। युवक सेवक समाज बदनाम हो जायगा।"

"नरेन्द्र बाबू को खबर तो लगे कि संस्था चलाना क्या होता है?"

"नहीं····नहीं····यह सब नरेन्द्र की गैरहाजिरी में हुआ है।"

"अच्छा! हमको तो मालूम ही न था····धन्यवाद। आप बेफिक्र रहें। ऐसी कोई भूल न होगी, जिससे किसी को बट्टा लगे।"

"मैं यही चाहता था····।"

"अच्छा नमस्कार।"

"नमस्कार·········।"

और तब फिर वह शान्ति से सो सका।

१०

जिस समय पुलिस सन्तपुरा के पटेल श्री रामचरणसिंह को पकड़ कर ले गई उस समय दिन निकल आया था। उनके जाने से गाँव में मातम छा गया। क्योंकि गाँव वाले जानते थे कि ठाकुर ने सदा ही गाँव का भला किया है। वे काहे को खून करेंगे। जण्डेल अलबत्ता ऐसा कर सकता है। वह फरार भी है। मगर यह खून क्यों हुआ? मोहन की लाश बीच गली में पड़ी थी। यह हवेली का पिछवाड़ा था। निश्चय ही जण्डेल ने मोहन को हवेली में से चोरी करते देखा होगा। मगर उसने खून क्यों किया। पकड़ता, मार लगाता, पुलिस में देता। पर उसमें धीरज कहाँ था? बन्दूक उसके पास थी और कलेजा उसका शेर का।

गाँव वालों में चर्चा का अन्त न था। भँवरसिंहजी जो इतनी देर आँखें झुकाए चुपचाप सुन रहे थे, धीरे से उठे और चले आए। वे सीधे ठाकुर के घर गए। इतना बड़ा घर साँय साँय कर रहा था। वे अन्दर चले गए, देखा वहाँ कोई न था। ऊपर गए, देखा गोमा अस्तव्यस्त पड़ी है, और उसकी आँखों से आँसू की धारा बह रही है। उन्हें देखते ही वह संभल कर बैठ गई और दहाड़ मार कर रो पड़ी। भंवरसिंहजी ने कहा—"उठो, नीचे आओ, मुझे तुमसे जरूरी बात करनी है।" यह कह कर वे नीचे चले आए। गोमा पहले तो वहीं बैठी रोती रही, फिर धीरे धीरे नीचे उतरी। नीचे पहुँचते ही वह निढाल होकर गिर पड़ी। भंवरसिंहजी ने उसे संभाला, बैठाया। उसके आँसू पोंछे, बोले—"तुम फिक्र न करो। ठाकुर कल आ जाएँगे।"

"............ वह रोती रही।"

"अच्छा मैं जाता हूँ।" भंवरसिंह जी ने कहा—"तुम यहीं रहना। मैं लड़कों को भेजता हूँ। वे सब प्रबन्ध कर लेंगे।"

गोमा आँखें फाड़े देखती रही। भँवरसिंहजी एक तरफ को खड़े रह गए। ऐसी प्यारी आँखें उन्होंने पहले कभी न देखी थीं। कैसी कजरारी बड़ी बड़ी आँखें थी। उन आंखों में घटाएँ छा रही थीं और बरस पड़ना चाहती थीं। गोमा ने एक हिचकी ली और मुँह पर हाथ रखे रोने लगी।

भँवरसिंहजी ने कहा—"तुम्हें मेरी सौगन्ध, जो तुम रोईं।"

सौगन्ध। मास्टर जी की सौगन्ध। हिचकी अधूरी रह गई। श्वासी जहाँ तक आई थी, वहीं रुक गई। आँखों के मोती वहीं ठिठक गए। उसके मुँह से बस इतना निकला—"मास्टर जी·······।"

"हाँ, मैं तुम्हारे पास हूँ, किसी तरह की फिक्र न करो।"

"············ वह गुम-सुम देखती रही।"

"अच्छा मैं स्कूल चलता हूँ।" कह कर वे चले गए। स्कूल पहुंच कर उन्होंने दो-चार बच्चे ठाकुर के घर भेज दिए ताकि वह घर को साफ कर लें। पानी की व्यवस्था करें व खाना भी बना लें। उन्होंने अध्यापकों की एक बैठक बुलाई। सुबह की घटना पर प्रकाश डाला और ठाकुर परिवार की मदद करने की अपील की। सब लोगों को इस घटना से दुख हुआ और सबने भरसक सहायता का आश्वासन दिया। सबने यही कहा—"आप जो कहें वह हम करने को तैयार हैं। स्कूल की ओर से आप बेफिक्र रहें। हमें केवल निर्देश देते रहें।"

"हम प्रत्येक आने वाली मुसीबत के लिए तैयार रहें।"

"हम तैयार हैं।" सबने कहा।

दिन भर वे व्यस्त रहे। शाम को ठाकुर के घर पहुँचे। दिया बत्ती हो चुका था। लड़कों ने सब व्यवस्था कर ली थी। सबने यही कहा—"गोमा ने खाना ही नहीं खाया मास्टर जी········।"

"अरे मुझे भी याद नहीं रहा।" यह कह कर वे भीतर लपके। देखा गोमा भीत के सहारे बैठी सूनी दीवार पर टुकुर टुकुर देख रही है। उन्होंने पूछा—"गोमा! तुमने खाना क्यों नहीं खाया?"

"········" गोमा गुम-सुम।

वे पास बैठ गए, धीरे से बोले—"मैं भी दिन भर का भूखा हूं।"

गोमा ने आँखे फिराईं, उनकी ओर देखा। उन्होंने हामी भरी। बोले—"हाँ! मैं भूखा हूँ। कहो तो भूखा ही रहूँ।"

"मास्टर जी·····" उसके मुँह से इतना ही निकला।

"खाना ले आओ।" मास्टर जी ने कहा। सब दौड़ पड़े। एक थाली में रोटी और दाल रख लाए। मास्टर जी ने कौर तोड़ा, दाल में डुबोया और गोमा के अधरों पर रख दिया। अधर निस्पन्द रहे। मास्टरजी ने कहा—"गोमा ····तुम्हें मेरी····।"

आगे कुछ कहते, अधर खुल चुके थे—"पहले आप····" और कौर उसके मुँह में पहुँच गया। बोले—"हाँ! यह ठीक है।" कह कर एक थाली उन्होंने अपने लिए मंगाली और आँखें झुका कर खाने लगे। गोमा टुक टुक देखती रही। खाकर उठे, बोले—"अब तुम खा लो····।"

उसने सिर हिलाया। वे बाहर चले आए।

सोने की व्यवस्था उन्होंने इस प्रकार रखी। दो लड़के अटारी में सोएँ, दो नीचे आँगन में गोमा के पास। और वे स्वयं बाहर पौर में। जब आवश्यकता, पड़े, बुला लें।

गोमा का रोना धोना कम हो गया था, मगर बेचैनी कम नहीं हुई थी। आँगन में उसकी खाट के दोनों ओर दो छोकरे सो रहे थे। ऊपर दो छोकरे थे और बाहर मास्टर जी। जब से यह घटना हुई थी, उसका हृदय उचाट खा रहा था। उसका हृदय बार बार उसे धिक्कार रहा था कि इस सबकी जिम्मेदार तुम हो, तुम गोमा। अगर तुम यह प्रेम का रास न रचतीं तो यह क्यों होता? तुम्हारे कारण ही भैया के हाथ खून से रंगे गए। कक्का को पुलिस ले गई। और मोहन·······। उसका नाम आते ही उसका कलेजा धक से रह गया। उसकी तो जान ही ले ली। तीन आदमियों का अपराध उसके सिर पर था। हाय! इसीलिए पैदा हुई थी वह।

पर वह क्या करे। औरत जात। वह कितना मना करती थी। मोहन मानता ही न था। उसने कितनी बार हाथ जोड़े, मगर वह कब माना? मोहन ने शुरू से ही उसको लूटने के तरीके रचे थे। ऐसा जाल में लाया कि वह उसमें फंसती गई, फंसती गई। उसका हृदय कह रहा था कि भैया भाँप गए हैं। उसने कितनी बार कहा कि वे खतरनाक आदमी हैं। पर मोहन पर तो नशा छा रहा था। वह खुद तो गया, पर मुझे कहीं का न छोड़ा। अब मैं क्या करूँ "हाय।"

अब उसका जीना बेकार है। अब वह जिए तो किस के लिए। भैया के

लिए ! अब वे मेरा मुँह न देखेंगे। दद्दा के लिए। बुढ़ापे में मैंने उन्हें जेल दिखा दी। और···फिर किस के लिए जिए। उसे प्राण दे देना चाहिए। पर···पर पर··· ये मास्टर जी ने भी सौगन्ध दे दी थी, खाना ही पड़ा। ये नहीं होते तो भूखी ही मर जाती। बेचारे अपनी वजह से दुख भोग रहे हैं। इनको देखती हूँ तो छाती ठण्डी हो जाती है। ऐसे ऊँचे आदमी भी दुनिया में हैं। हाय ! ये क्यों आए ! क्यों नहीं मरने देते मुझे ? ऊपर जाऊँ; ऊपर से कूद कर जान दे दूँ ? पर ऊपर भी दो छोरे सोए हैं। हाल जग जाएँगे। फिर बाहर ही कुआँ है। उसी में डूब मरूँ। पर बीच में मास्टरजी हैं। हाय किसी तरह किवाड़ तक पहुँच जाऊँ···तो डूब जाऊँ।

वह उठी···पौरी में पहुँची···देखा मास्टर जी सो रहे हैं। उसने दरवाजे की ओर हाथ बढ़ाया कि उसके दूसरे हाथ में झटका लगा। वह पीछे की ओर खिंच गई। उसके मुँह से चीख निकलती कि किसी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया। धीमी आवाज में सुनाई दिया—"क्या है यह गोमा···।"

"मुझे रोको मत···मैं जिऊँगी नहीं। डूब मरूँगी···।"

"यह क्या पागलपन है।"

उसे पीछे की ओर खींच लिया गया। वह मास्टर जी की छाती से जा लगी। उसका हृदय धड़क उठा। मास्टरजी के तन बदन में बिजली सी दौड़ गई। वे दो कदम पीछे हटे। बोले—"गोमा···लौट जाओ, अपनी जगह···इस तरह ठाकुर का मुँह काला न करो···।"

"मेरे कक्का···।" वह रो उठी।

"तुम चिन्ता न करो···उन्हें हम आज ले आएंगे।"

"हाय···" उसने एक लम्बी सांस ली।

"गोमा तुम कितनी अच्छी हो। मेरी तरफ देखो। ठाकुर सब मेरे ऊपर छोड़ गए हैं। क्या तुम चाहती हो कि मेरे ऊपर दाग आए···अगर ऐसा चाहती हो तो···।"

"नही, नहीं···मास्टरजी," बीच ही में गोमा सिसक पड़ी। वह उनके पैरों में गिर पड़ी। उसके आंसू उनके पैर धोते रहे, बोली—"आप तो देवता हो मास्टर जी। मुझे माफ कर दो···हाय···मुझे माफ कर दो।"

"अगर तुम मेरा भला चाहती हो" मास्टर जी बोले, "तो चुपचाप सो रहो, और जैसा रोजाना रहती थीं, वैसी रहती आओ।"

"ठीक....." वह अपनी जगह चली आई। लेट गई। चन्दा को टुकुर टुकुर देखती रही। देखते देखते न जाने कब वह सो गई। सुबह उठके देखा मास्टर जी बाहर जा चुके थे। चारों लड़के वहीं थे।

भंवरसिंह ने उस दिन स्कूल से छुट्टी ली। गाँव के दो प्रतिष्ठित जनों को लेकर वे कस्बे में गए। क्योंकि वहीं अदालत थी। वहां उनकी जमानत का प्रार्थना पत्र दिया। जण्डेल के फरार होने से स्थिति कुछ कुछ साफ हो गई थी। इस लिए जमानत मंजूर कर ली गई और ठाकुर मुचलके पर छोड़ दिए गए।

शाम तक ठाकुर गाँव में आ गए। उनसे लिपट कर गोमा खूब रोई। रात को देर तक बाहर ठाकुर तथा गाँव के दूसरे आदमी और मास्टर जी बात-चीत करते रहे। किस प्रकार मुकद्दमे की पैरवी की जावे? किस प्रकार जण्डेल का पता लगाया जाय?

दो एक दिन बाद ठाकुर दौड़े दौड़े आए और अखबार मास्टरजी के हाथों में थमा दिया, बोले--"मास्टर जी! मैं सोचता था, वही हुआ?"

मास्टरजी ने अखबार पहले ही पढ़ लिया था, फिर भी एक बार और पढ़ा, फिर बोले--"ठाकुर! यह तो अन्दाजे की बातें हैं। जण्डेल ऐसा लड़का नहीं है। एक दिन उसकी खबर जरूर आएगी। वह बड़ा बहादुर लड़का है।"

ठाकुर क्या कहते चुप लौट आए। तीन दिन बाद उनके पास एक चिट्ठी आई। वे दौड़े-दौड़े मास्टरजी के पास गए। उन्होंने लिफाफा खोला। अरे यह तो जण्डेल की चिट्ठी थी। ठाकुर के कान खड़े हो गये। आँखें चिट्ठी पर गड़ गईं। उसमें लिखा था...........।

परम पूज्य कक्का जी को जण्डेलसिंह का पैर छूना पहुंचे।

आगे हाल यह है कि मैं यहाँ सही सलामत पहुंच गया हूँ। आप किसी तरह की फिक्र न करें। आप और गोमा अकेले हैं। यही फिक्र मुझे सताती रहती है। और फिर गोमा जवान हो गई है। उसका ब्याह भी करना चाहिए। आपसे अकेले यह सब नहीं होगा। अगर हो सके तो मास्टरजी से सलाह ले लें।

ब्याह के लिए रुपयों पैसों की चिन्ता न करें। सब प्रबन्ध हो जायगा। मेरी फिक्र न करें। मैं यहाँ मजे में हूँ।

आपका बेटा—जण्डेल

मास्टर जी ने चिट्ठी पढ़ दी और ठाकुर की ओर देखा। उनके होंठ कांप रहे थे। मास्टर जी ने दिलासा दी—"आप फिक्र क्यों करते हैं वह जहाँ है, राजी. खुशी है।"

"कहां है वह ?" उनके मुंह से निकला।

मास्टर जी ने चिट्ठी को उलट-पलट कर देखा। कुछ मालूम न हुआ। टिकट पर मुहर ग्वालियर की थी। बोले—"कुछ मालूम नहीं पड़ता कहां है।.... ऐसा करें। अखबारों में विज्ञापन दे दें।"

"क्या.......?" ठाकुर ने मुंह फाड़े पूछा।

"यही कि जरडेल ! जहां तुम हो.......वहां से जल्दी आ जाओ। तुम्हा पिता बहुत दुखी हैं। गोमा के ब्याह के बारे में तुमसे बातें करनी हैं। लड़का ढूंढना है।.......और क्या ?"

"जैसा तुम जानो.......मुझे तो कुछ सूझता नहीं।"

"ठीक है कल मैं ग्वालियर चला जाता हूं।"

दूसरे दिन मास्टर जी ग्वालियर चले गए। विज्ञापन दे आए। अगले दिन अखबारों में समाचार निकल गया। दो एक दिन राह देखते रहे। कोई समाचार नहीं मिला। पांचवें दिन फिर एक चिट्ठी आई। ठाकुर ने मास्टर जी को दिखाया।

मास्टरजी ने पढ़ा—"पूज्य काका जी, चरण छूना।

आगे आपका समाचार कल अखबार में पढ़ा। अब मैं वहां पहुंच गया हूं, जहां से कोई वापस नहीं आ सकता। आपको जानकर खुशी होगी कि मैं नाहरसिंह जी के साथ हूं। अब मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता।

गोमा के बारे में आपने लिखा है। बिरादरी वाले उससे ब्याह नहीं करेंगे। मैंने इसकी चर्चा नाहरसिंह जी से चलाई थी। मैंने कहा—"आप मेरी बहन को अपनी सेवा में ले लें।"

"डाकू का ब्याह मौत से ही होता है जरडेल।" उन्होंने कहा। मैं तो उनकी बहादुरी पर निछावर हो गया। उम्र भी ज्यादा नहीं है। यही तीस के होंगे। गोमा उनके साथ राज करेगी। मैंने तो उनके चरण पकड़ लिए, तब वे माने।

मैंने यहाँ गोमा की सगाई की रस्म पूरी कर दी है। उस दिन यहाँ खूब जशन मनाया गया। खूब नाच गाने हुए। गोमा होती तो वह भी नाच उठती। मैं गोमा को दुखी नहीं देखना चाहता। यहां मेरी आंखों के सामने रहेगी, तो उसका कोई कुछ नहीं कर सकेगा। वहां बिरादरी वाले, गांव वाले उसको जीने नहीं देंगे।

अब आप लगन की तारीख से सूचित करें, ताकि हम बरात लेकर आ जावें। और सब ठीक चल रहा है। छीतू चमार से बेइज्जती का बदला लेना अभी बाकी है।

आपका बेटा
जराडेल

ठाकुर फफक-फफक कर रो उठे। बोले—"अब क्या हो ?"

"जैसा आप कहें ?" मास्टरजी ने कहा।

"मेरी बेटी डाकू को जाय········नहीं···नहीं···ऐसा नहीं हो सकता।"

"आप चिन्ता न करें। बिरादरी में कहीं भी तय कर देंगे।"

"कौन तैयार होगा, इतनी जल्दी। ढूंढना पड़ेगा।"

"इसकी जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ दें।"

"मगर·······।"

"मगर क्या ? आप निश्चिन्त होकर कहें।"

"अगर हम शादी करें, बीच में ही डाकू आ जायं·······। जराडेल नाहर को लेकर आ जाय।"

"हाँ यह सब हो सकता है।"

"तब फिर ?"

"ऐसा करें। ग्वालियर चलें। वहाँ मेरे एक मित्र हैं नरेन्द्र। वे युवक सेवक समाज के मन्त्री हैं। उनसे अपना दुख कहेंगे, तो जरूर कुछ उपाय करेंगे।"

"जैसा तुम जानों। मेरा तो तुम्हारे सिवाय कोई नहीं।"

"यही ठीक रहेगा। कल सब चले चलें।"

ठाकुर को कुछ सुझाई नहीं दे रहा था। घर आकर टूटी सी चारपाई पर पड़ गए। गोमा ने आकर खाने की पूछी, तो उसकी तरफ देखते रह गये। वह डर गई। हाय ! उसी के कारण यह हुआ है। उसकी आंखों में आंसू आ गये।

कक्का कहीं देख न लें, इसलिए रोक लिया। उनके सिरहाने बैठ गई। उनका माथा दबाने लगी। ठाकुर धीरे-धीरे सो गये।

थोड़ी देर बाद मास्टर जी आये। गोमा खड़ी हो गई। पूछा—"ठाकुर सो गये क्या ?"

"हां········।"

मास्टरजी ने कहा—"गोमा·······इधर आओ। तुम से कुछ बात करनी है।"

गोमा मूक खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे कमरे की ओर चली गई, जहां मास्टर जी खड़े थे। मास्टर जी ने पूछा—"गोमा ! एक बात पूछूं, सच-सच कहोगी।"

"········" गोमा ने सिर हिलाकर हामी भरी।

"कक्का तुम्हारा व्याह कर रहे हैं········।"

बीच ही में गोमा रो पड़ी—"नहीं··नहीं··नहीं·।"

"तुम्हारे भाई ने सगाई तय करदी है।" मास्टर जी ने कहा, "प्रसिद्ध डाकू नाहरसिंह के साथ। बोलो, तुम राजी हो। हम तुम्हारी मरजी बिना कुछ न करेंगे।"

"नहीं···नहीं···मैं शादी नहीं करूंगी। मैं मर जाऊंगी···शादी नहीं करूंगी।"

"नाहरसिंह से नहीं करोगी····।"

"नहीं····मैं शादी नहीं करूंगी, किसी से भी नहीं करूंगी।"

मास्टर जी मुस्कराए। आजमाने के लिए पूछा—"मुझ से भी नहीं····।

"आप····?" गोमा के ओठ और आँखें खुले रह गए। आंखों से बड़े-बड़े मोती लुढ़कने लगे, बोली—"मैं किसी लायक नहीं हूँ····मास्टर जी····।"

"नहीं····नहीं।" मास्टर जी ने कहा, "तुम तो बहुत अच्छी हो।"

"गोमा····!" ठाकुर ने कराह ली। गोमा दौड़कर उनके पास पहुंची।

"क्या है काका ?" उसने ठाकुर के माथे पर हाथ रख दिया और बड़ी-बड़ी आंखों से मास्टरजी की ओर देखने लगी। मास्टरजी आंखें झुकाए आए, और ठाकुर के पायताने बैठ गए। बोले—"मैं यह कह रहा हूं ठाकुर ! कल सुबह चलना है। गोमा कुछ खाना बना ले।"

ठाकुर जाग गए थे। बोले—"हाँ! मुझे याद ही नहीं रहा। गोमा बेटी! एक दो सेर आटे की पूरी बना ले। सुबह मास्टरजी के साथ ग्वालियर जाएँगे।"

मास्टरजी वहीं बैठे रहे। ठाकुर से बातें करते रहे। गोमा उठी। रसोई में आई। काम में लग गई। पूड़ी बना रही थी। सोच रही थी—"मोहन ने ग्वालियर ले जाने का वायदा किया था....और अब ग्वालियर ले जा रहे हैं ये मास्टर जी! किस्मत का खेल देखो। मुझे बातों में यूं ही भुलावा देता रहा। अगर सच ही मैं उसके साथ भाग जाती तो आज कक्का की नाक ही कट जाती। मास्टर जी कितने भले आदमी हैं। पास खड़े रहते हैं, आँखें ऊपर नहीं उठाते। एक वह था, जो मुझे बरबाद कर गया। सारा घर मुसीबत में पड़ा है। भैया का पता नहीं। कक्का की यह हालत हो गई। खुद तो मर के इस दुनियां से पिण्ड छुड़ा गया। और मुझे छोड़ गया है, जिन्दगी भर रोने के लिए।

मास्टरजी भी कैसी बातें करते हैं। नाहरसिंह से ब्याह करने को कहते हैं। उस डाकू से। सुनते हैं बड़ा जालिम है। दूर के रिश्ते का जीजा है। पहले एक बार आया था तो देखा था कैसी भयानक आँखें थीं। हाय राम, मैं मर जाऊं, पर उससे ब्याह न करूंगी।

हाय! मास्टरजी कभी पाताल में फैंक देते हैं, कभी आसमान पर उठा देते हैं। अपने साथ भी तो ब्याह की बात कही थी। हाय राम! मेरे ऐसे भाग्य कहां? वह तो आकाश के चन्दा हैं, जिन्हें मैं देख ही सकती हूं, पा नहीं सकती। मास्टरजी कहें तो। मैं तो अपनी बोटी-बोटी काटकर उनके चरणों में चढ़ा दूं। पर मोहन ने मुझे कहीं का न छोड़ा। कैसी मीठी बातें करता था। बातें ही बातें थीं। छल से भरी हुई। मै भी अन्धी हो गई थी। एक मास्टर जी हैं। मुसीबत में साथ दे रहे हैं। अपनी जान लड़ा रहे हैं। किस के लिए। कोई स्वारथ नहीं। ऐसे चरित्तर के आदमी मैंने नहीं देखे। आज तक उंगली भी नहीं पकड़ी। देवता हैं देवता।

ठाकुर और मास्टरजी बातें करते रहे। गोमा ने खाना बना लिया। मास्टरजी ने जोर से कहा—"अपने जाने का प्रबन्ध कर लो गोमा। ठाकुर और अपने कपड़े निकाल लो। सुबह तड़के ही चलेंगे।"

गोमा अपने कमरे में चली गई। और मास्टर जी उठे, बोले—"मैं गाड़ी का प्रबन्ध कर आऊं ठाकुर! सुबह जल्दी चलना है।"

"जाओ बेटा! अब तुम्हारा ही सहारा है।" ठाकुर ने कहा।

और मास्टर जी प्रबन्ध करने बाहर चले गए।

११

रूपा अस्पताल से ठीक होकर आ गई है। यह नरेन्द्र और मृणाल को जब मालूम पड़ा, जब वे भोपाल से एक सेमीनार से लौटे। यह सेमीनार वास्तव में आदिवासियों के कल्याण पर विचार करने के लिए आयोजित की गई थी, चूंकि नरेन्द्र इस विषय पर रिसर्च कर रहा था, अतः उसे विशेष वक्ता के रूप में निमन्त्रित किया गया था। मृणाल ने भोपाल देखा नहीं था, इसलिए वह भी चली गई। क्योंकि इन दिनों उसका मन उचट रहा था, और बोस भी चाहते थे कि वह कहीं बाहर घूम आए। इससे अच्छा अवसर उसे कब मिल सकता था, जबकि नरेन्द्र साथ हो।

सेमीनार में दिल्ली, कानपुर, पूना, हैदराबाद और आसाम के भी प्रतिनिधि आये थे। अतः नरेन्द्र का सभी से अच्छा परिचय हो गया था, और मृणाल भी इस लाभ से बंचित न रही थी। दूसरे दिन नरेन्द्र का भाषण हुआ। नरेन्द्र ने अपने भाषण में मूल बात यह रखी कि आदिवासियों के लिए केवल बजट स्वीकृत करने से कुछ न होगा। उस धन का सही उपयोग होना चाहिए, और यह भी तभी हो सकता है जबकि देश के होनहार युवक उन स्थानों को अपना कार्यक्षेत्र बनाएं। उनके बीच रहकर कार्य करें।

सेमीनार के अन्तिम दिन सब लोग पंचमगढ़ी गए। कैसा मनोरम स्थान है। मृणाल ने कहा—"नरेन्द्र! अब के ग्रीष्मावकाश में यहीं रहा जाय।"

"यहां का जीवन बड़ा मंहगा है।"

"मेरे साथ रहकर भी....।"

"मैं तुम्हारे ऊपर आलम्बित नहीं होना चाहता।" फिर नरेन्द्र ने बात बदलते हुए कहा—"वहां युवक सेवक समाज को देखना है....।"

मृणाल कुछ कहे कि अखबार वाला आज का अखबार दे गया। मुखपृष्ठ पर ही खबर छपी थी—"टाउनहाल में 'सहरिया नृत्य' प्रदर्शन में दंगा। लाइट चले जाने से रंग में भंग। हीरोइन अस्पताल में।"

खबर पढ़कर नरेन्द्र तो अवाक् रह गया। उसके हाथ से अखबार गिर गया। मृणाल ने देखा, वह भी नहीं समझी। किस का प्रोग्राम था, किस ने आयोजन किया था। फिर उसे याद आया, एक दिन रूपवती आई थी, पूछने। आशंका से उसका हृदय भर आया। बोली—"पहली गाड़ी से ही ग्वालियर चलें।"

"मगर मेरी तो कुछ समझ में ही नहीं आता, यह मामला क्या है ?"

"सब वहाँ पहुंच कर स्पष्ट हो जायगा।" मृणाल ने कहा।

ग्वालियर आने पर तो वे और भी उलझन में फँसे। रूपवती अस्पताल से आ गई थी। मगर रामवती और उसे गहरा धक्का लगा था। एक तरह से विश्वास खो चली थीं। उधर युवक सेवक समाज के चार कार्यकर्ता कैद थे और मुकदमे की तारीख नजदीक थी। नरेन्द्र जानता था कि गलती इनकी ही थी। वह सरीन से कई बार मिल चुका था, और इस विषय पर चर्चा कर चुका था। वह नहीं चाहता था कि इनमें से किसी को सजा मिले। क्योंकि इससे युवक सेवक समाज की प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा। और फिर नरेन्द्र इन सबसे मिल आया था। उसने देख लिया था कि वे सब पश्चात्ताप की आग में जल रहे थे। पश्चात्ताप से बड़ा दण्ड उसकी निगाह में और कुछ न था।

मुकदमा आरम्भ हुआ। रमा ने कहा—"रोल का विशेष भाग ही अदा करने का मैंने प्रयत्न किया था, इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया।"

डायना ने कहा—"ड्रामा बीच में ही अपसेट हो जाने पर भीड़ को शान्त करने के लिए ही मैंने स्विच आफ किया था। उस समय मुझे यही सूझा था।"

शर्मा और लतीफ ने कहा—"रूपा के गिर कर बेहोश होने पर स्टेज पर से उसे हम हटा ही रहे थे, और इसके सिवा चारा भी क्या था।"

रूपा ने बयान दिया—"नृत्य में पैर फिसल जाने पर मैं गिरी और बेहोश हो गई। उसके बाद मुझे नहीं मालूम क्या हुआ।"

सरीन ने कहा—"आकस्मिक कारणों से ये अपराधियों की स्थिति में थे। यदि मैं बाधा न देता तो टाउन हाल को भीड़ लूटती, बरबाद करती और रूपवती की जान का भी खतरा था।"

जज ने न्याय दिया—"उचित निर्देशन व परिपक्व व्यवस्था के अभाव में अभियुक्त अज्ञानवश उस स्थिति में पहुँचे। अतः उन्हें क्षमा प्रदान की जाती है।"

हाल तालियों से गूंज उठा। जज ने कहा—"समय पर स्थिति को संभालने में डी० एस० पी० श्री सरीन ने साहस और बुद्धि का परिचय दिया है, वे बधाई के पात्र है।"

हाल फिर तालियों की गड़गड़ाहट में डूब गया। जज ने अन्तिम शब्दों में कहा—"युवक सेवक समाज के प्रमुख कार्यकर्ता अध्यक्षा कुमारी मृणाल बोस और श्री नरेन्द्र श्रीवास्तव से आशा की जाती है कि उचित व्यवस्था में ही भविष्य में कार्यक्रम उपस्थित किये जाँय।"

सब ने तालियों में इन शब्दों का स्वागत किया।

सब लोग समाज के कार्यालय में एकत्रित हुए। सबकी पलकें झुकी हुई थीं। किसी के मुंह से शब्द न निकल रहे थे। इस निस्तब्धता को तोड़ा मृणाल ने। बोली—"हमें इस घटना से सबक लेना चाहिए।"

"कि युवकों का नैतिक स्तर उठाने की हमने कसम खाई है। अगर हम ही गिरेंगे, तो हम समाज को कैसे उठाएंगे।" नरेन्द्र ने कहा।

"और फिर युवक सेवक समाज के और भी कर्तव्य हैं। उनमें चेतना उत्पन्न करना और देश के नवनिर्माण में लगाना।" मृणाल ने कहा।

सभी नजरें झुकाए बैठे थे। रूपा भी बैठी अपने में गड़ी जा रही थी। नरेन्द्र ने कहा—"युवक सेवक समाज का काम केवल नाटक करना नहीं है। यह तो समय पड़ने पर माध्यम बनाया जा सकता है। इसका मूल उद्देश्य तो नई पीढ़ी को नये मूल्य प्रदान करना है, नई विचारधारा देना है। आज की समस्याओं को नए दृष्टिकोण से सोचना है।"

मृणाल बोली—"और हम अपने अन्दर इतनी गरिमा उत्पन्न करें कि साधारण परिस्थितियाँ हमें डिगा न सकें।"

रूपा ने डबडबाई आँखों से कहा—"मुझे माफ कर दो दीदी।"

मृणाल बोली—"तुम युवक सेवक समाज के असली रूप को पहचानने की कोशिश करो रूपा। यह केवल सत्यं शिवं सुन्दरम् के सिद्धान्त पर आधारित

है। इसका प्रत्येक सदस्य अपने को इस स्तर पर उठा ले कि वह पारस बन जाय जिसे छूकर कोई भी लोहा, खरा सोना बन जाय।"

डायना विकल होकर बोली—"अपराधिनी मैं ही हूँ दीदी! मुझे जो चाहो सजा दो, पर एक बार सच्चे दिल से माफ कर दो दीदी!"

शर्मा-लतीफ ने कहा—"आगे से तिनका इधर से उधर न होगा।"

रमाकान्त बोला—"युवक सेवक समाज के लिए मैं जीवन पर खेल जाऊंगा चाहे जब मेरी परीक्षा कर लें।"

नरेन्द्र उठा। तीनों को छाती से लगा लिया। रूपा और डायना मृणाल से लिपटी बिलख रही थीं। थोड़ी देर बाद ज्वार समाप्त हुआ तो चाय पान हुआ। डायना ने हास्य बिखेरते हुए कहा—"भोपाल से हमारे लिए क्या लाई दीदी!"

"बहुत फुर्सत में आई हूँ न वहाँ से।" मृणाल ने कहा और कमरा हंसी से गूंज उठा।

चाय पान समाप्त हुआ। सब एक एक करके विदा हुए। रूपा चलने लगी तो मृणाल ने कहा—"अरी ठहर तो! मुझे कहाँ छोड़ चली····।"

"वहीं, जहाँ तुम चाहती हो?" रूपा मुस्कराई।

"नहीं मानेगी····अच्छा ठहर तो····।"

"नहीं मैं तो चली····" कह कर रूपा बाहर निकल गई। मुस्कराते हुए मृणाल बोली—"आज की रूपा और चार महीने पहले की रूपा में कितना अन्तर आ गया है।"

"कली फूल बन गई है।" नरेन्द्र ने कहा।

"और तुम कवि बन गए हो।" मृणाल ने व्यंग्य किया।

नरेन्द्र ने कहा—"हाँ! तुम्हें पाकर।" वह कुछ कहता कि रूपा तेजी से अन्दर आ गई—"क्या मैं आ सकती हूँ··· ओह वेरी सारी"

मृणाल ने कहा—"अरे आओ न··· क्या बात है?"

रूपा बोली—"बाहर, आप लोगों से कोई मिलने आए हैं?"

"कौन हैं?" नरेन्द्र ने पूछा।

"मैं हूँ भँवरसिंह।" रूपा कुछ कहती कि बीच ही में भँवरसिंह, पटेल श्री रामचरणसिंह व गोमा अन्दर आ गए।

"ओह तुम भंवर ! कब आए ! आज तो खूब कविता सुनूंगा तुम से । अरे सुनो मृणाल, तुम भी सुनो रूपा ! इनसे परिचय प्राप्त करो । यह हैं मेरे कालिज के सहपाठी श्री भंवरसिंहजी भंवर ! बहुत अच्छे कवि हैं । कालिज छोड़ने के बाद मैं रिसर्च में लग गया. और ये हैडमास्टर बन गए···· ।"

बीच ही में भंवरसिंहजी बोले— सब कुछ तुम्हीं कहे जाओगे········ या ·· ?"

"हाँ····हाँ···· तुम भी परिचय प्राप्त करो····यह हैं···· ।"

"कुमारी मृणाल बोस, युवक सेवक समाज की अध्यक्षा····अर्थात् तुम्हारी बोस···· । भंवरसिंह ने हंस कर कहा—"यस····यस···· ।"

रूपा ने ताली बजाकर कहा—"हाँ नरेन्द्र जी····।"

बीच ही में नरेन्द्र बोला—"और मैं तो भूल ही गया था··· ये हैं कुमारी रूपवती · हमारे युवक सेवक समाज की···· ।"

बीच में ही रूपा बोली—"एक साधारण सदस्य···· ।"

नरेन्द्र ने कहा—"अब कहाँ पर हो हैडमास्टर साहब !"

"सन्तपुरा···· ।" भंवरसिंह जी ने कहा ।

"सन्तपुरा···· ।" नरेन्द्र ने पूछा'--'वही सन्तपुरा, जहाँ से जण्डेलसिंह फरार हुआ है ।"

"हाँ । ये हैं जण्डेलसिंह के पिता श्री रामचरणसिंह, गाँव के पटेल और ये हैं जण्डेल की छोटी बहन—गोमती देवी । गोमा कह कर पुकारते हैं ।"

सब ने हाथ जोड़ कर कहा—"ओह बहुत खुशी हुई आप लोगों से मिल कर ।"

ठाकुर और गोमा ने भी हाथ जोड़ दिये । पलकें झुकी रहीं । भंवरसिंह ने कहा—"हम बहुत दूर से आए हैं , केवल तुम्हारे पास । एक बहुत जरुरी विषय पर परामर्श करने ।"

"हाँ हाँ कहो न ! यहाँ सब अपने ही आदमी हैं । नरेन्द्र ने कहा—"रूपा, सामने का दर्वाजा बन्द कर दो ।"

"मैं जाऊं···· ?" उसने किवाड़ें बन्द करते हुए पूछा ।

"नहीं, नहीं, यहाँ बैठो मेरे पास ।" मृणाल ने मीठा झिड़क कर कहा ।

"बात यह है," भंवरसिंह पास खिसक आए, बोले—"यह तो आपको मालूम ही है कि इनका बेटा खून करके डाकू नाहरसिंह के गेंग में शामिल हो गया हैं। अब वह वापस नहीं आयगा। मुकदमा ठाकुर को लड़ना पड़ेगा और घर में अकेली बेचारी गोमा हैं।"

सब ने देखा, गोमा लजा गई– लाल हो गई। मास्टर जी ने कहा–"अब गोमा को अकेले गाँव में कैसे छोड़ा जाय···· ।"

मृणाल ने कहा—"इनका विवाह क्यों न कर दें।"

ठाकुर बोले—"हाँ! मैं भी यही चाहता हूँ ।"

मास्टरजी बोले—"एक कठिनाई बीच में और है···· । वह यह कि गोमा को उचित वर की तलाश में थोड़ा समय लगेगा।"

नरेन्द्र ने कहा—"भले ही लगे। मगर लड़की जायगी तो भले घर ही। जल्दी में कुंए में तो नहीं ढकेला जा सकता।"

मास्टरजी ने कहा—"यही तो मैं कहता हूँ कि गोमा के लिए उचित वर की तलाश हो। मगर जण्डेलसिंह का खत आया है····।"

"जण्डेलसिंह का, नाहर के गेंग से? क्या खत आया है?"

"जण्डेल ने अपनी बहन की सगाई नाहरसिंह से तय कर दी है।"

गोमा गड़ गई। उसकी आँखें भर आईं। रूपा उठी। उसे अपने गले लगा कर बोली—"ऐसी कोमल कली, उस डाकू के साथ कैसे जिएगी। और फिर बिना बाप की मर्जी यह सगाई क्यों तय की गई।"

गोमा सिसकने लगी। रूपा ने उसे चिपटा लिया। मृणाल बोली—"नहीं नहीं, गोमा के साथ अन्याय नही होगा। जण्डेल के तय करने से यह सगाई थोड़े ही मानी जायगी।"

नरेन्द्र ने कहा—"उस ओर की चिन्ता न करो। अब गोमा का कहीं अच्छी जगह विवाह तय किया जाय।"

"मगर···" ठाकुर ने कहा—"अब इतना समय नहीं है।"

"क्यों?" नरेन्द्र ने पूछा।

"क्योंकि जण्डेल ने लिखा है कि वह शीघ्र ही बरात लेकर आ रहा है।" भंवरसिंह कहा।

"और अगर हम दूसरी जगह तय करें भी, तो हो सकता है कि वह और नाहरसिंह ठीक बीच में से गोमा को उठा ले जाँय।" ठकुर एकसांस में कह गए, "जण्डेल अपनी जिद का पक्का है।"

"ओह! यह तो बड़ी मुसीबत है...." नरेन्द्र ने कहा।

रूपा बोली—"इसका तो बस एक ही उपाय है कि गोमा की यहीं, अभी शादी तय कर दी जावे....और कल ही विवाह हो जाय।"

"मगर यह इतनी जल्दी होगा कैसे.... ? भँवरसिंह ने पूछा।

"नरेन्द्र, जरा इधर आना।" मृणाल ने इशारे से कहा और दूसरे कमरे में चली गई। नरेन्द्र भी उठा, और उस कमरे में चला गया। यहाँ निस्तब्धता बनी रही। सबकी पलकें झुकी हुईं, सांस जहां की वहाँ।

थोड़ी देर बाद दोनों अन्दर से मुस्कराते हुए आए। मृणाल बोली—

"भँवर जी! आपको एक काम करना पड़ेगा....।"

"आज्ञा दीजिए....।" भंवरसिंह बोले।

"देखो भंवर!" नरेन्द्र बोला, "ये युवक सेवक समाज की अध्यक्षा हैं। मैंने भी कभी इनकी आज्ञा नहीं टाली।"

"मैं भी इनकी हर आज्ञा मानूंगा....कहिए मुझे क्या करना होगा ?"

"त्याग...." मृणाल ने मुस्कराकर कहा—"अपने जीवन का त्याग।"

"मैं ने तो स्वयं अपना जीवन, देश व समाज के लिए दे दिया है।"

"वही समाज, आप से आपका जीवन माँग रहा है ?" मृणाल बोली।

"किसलिए....मैं तैयार हूँ।" भंवरसिंह ने कहा। सब अवाक् बैठे थे, कि मृणाल ने कहा— समाज चाहता है कि आप गोमा को अंगीकार करें। उससे विवाह करें।

"हां भंवर! इस परिस्थिति की यह सबसे बड़ी आवश्यकता है।" नरेन्द्र बोला।

"गोमा से विवाह.... मैं ....किस लायक हूँ। मैं गरीब घर का लड़का, ये बड़े ठाकुर, पटेल।" भंवरसिंह ने कहा "और मेरा दुनिया में कोई नहीं।"

"तुम तो बहुत बड़े हो बेटा," ठाकुर ने कहा, "मुझे डूबने से बचा लो। तुम सा हीरा मुझे कहाँ मिलेगा। इस पगड़ी की लाज रख लो।" ठाकुर उठे और अपनी पगड़ी भंवरसिंह के पैरों में रखने लगे।

"हाँ ! हाँ ! यही ठीक है ।" रूपा बोली ।

भंवरसिंह जी ने ठाकुर को उठा लिया । गले से लगाते हुए बोले–"काका क्या तुम मुझे अपना बेटा नहीं मानते । आप सब लोग जो चाहेंगे, वह होगा ।"

"तुम तो बेटे से भी बड़े हो" ठाकुर बोले, "आज तुम ने मुझे डूबने से बचा लिया ।"

सबने देखा, गोमा की सिसकी बन्द हो गई । आँखों के मोती सूख गए । बड़ी बड़ी रस भरी आँखों से [illegible]रछे मास्टर जी की ओर देखने लगी । भंवरसिंह जी नें देखा, बोले—"इसमें गोमा की मरजी भी होनी चाहिए ।"

सबने देखा, गोमा आंखों ही आँखों में मुस्कराई और भारी पलकें एक साथ नीची कर लीं । उसकी उंगलियाँ साड़ी की कोर को जल्दी जल्दी उमेठ रही थीं । मृणाल मुस्कराई, बोली—"हमें स्वीकृति मिल गई ।"

रूपा ने कहा—"अब कल ही विवाह हो जाना चाहिये ।"

"मगर उसमें खतरा है" भंवरसिंह ने कहा—"जण्डेल या नाहर बदला लेंगे । हो सकता है वे मुझे या ठाकुर को गोली से उड़ा दें । और उसमें ठाकुर की, मेरी बदनामी है । गाँव वाले कहेंगे कि मास्टर इसलिए गोमा और ठाकुर को शहर ले गए थे । और शहर का ब्याह किसने देखा है । लोग न जाने क्या-क्या कहें ।"

"तब फिर....?" नरेन्द्र ने पूछा ।

"ब्याह तो गाँव में ही होगा ।" ठाकुर बोले--"पुलिस का इंतजाम करना होगा ।"

"हाँ ठीक है" मृणाल बोली--"सरीन की मदद ले सकते हैं ।"

"मगर इससे संघर्ष होगा । जानें भी जा सकती हैं ।" नरेन्द्र ने कहा ।

"हाय !" गोमा ने निःश्वास भरी ।

"तब फिर क्या किया जाय ?" भंवरसिंह ने पूछा ।

थोड़ी देर शांति रही । सब सोचते रहे । मृणाल ने अचानक चुटकी बजाई । उसने अपनी योजना सबके सामने रख कर पूछा—"कहो क्या राय है ?"

"हाँ । यह ठीक है" सबने कहा, "यही किया जाय ।"

"मैं आज ही सब प्रबन्ध करता हूं।" नरेन्द्र बोला "आप बेफिक्र होकर गांव जांय। सब ठीक हो जायगा।"

"हम तुम्हारा एहसान जिन्दगी भर न भूलेंगे नरेन्द्र बाबू।" ठाकुर बोले—"अच्छा परनाम।"

"अच्छा नमस्ते ठाकुर!" नरेन्द्र ने कहा, "भंवरसिंह। तुम तो आज यहाँ टिकते। कुछ बातें होतीं। थोड़ा समय कटता।"

"ठहरता तो सही, मगर पटेल का एक एक दिन मुसीबत में बीत रहा है। मुझे हरदम साथ रहना पड़ता है। अच्छा चलूँ।"

"हाँ हाँ जाइए न" रूपा बोली, "यहाँ क्यों ठहरेंगे। अब तो अपनी मंगेतर के साथ जाएंगे ही।"

"अरी योजना तो पहले ही थी" मृणाल बोली, "यहाँ तो बताने आए थे।"

सब हंस पड़े। रूपा ने गोमा को छाती से लगाते हुए कहा—"गोरी, तुझे पिया मुबारक हो।"

सब मुस्कराए। हंसते हुए विदा हुए।

१२

जबसे जण्डेल ने चमारपुरा में पांच चमारों को गोली से उड़ाया, वह नाहरसिंह का विश्वासपात्र बन गया । वैसे नाहरसिंह का दायां हाथ बेधासिंह था । मगर जो कठोर दृढ़ता जण्डेल में थी, वह किसी और में नहीं थी। गोली का तो अचूक निशानेबाज भी वह था । अंधेरे में तिनके को निशाना बना सकता था, नदी की तलहटी में बिलबिलाती हुई मछलियों को चित कर देता था। इसलिए वह शीघ्र ही नाहरसिंह का कृपा पात्र बन बैठा।

नाहरसिंह पर अपनी आत्मीयता की धाक जमाने के लिए वह पहले ही रिश्ता निकाल चुका था, और अब तो अपनी बहन के प्रसंग पर वह कई दिन नाहरसिंह से बात कर चुका था। बार बार नाहरसिंह ने यही कहा—"मुझे मजबूर न करो जण्डेल। डाकू मुसीबत में पलते हैं मौत से खेलते हैं।"

"मेरी बहन भी बहादुर राजपूतानी है। वह आपकी बाधा नहीं बनेगी।" जण्डेल ने कहा।

"इन जंगलों में मैं उन्हें कहां कहां लिये भटकूंगा ?"

"आप फिक्र क्यों करते हैं। मैं हूं, बोधासिंह है। आप तो यहां आराम से रहें। हम डाके डाल लाया करेंगे।"

"भाई मैं तो····।"

"मैं कुछ न सुनूंगा····मैंने तो निश्चय कर लिया है। आप हां कर दें।"

नाहरसिंह चुप हो गया। वह पहले एक बार सन्तपुरा जण्डेल के घर गया था। वहां गोमा को देखा था तो देखते ही निछावर हो गया था। फिर वह इधर आ गया था। इन झंझटों में सब भूल गया। आज वह भोला मुखड़ा फिर उसकी आंखों में छा गया। उसे ख्याल आया। अपनी भी क्या जिन्दगी है।

दिन रात भटकना ही भटकना । कोई घाव सेंकने वाला नहीं, कोई दो मीठी बात करने वाला नहीं । कोई होगा तो ये मुसीबतें भी प्यारी लगेंगी । वह सर झुकाए सोचता रहा ।

"क्या कहते हो सरदार ?" जण्डेल ने पूछा ।

"जैसी तुम्हारी मरजी" नाहरसिंह ने इतना ही कहा ।

"बस जीत गया मैं" जण्डेल ने कहा, "कल ही काका को चिट्ठी डालता हूं ।"

और वह चिट्ठी डाल कर प्रतीक्षा करने लगा । उसे लगा कि कक्का उस की इस बात से प्रसन्न हो जाएंगे । कोई विशेष खर्च भी न होगा । यहां गोमा सुखी रहेगी । और फिर मैं जो हूँ यहां ।

दो एक दिन देखता रहा । कोई जवाब नहीं आया । एक हफ्ता बाद एक अखबार मिला । पहली भी खबरें अखबार में आईं थीं । बस इसी में समाचार हैं । उसका हृदय धड़कने लगा । उसने झट अखबार खोला—बहुत सारी खबरें छपी थीं । पन्ना पलटा । अन्दर तीसरे पन्ने पर छपा था—"प्रिय जण्डेल ।"

उसने आगे नहीं पढ़ा । उसका हृदय बल्लियों उछल पड़ा । दौड़ा दौड़ा नाहर के पास गया । बोला—"देखो सरदार । मैंने कहा था कि जल्दी ही खबर आएगी । अब तुम्हीं पढ़ लो न" जण्डेल ने कहा और अखबार उसे थमा दिया ।

नाहर ने अखबार पढ़ा । जण्डेल ने देखा सरदार की भवें टेढ़ी होती जा रही हैं, अन्त में बोला—"मेरा अपमान हुआ है ।"

"अपमान । यह क्या कहते हो ?" कहकर जण्डेल ने अखबार ले लिया । उसमें लिखा था ।

प्रिय जण्जेल ।

मुझे तुम्हारा दूसरा पत्र मिल गया था । तुम जहां भी रहो, खुशी रहो । यह मेरी इच्छा है । भगवान तुम्हारी रक्षा करे ।

तुमने गोमा के विवाह के बारे में लिखा है । तुमने यह निर्णय लड़कपन में किया है । अतः ऐसा नहीं हो सकता । मैं पिछले दिनों ग्वालियर गया था । वहां मैंने दो एक लड़के देखे थे । उनमें से एक मुझे पसन्द भी आ गया है । लड़का अच्छा है, पढ़ा लिखा है ।

विवाह इसी पखवाड़े में होना निश्चित हुआ है। वह बैसाख सुदी पंचमी तारीख ११ मार्च बुधवार का है। बारात ग्वालियर से ही आएगी।

गोमा की ओर से तुम बेफिक्र रहो। और मेरी तो क्या है, जिसकी बुढ़ापे की लाठी ही खो गई हो तो उसका कौन सहारा है ?

गांव में सारा प्रबन्ध मास्टर जी और नरेन्द्र बाबू का रहेगा। नरेन्द्र बाबू को तुम नहीं जानते। बड़े भले आदमी हैं। और सब ठीक हैं।

तुम्हारा पिता
रामचरणसिंह

जण्डेल का मुँह उतर गया। उसे कक्का से ऐसी आशा न थी। कक्का में तो इतनी बात नहीं है, यह जरूर मास्टरजी ने किया है। पर मास्टरजी भी मेरे खिलाफ क्यों जाते ? जरूर कक्का ने उनको मेरी चिट्ठी नहीं बताई होगी। और फिर ग्वालियर में कौन ऐसा ठाकुर है, जो गोमा से शादी के लिए तैयार हो गया। क्या वह यह नहीं जानता कि इस लड़की का भाई खूनी है, फरार है।

जण्डेल ने कहा—"मैं बहुत शर्मिदा हूँ, सरदार ! आप जो कहें वह करूँ।"

नाहर ने व्यंग्य किया—"चूड़ी पहन कर बैठ जाओ। और क्या करना है। भला ग्वालियर का छोकरा हमारे होते हुए, ब्याह ले जाय।"

जण्डेल को ताव आ गया। बोला— "क्या कहते हो सरदार। मैं ठाकुर बच्चा हूं। मैं अपनी बहन को आपके कदमों पर डाल कर रहूंगा। किसी की भी हिम्मत नहीं कि गोमा को ब्याह ले जाय।"

"क्या करोगे ?" नाहर ने पूछा।

"आप कहें, मैं उसे ठीक मण्डप में से उठा लाऊँ।"

"इसमें पटेल की नाक न कटेगी। उसके दर्वाजे पर से लड़की को उड़ाया गया।...और फिर तुम भाई होकर बहन को मंडप में से उठाओगे।"

"तब फिर आप यह काम करें। आपकी रक्षा का भार मुझ पर।"

"नहीं ! सन्तपुरा मैं न जाऊँगा। वहां नरेन्द्र होंगे। उनके सामने मैं इस रूप में नहीं जा सकता। उन्हें देख लेता हूं तो गर्मी ठण्डी पड़ जाती है।"

"तब फिर क्या हो ?" जण्डेल ने पूछा।

"ऐसा करो ! बरात बहू लेकर लौट रही हो, तो यह काम आसानी से किया जा सकता है । तुम्हारा गांव सड़क से कितनी दूर है ?" नाहरसिंह ने पूछा ।

"दस मील" जण्डेल ने कहा, "बीच में भरके भी हैं ।"

"बस यही ठीक रहेगा, उन भरकों में बरात को लूटा भी जायगा । जेवर भी हाथ लगेंगे, और दुलहिन को इधर ले आएंगे । बोलो है मंजूर ।"

"मैं हरदम तैयार हूँ, आप भी तैयार रहें ।"

"और यह बात तीसरा आदमी भी न जान पाए । और इस बारे में किसी प्रकार की चिट्ठी अपने पिता को न लिखें । अधिक चिट्ठी लिखने से पुलिस को अपना पता लग सकता है ।"

"यही होगा, आप बेफिक्र रहें ।" जण्डेल ने कहा ।

नाहरसिंह ने यह सब तो कर लिया, मगर उसके दिल को चैन न था । वैसे वह शादी ब्याह के चक्कर में पड़ने वाला व्यक्ति न था, और अगर वह चाहता तो कई कुंआरी कन्याएँ उड़ा सकता था । यह उसके लिए मामूली बात थी । मगर अब तो बात छेड़ दी गई थी । गोमा उसने देखी थी, और उसका रूप उसकी आँखों के आगे नाच रहा था । पतली, छरहरी, बलखाती गोमा । बड़ी-बड़ी आँखों वाली गोमा । और फिर अपनी जात की । बड़े घराने की लड़की । आह ! अब तो उसके बिना उसे सब अधूरा सा लगता । जण्डेल ने यह क्या आग लगा दी उसके हृदय में । उसकी बलिष्ठ भुजाएं किसी को आलिंगन में कसने के लिए फड़क उठीं । उसके ओठ अमृत पी जाने के लिए गर्म हो उठे ।

मगर अब कैसे होगा । उसकी शादी दूसरी जगह तय कर दी गई होगी । उसकी तो चिन्ता उतनी नहीं है । मगर इस शादी में नरेन्द्र बाबू दिलचस्पी ले रहे हैं । क्यों वे उस पचड़े में फंस गए हैं ? क्या मृणाल देवी भी इस बारे में जानती हैं । नहीं, नहीं, वे बड़े घर की बेटी, ऐसी बातों में न पड़ेगी । हो सकता है कि नरेन्द्र बाबू के नाम का फायदा उठाया जा रहा हो । क्यों कि पुलिस को मेरे और नरेन्द्र बाबू के बारे में पता चल गया होगा । हो सकता है जण्डेल की चिट्ठी के बारे में गाँव वालों को पता लग गया हो । और पुलिस वालों ने यह काण्ड बनाया हो । तब तो यह शादी पुलिस की देखरेख में होगी । नए डी० एस० पी० तो जब से आए हैं, मेरे पीछे पड़े हैं ।

अखबार की चिट्ठी में नरेन्द्र बाबू का नाम छपा है। क्या पता उन्हें उस बारे में मालूम भी न हो। और फिर जब उन्हें मालूम पड़ जाय कि गोमा से शादी के लिए मैं इतना अधीर हूँ, तो वे खुद ही कुछ प्रबन्ध कर देते। वे बहुत ऊँचे आदमी हैं। हो सकता है वे भी हों, पुलिस भी हो। हो सकता है मुठभेड़ हो जाय। उन्हें चोट आ जाय तो। नहीं-नहीं, यह नहीं होगा। नरेन्द्र और मृणाल ने तो मेरा हृदय जीत लिया है, उनका बाल भी बांका न हो, यह मैंने कसम खाई है।

तब फिर क्या किया जाए। उनसे मिल लिया जाय। पर इतना समय कहाँ है। किसी तरह उन्हें खबर दे दी जाय कि वे इसमें भाग न लें। यह काम कैसे हो। जण्डेल यह काम कर सकता है।

उसने जण्डेल को बुलाया। कहा—"देखो, एक काम करना होगा। तुम शहर जाओ। तुमने नरेन्द्र बाबू का कमरा देखा है?"

"सब ढूंढ लिया जावेगा····आप कहें तो····।"

"उन्हें खबर कर दी जाय कि वे इसमें रुचि न लें····।"

बीच ही में जण्डेल उठ खड़ा हुआ, बोला—"मैं समझ गया। सब हो जायगा।"

नाहर ने कहा—"ठहरो तो, मैं लिखे देता हूँ। उस कागज को खिड़की के रास्ते उनके कमरे में पहुँचा देना। ध्यान रखना जब वे अकेले हों तभी यह काम हो।'

जण्डेल चल दिया—"मैं लिख लूंगा। इतना तो पढ़ा हूँ। और फिर आप किसी तरह की फिक्र न करें। अच्छा मैं चला।"

"अकेले ही जाओगे?" नाहर ने पूछा।

"क्या आप को मुझ पर भरोसा नहीं है?" जण्डेल ने पूछा।

"पूरा-पूरा भरोसा है, जभी तो यह काम सौंपा है।" नाहर ने कहा।

"अच्छा तो विदा, जय गोपाल जी की।"

"जय गोपाल जी की, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।"

जण्डेल तेजी से चल दिया और शीघ्र ही भरकों में खो गया।

१३

रामवती को रूपवती की इतनी आजादी पसन्द न थी। क्योंकि वह पुराने विचारों की स्त्री थी। नाटक वाली घटना ने तो उसे और भी भीरु बना दिया था। वह तो सरीन साहब समय पर पहुँच गए, न जाने क्या होता। वह सरीन का हृदय से गुण-गान करती। उसे भली भाँति याद है कि किस प्रकार आधी रात को उसे जगाया और अपनी कार में अस्पताल पहुँचाया। देवता आदमी है वह। इतना बड़ा अफसर, और हृदय परोपकार से भरा हुआ। वह जानती थी कि वे जज साहब के यहां आते-जाते हैं। उसका मन हो रहा था कि वह भी उनको अपने घर बुलाएँ, उनका धन्यवाद दे। चाय-पान कराए। मगर उसकी हिम्मत ही न पड़ रही थी। आखिर उसने यह काम जजसाहब के नौकर के हाथों कराया। उसका हृदय उछल पड़ा, जब उसे मालूम हुआ कि सरीन जी ने उसका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। वे आँएगे। उसने इसके बारे में रूपा से कोई चर्चा न की।

सरीन स्वयं एक बार रूपा के घर जाना चाहता था। क्योंकि इन दिनों की व्यस्तताओं में वह अस्तपाल भी न जा पाया था। सोच रहा था कि रूपा क्या सोचती होगी। मुझे तो दोनों समय उस रूप की देवी के सामने हाजिर होना चाहिए। मैंने यह भी न पूछा कि वे अब कैसी हैं। उसकी आँखों में रूपा का वही पहली बार डिनर वाला रूप नाच रहा था। जब उसे घर चाय का निमंत्रण मिला तो वह हर्षातिरेक से मगन हो उठा। उसने समझा, जरूर यह रूपा का ही निमंत्रण है। उसने स्वीकृति दे दी।

नियति दिन वह बन-संवर कर अपनी कार में चला। स्वयं ही ड्राइव कर रहा था। आज उसका हृदय मस्ती में झूम रहा था। सोचा था कि जीवन

में मनचाहा साथी मिलेगा। इसीलिए उसने जज साहब से घनिष्ठता बढ़ानी आरम्भ की। जज साहब भी उससे प्रभावित थे। मगर मृणाल और उसके ग्रह ही न मिलते थे। मृणाल उस साधारण से व्यक्ति नरेन्द्र पर मर मिटी जा रही थी। नरेन्द्र और उसकी तुलना क्या? वह एक ऊँचा सरकारी अफसर है, और वह साधारण नागरिक। मगर वह मृणाल को क्या समझाए। वह सदा ही उसकी उपेक्षा करती आ रही थी। यह उपेक्षा उसे खलती थी। वह भी उपेक्षा कर सकता था। परन्तु उसे उचित अवसर न मिल रहा था।

डिनर के समय उसे रूपा, मृणाल से बीस ही लगी थी, और फिर नाटक के शृंगार में तो उसके रूप में चार चाँद ही लग गए थे। जिस समय वह उसे कार में ले जा रहा था, उसे लग रहा था कि वह जीवन की निधि पा गया है। वह चाहता था कि इस निधि को अपने हाथ से न जाने दे। मगर उसके हृदय ने कहा—"जल्दबाजी न करो"""। अपनी ऊँचाई से न गिरो।" और इसीलिए वह उस ओर से पहल की प्रतीक्षा कर रहा था।

उसने जाकर धीरे से दरवाजा थपथपाया। किवाड़ धीरे से खुले। सामने रूपा खड़ी थी। सरीन को देखते ही लजा गई, मुंह से केवल इतना निकला—"आप""? आइए न।" यह कह कर वह अन्दर चल दी। सरीन भी उसके पीछे चला। रूपा इस समय कितनी भली लग रही थी। सादा सफेद साड़ी में वह सौन्दर्य और निखर उठा था। पीछे से उसकी गठन और भी आकर्षक थी। क्या समानुपाती शरीर था।

"माँ! सरीन बाबू आए हैं।" रूपा ने जाकर कहा।

"आ गए""।" रामवती रसोई में से निकल कर बोली—"मैं तो इंतजार कर ही रही थी। उसने अन्दर से एक खाट निकाली। उस पर दरी बिछा दी, चादर बिछाई और कहा—"बैठिए! हमारे भाग जागे, जो आप पधारे""।"

"यह तो मेरा घर है""।" सरीन ने मुस्कराकर कहा। रूपा कमरे में चली गई। जब से सरीन ने रूपा की सहायता की थी, रूपा भी उसकी हृदय से आभारी थी। जिसमें आज तो वह बहुत भला लग रहा था। नीले सूट पर लाल टाई। रंग गेहूँआ, भरा-भरा रौबीला चेहरा। आँखों में मुस्कराहट। अन्दर ही अन्दर वह गुदगुदा रही थी। सोच रही थी, माँ ने इन को बुलाया, तो मुझे क्यों नहीं कहा। मैं भी कुछ ठीक हो लेती। वह दर्पण के सामने जा खड़ी हुई।

उसमें देखती रही, देखती रही। वह स्वयं को ही कितनी अच्छी लग रही थी? उसके कजरारे बड़े-बड़े नयन और अरुण कपोल कह रहे थे कि क्या ये दिन यों सूने ही बीत जाँएगे।

इतने में आँगन में से आवाज आई, "अरी ओ रूपा, यहाँ तो आ।"

वह बाहर निकली। देखा, माँ सरीन बाबू के सामने नाश्ता रख रही है। सरीन बोला—"मैं क्या अकेले खाता हूँ, माता ज।"

"तब फिर रूपा साथ देगी, आ रूपा! देख सरीन बाबू को चाय बना कर दे। यहाँ बैठ।" यह कह कर माँ भीतर चली गई।

रूपा बैठ गई। पलकें झुकाए चाय बनाने लगी। पूछा—"शकर कितनी लेंगे?"

कोई उत्तर नहीं मिला। पलकें उठाईं। सरीन उसी की ओर देख रहा था, मुस्करा कर बोला, "सिर्फ एक चम्मच····।"

रूपा ने शकर डाली। प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया। सरीन ने प्याला लेते हुए कहा—"आप भी लीजिए न।"

वह कुछ न बोली, दूसरा प्याला बनाने लगी। सरीन सिप करता रहा *नाश्ता उसकी ओर बढ़ा कर रूपा ने कहा—"यह भी लीजिए। और यह।"*

"हाँ! पर मैं अकेला ही?" सरीन ने पूछा।

रूपा ने एक टुकड़ा उठा लिया। सरीन का मन भर गया। वह चाय पीने लगा। . माँ अन्दर से निकल आई, बोली—"अरे आपने तो कुछ भी न खाया····।"

"नहीं, मैंने तो बहुत खाया है, अलबत्ता रूपा जी बैठी ही रही हैं।" वह बोला। रूपा मुस्करा गई। आंखें नीचीं कर लीं। सामने नीचे रामवती बैठ गई, बोली— "हम किस तरह आपका एहसान भूलें····।"

बीच ही में सरीन बोला—"आप शर्मिन्दा न करें माता जी, यह तो मेरा फर्ज था।"

"सब भगवान की दया है" रामवती ने कहा, "अरे मैं तो भूल ही गई थी कि मुझे मन्दिर भी जाना है।"

"ओह चलिये न, मैं आपको मन्दिर पहुंचा आऊं····।" सरीन ने कहा।

"नहीं, हम चली जाएंगी···।"

"वाह घर की कार है, तो आपको एतराज क्या है ?"

"एतराज तो कुछ भी नहीं" रामवती ने कहा—"अच्छी बात है, मैं अभी आई।

थोड़ी देर बाद पूजा का सामान लिए वह निकली, बोली—"चल रूपा।"

दोनों पीछे बैठीं। सरीन ड्राइव करने लगा। थोड़ी देर बाद मन्दिर आ गया। सरीन बोला—"आप पूजा कर लें। आप आज्ञा दें तो इतनी देर हम घूम आएं।"

"जैसी तुम्हारी मर्जी बेटा।" वह उतरी और मन्दिर में चली गईं। रूपा बैठी रही। सरीन ने कार बढ़ा दी। शहर से बाहर, दूर एक झरने के पास, उसने कार रोकी। रूपा ने उतरते हुए कहा—"हम कहां आ गए यहां ?"

"अपने मन्दिर में····" सरीन ने मुस्करा कर कहा।

"यह कैसा मन्दिर है····?" रूपा ने आंखें फाड़ कर पूछा।

"यहाँ प्रकृति का खुला मन्दिर है। देवी है, पुजारी है। क्या कमी है यहाँ ?" रूपा लज्जा गई। सरीन ने कहा, "आओ, चलें। उस झरने के पास····।"

रूपा कुछ न बोली। धीमें धीमें चल दी। झरने के पास पहुँच कर वह बोला—"मालूम है यह झरना क्या कह रहा है····?"

"क्या····?" रूपा ने पूछा।

"यह कि चुप नहीं रहना चाहिये, कुछ बातें करें।"

"····" रूपा फिर चुप रही। सरीन उसके बिल्कुल नजदीक आ गया, बोला, "आपको मेरा साथ भाता नहीं····तब फिर चलें।"

"नहीं तो····।"

"तब फिर क्या सोच रही हैं ?" सरीन ने पूछा।

"मैं सोच रही हूँ।" रूपा ने कहा—"सपने कितने मीठे होते हैं, पर वे पूरे नहीं होते।"

सरीन ने कहा—"देखिये ! यह नदिया है। समुद्र से मिल जाती है। दोनों में लगन हो, तो सपने कभी टूटते नहीं, पूरे होते है। फिर थोड़ी देर शांन्ति रही। सरीन ने पूछा—"मुझे मालूम नहीं, आप मेरे जीवन में क्यों आई ?"

"और यही मैं सोचती हूं'...."

"क्या....?"

"आप मेरे जीवन में क्यों आए....?"

"तुम्हें पाने के लिए....।" सरीन ने कहा। रूपा लज्जा गई। नदी के पानी से खेलने लगी। सरीन बोला—"आओ उठो, यों समय न खोओ। जीवन का आनन्द लें :"

रूपा बैठी रही। नदी की ओर इशारा करती हुई बोली—"मालूम है आपको, नदिया क्या कह रही है ?"

"क्या ....?" सरीन ने मुस्करा कर पूछा।

"कल....कल।"

"यह कल कल कब समाप्त होगी।"

"सागर तक पहुँचने पर....।"

सरीन कुछ कहता कि रूपा उठ खड़ी हुई, बोली—"चलें, बहुत देर हो गई।"

सरीन कुछ न बोला। चुप चल दिया। वह कार में आकर बैठ गई। सरीन ने कार शहर की ओर मोड़ दी। बिजली सी चमचमाती सड़कों पर तैरती कार दोनों को सपनों के हिंडोलों पर ले चली। दोनों शान्त विचारों में खो रहे थे। शायद एक ही गुत्थी सुलझा रहे हों। थोड़ी देर बाद कार मन्दिर के द्वार पर जा लगी। माँजी प्रतीक्षा कर रहीं थीं। उनको भी बिठाया। और घर की ओर मोड़ दी।

घर पहुँचने पर माँ-बेटी दोनों उतरीं। सरीन ने पूछा—"अच्छा चलूँ माता जी।"

"आओ बेटा! अभी बैठे हो कहाँ हो! मैंने तो बात भी नहीं की।"

सरीन भी बात करना चाहता था। रूपा ने कहा—"माँ! अब खाने का भी समय हो गया है।"

माँ ने कहा—"हाँ! चलो, अब तो खाना खाकर ही जाना।"

सरीन उठा और उनके साथ हो लिया।

अन्दर आने पर रूपा ने कहा—"लाओ माँ! मैं खाना बनाती हूँ। आप बैठें।"

रामवती भी बात करना चाहती थी। इसलिए सरीन को लेकर कमरे में चली गई। छोटा सा कमरा था। पूर्ण व्यवस्थित। थोड़ी बहुत चीजें थीं। वह भी करीने से सजी हुईं। बैठते हुए सरीन बोला—"आपके घर की सादगी और शोभा तो देखते ही बनती है।"

"हाँ बेटा" रामवती ने कहा, "छोटा सा घर है, गुजारा करते हैं।"

"आपका गुजारा कैसे होता है ?" सरीन ने पूछा।

"कोई सहारा नहीं। यही कुछ सिलाई कर लेती हूँ।"

"ओह !" वह बोला, "तब तो इनको आगे की पढ़ाई बन्द करनी पड़ी होगी।"

"हाँ! रूपा ने मेट्रिक तक प्राईवेट पास किया है। बड़ा अच्छा दिमाग है। कोई पढ़ाने वाला होता तो बहुत आगे बढ़ जाती····।"

"हाँ ! प्रतिभा तो उनके मुख पर झलकती है। वैसे वे गृह कार्य में पूर्ण कुशल हैं।"

"घर के काम में ही नहीं, सीना, पिरोना नाचना, गाना सभी में। नाच के शौक ने तो इसे उस दिन धोखा दिया ही था।····यह सब लायक है········ मगर।"

"आप····" सरीन ने हिम्मत कर कहा, "आप इनका विवाह क्यों नहीं कर देतीं।"

"विवाह !" वह हँसी, जैसे उसकी आत्मा रो उठी हो—"विवाह उसका हो चुका, सरीन बाबू ! और विधवा भी हो गई। अब तो जीवन को बोझ के समान ढकेल रही है।"

"विधवा ! तो क्या रूपा विधवा है ?"

"हाँ बेटा····" रामवती ने आह भरी।

थोड़ी देर कमरे में शांति रही। रामवती आँसू पोंछती रही। सरीन अन्दर ही अन्दर घुमड़ता रहा। एकाएक उठ खड़ा हुआ। बाहर से आवाज आई —"माता जी····भोजन तैयार है।"

रामवती ने कहा—"बैठो, बेटा ! मैं खाना लेकर आई।"

"नहीं····मैं चलूँगा····"सरीन ने चलते हुए कहा, "मुझे एक जरूरी काम है।"

"ठहरो तो.... मैंने कहा...." रामवती कहती रह गई कि सरीन देहलीज पार गया।

रूपा भी दौड़ आई। सरीन कार में बैठ चुका था। रूपा ने सजल नयनों से उसकी ओर देखा। सरीन ने स्टार्टर दबाया और कार बढ़ा दी।

माँ, बेटी दोनों किंकर्तव्यविमूढ़ सी, एक दूसरी को देखती रह गईं। एक ही प्रश्न था दोनों की आँखों में।

१४

नरेन्द्र ने आँखें खोलीं—"ओह तुम हो, इतने सवेरे।"

"हाँ चलना नहीं हैं क्या ? गाड़ी साढ़े छह बजे चली जाती है।"

"जाती है तो जाय जहन्नुम में। तुम तो खिड़कियाँ और दर्वाजे बन्द कर दो। ठण्डी हवा आ रही है।" नरेन्द्र ने कहा।

मृणाल ने सब बन्द कर दिए। नरेन्द्र ऊँघता सा बोला—"अभी तो धुंध छा रहा है। जाओ ! अन्दर चाय बनाओ ! फिर देखेंगे।"

"जो आज्ञा सरकार !" मृणाल मुस्कराई और अन्दर रसोई में चली गई।

नरेन्द्र नींद की खुमारी में पड़ा रहा। नींद तो उसकी टूट चुकी थी। पर सपनों का ताना-बाना बुन रहा था। सोच रहा था, मृणाल भी क्या जीवट की लड़की है। इतनी जल्दी तैयार हो आई। उसमें काम करने की सच्ची लगन है। और मस्तिष्क कितना उर्वर पाया है। गोमा के विवाह की सारी योजना इसी की है, नहीं तो वह बेचारी नियति के हाथ की कठपुतली मात्र रह जाती।

और फिर अब बाधा भी क्या है। भँवरसिंह वैसे ही चिन्ता करता था। हमने जगडेल को सूचना दे ही दी है, अखबार के द्वारा। अब नाहर भी इस पचड़े में शायद ही पड़े।

वह यह सोच ही रहा था कि उसकी खिड़की के काँच को फोड़ता हुआ एक पत्थर का टुकड़ा आया, और आवाज हुई 'भड़ाक'। नरेन्द्र एक साथ उठ बैठा, मृणाल फौरन भागी आई। "क्या है, क्या हुआ ?" यही प्रश्न दोनों के दिमाग

में घूम रहे थे। खिड़की खोलना चाहते थे, पर डर था कि खोलते ही कहीं फिर यही घटना न घटे। आखिर नरेन्द्र ने साहस करके किवाड़ खोले। चारों तरफ देखा, कोई न था। वे फिर कमरे में आ गए। इधर-उधर देखा। दूर कोने में पत्थर का टुकड़ा पड़ा था। उठाया, देखा। उसके चारों ओर एक कागज बंधा था। उत्सुकता से कागज खोला। उसमें लिखा था

नरेन्द्र जी,

गोमा के विवाह के बीच में आप न पड़ें। नहीं तो ठीक न होगा। इशारा काफी है।

नाहर

मृणाल ने भी पढ़ा। विचलित होकर बोली—"अब····?"

नरेन्द्र कुछ देर सोचता रहा। फिर मुस्कराकर बोला—"अब क्या? कोई फिक्र की बात नहीं।····मगर इस पत्र से स्पष्ट होता है कि वे लोग गोमा के लिए पूर्ण कटिबद्ध हैं।"

मृणाल ने कहा—"और हमने उनको वचन दे रखा है।"

नरेन्द्र बोला—"हम, अपने वचन का पालन करेंगे। तुम चिन्ता न करो। सब ठीक हो जायगा।"

मृणाल आश्वस्त हो गई। नरेन्द्र बोला—"अच्छा! जब तक तुम चाय बनाओ, मैं अभी आया।"

"क्या सरीन के पास जा रहे हो?"

"नहीं····अगर पुलिस की मदद ली तो बात ही क्या रही" उसने मुस्कराकर कहा और साइकिल उठाई और सपाटे से चला गया।

थोड़ी देर बाद लौट कर आया, "चलो मृणाल! गाड़ी तैयार है। मैं टिकट ले आया।"

"चाय बन गई है, पीते चलें।" मृणाल ने कहा।

"नहीं····पड़ी रहने दो। बस स्टेण्ड पर ही पी लेंगे।" उसने कहा।

जिस समय वे सड़क पर उतरे, दोपहर हो चुकी थी। उन्हें लेने के लिए भँवरसिंह खुद आए थे। प्रोग्राम इस तरह था कि चार बजे के लगभग वहीं से बरात सजेगी और छह बजे सन्तपुरा पहुँच जाएगी। नरेन्द्र ने कहा—"अभी क्यों न चलें। बरात गाँव में जाकर सज लेगी।"

सब सहमत हो गए। गाड़ियों में बैल जोत दिए गए, और उसी धूप में बढी। नरेन्द्र सोच रहा था कि एक एक क्षण मूल्यवान है, कोई भी क्षण कोई घटना हो सकती है। मृणाल के मुख पर घबराहट थी, जैसे किसी बड़े संकटकाल में से गुजर रही हो। और भँवरसिंह के चेहरे पर बेफिक्री थी, जैसे उसके लिए यह कोई नई बात न हो। गाँव वाले मूक, न जाने क्या हो, बढ़े जा रहे थे। उन्हें इस विषय में कुछ पता न था। वे तो चाहते थे कि मास्टरजी की बरात धूम से निकले।

बीच में एक जगह पड़ाव किया। नदी में से बैलों को पानी पिलाया और लोगों ने जलपान किया। और फिर उत्साह से आगे बढ़े। शाम तक गाँव पहुँचे। गाँव में उत्साह सा छा गया। हरेक के चेहरे पर उदासी थी, जो नरेन्द्र के पहुँचने पर मुस्कराहट में बदल गई। ठाकुर की राय थी की पुलिस बुला ली जावे। मगर नरेन्द्र का कहना था कि अगर गोली चली और जगडेल को लगी तो। ठाकुर ने कलेजे पर हाथ धर लिया। बोल न फूटा।

नरेन्द्र को बताया गया कि आज रात को पाणिग्रहण है। कल बढ़ार परसों विदा। नरेन्द्र ने कहा—'इतना समय नहीं है मेरे पास। आज रात में ही जो करना हो करो। सुबह विदा हो जानी चाहिए। मृणाल भी यही चाहती थी। जैसा सब कहें, ठाकुर वैसे तैयार थे। गाँव वाले सोचते यह कैसा ब्याह है। न आतिशबाजी, न खान-पान।

शाम को बरात चढ़ी। बरात में यही मास्टर लोग, अन्य साथी। नरेन्द्र और एक दो रिश्तेदार थे। दर्वाजे पर बरात पहुँची। काँपते हाथों से गोमा ने मास्टर जी के माला डाली। ठाकुर के आँसू आ गए। आज जगडेल होता तो....?

आधी रात तक फेरे पड़ते रहे। बाद में पलंग हुआ। सब लोग सारी रात जागते रहे। सुबह तड़के विदा हुई। गोमा विलख रही थी और ठाकुर से लिपट कर पछाड़ खा रही थी। ठाकुर अन्दर ले गए। उसे समझाया। फिर लाज में लिपटी, घूँघट में सिमटी, रोती सिसकती दुल्हन को ले आए। बाहर डोली खड़ी थी। उसमें बिठाया। दुल्हन ने हाथ जोड़े। ठाकुर ने आशीर्वाद दिया।

नरेन्द्र ने भँवरसिंह से कहा, "मुझे तुम से एक बात करनी है। अन्दर चलो।" दोनों अन्दर गए। अन्दर से दुल्हा सेहरा लगाए आया। घोड़ी पर सवार

हुआ। ठाकुर ने पैर छुए। दूल्हे ने कहा—"अच्छा चलता हूँ। आशीर्वाद दो। भगवान् हमारी रक्षा करें।"

सब रोते रहे। बरात विदा हुई। डोली उठी। बाजे बजे। और सुबह के झुटपुटे में आगे बढ़ी। रास्ता दस मील का था और गर्मी का समय। इसलिए जल्दी जल्दी चल रहे थे। रास्ते का नदी वाला क्षेत्र भयानक था। अतः उसे पार कर लेने की धुन थी। बाजे बन्द हो चुके थे और एक ढोल ढिप ढिप कर रहा था। सामने और पीछे मशाल जल रही थी कि जंगली जानवर इधर न आ जाँए।

इरादा यही था कि सुबह होते होते सड़क पर पहुँच जाँए। इसलिए सब साँस साधे बढ़ रहे थे। कहार लोग तेज कदम बढ़ा रहे थे और पसीना पोंछते जा रहे थे। घोड़े, घोड़ियाँ हिनहिनाना बन्द कर तेज कदमों से बढ़ रही थीं। डोली इधर-उधर झूम रही थी और अन्दर से जब तब रोने की आवाज आ जाती थी।

भरके आरम्भ हुए। लोग आगे बढ़े। दुल्हे की घोड़ी ने उछाल खाई। सबने सुना धाँय, धाँय, धाँय। हवाई फायर। सब लोग स्तब्ध खड़े रह गए। जिस बात की आशंका थी, वही हुई। चारों ओर से बरात को घेर लिया गया। हुक्म हुआ—"दूल्हे की मुश्के बाँध लो और दुल्हन को ले चलो।"

दूल्हा घोड़ी पर से उतार लिया गया। सब लोग सहम गए। सब ने जेब में हाथ डाला, मगर दूल्हे ने शान्त रहने का इशारा किया। सब साँस रोके खड़े रहे। नाहर ने मशलची के हाथ से मशाल ले ली। जराडेल तेजी से बढ़ा और डोली के पास पहुँचा। कड़क कर बोला—"डोली को रख दो। और यहाँ से हट जाओ। नहीं तो गोली से उड़ा दूँगा।"

डोली रख दी गई। लोग दूर हट गए। जराडेल बढ़ा, बोला "गोमा! देख मैं आ गया हूँ, तुझे लेने के लिए।"

अन्दर से सिसकी सुनाई पड़ी। जराडेल ने बन्दूक से पर्दे को हटाया, चिल्लाकर कहा—"सरदार! ले देख लो अपनी दुल्हन को।"

नाहर आ चुका था, उसके हाथ में मशाल थी। उसने देखा दुल्हन कीमती जेवरों में सजी गुड़िया सी बैठी है। घुटनों तक घूँघट है। जराडेल ने बन्दूक की

नोक से घूँघट को उलट दिया। दुल्हन ने दोनों हाथों से मुँह ढँक लिया और फफक फफक कर रोने लगी।

नाहर ने देखा, सोने सी देह सोने से जड़ दी गई है। हार, जड़ाऊ कंगन, सभी कुछ था। और सबसे ऊपर दुल्हन। ऐसा रूप उसने नहीं देखा था। क्या पतली छरहरी गोरी दुल्हन, व छोटे छोटे हाथों से मुँह ढंके बैठी थी। जण्डेल ने कहा—"गोमा, देखो! अपने भाई को देखो, मैं जण्डेल खड़ा हूँ।"

वह रोती रही। जण्डेल ने बढ़ कर उसके मुँह पर से हाथ उठा लिए और एक साथ पीछे हट गया। नाहर ने मशाल की रोशनी में देखा और एक साथ मुँह में से निकला—"तुम····तुम····मृणाल देवी"

"हाँ मृणाल!" मृणाल मुस्कराकर बोली, "जण्डेल की ही नहीं, तुम्हारी भी बहन। चलो कहाँ ले चलते हो मुझे।"

जण्डेल गरजा, "सरदार! हमारे साथ धोखा हुआ है। चलें इन सबको भून डालें।"

मृणाल ने डोली में से निकल कर कहा—"शाबाश! यह ठीक है। भून कर इनका गोश्त बनाना। बड़ा मीठा लगेगा।"

नाहर ने नीची गरदन किए कहा—"नहीं जण्डेल! तुम नहीं जानते, ये कौन हैं····। अब····मैं इनसे क्या कहूँ····। अगर नरेन्द्र भैया होते तो मैं कहता····?"

बीच में मृणाल बोली—"नरेन्द्र वे रस्सी से बँधे पड़े है। मिल लो।"

"हैं यह क्या?" नाहर ने कहा—"खोलो जल्दी से।" और खुद दौड़ पड़ा—"भैया! तुमने मुझे इस तरह नीचा किया।" और अपने हाथ से गाँठे खोलने लगा।

जण्डेल कुछ समझ नहीं पा रहा था कि यह क्या हो रहा है। नाहर बोला—"भैया! तुम्हें मेरा ब्याह नहीं भाया। मुझ से कह देते।"

मृणाल बोली—"नाहर! विवाह संभ्रान्त नागरिक का होता है। एक अबोध लड़की को हर समय विधवा बनाए भटकने को विवाह नहीं कहते। क्या तुम गोमा की जिन्दगी से नहीं खेल रहे थे?"

"मैं तो मना कर रहा था" नाहर ने कहा, 'डाकुओं के कहीं ब्याह होते हैं? मगर यह जण्डेल नहीं माना। चलो अच्छा हुआ, आपने मुझे बचा लिया।"

जराडेल ने कहा–"यह अच्छा नहीं हुआ। गोमा कहाँ है ?"

"गाँव में...." मृणाल ने कहा।

"गाँव में.... ? तो क्या ब्याह नहीं हुआ।"

'बिवाह हो गया.... ।"

"किसके साथ ?"

"हैडमास्टर भँवरसिंह के साथ। वह भी वहीं हैं।"

"ओह....मास्टरजी से....गोमा के भाग जाग गए।" जण्डेल बोला– "मास्टर जी! आपने एक बार इस घर की डूबती नैया को फिर हाथ लगाया। ....चलो सरदार! अब यहाँ करने-कहने को कुछ नहीं रह गया है।"

"मगर आपने खतरा क्यों मोल लिया नरेन्द्र बाबू!" नाहर ने कहा, "अगर हम अन्धाधुन्ध ही गोली चला देते।"

"देखो, आओ....इनसे मिलो। ये हैं रत्ना, ये रामाकान्त, यह लतीफ, यह शर्मा....और इन सबकी जेब में एक एक पिस्तौल है जब तुम दुल्हन को जबर-दस्ती उठाते, तो ये तुम्हारी पीठ और छाती को छलनी करतीं।"

"मुझे माफ कर दो भैया! और आप भी मृणाल देवी......." नाहर रो पड़ा।

मृणाल उठी। नाहर के आँसू पोंछती हुई बोली–"तुम वचन भूल गए थे नाहर! किसी लड़की की ओर तुम्हारी निगाहें नहीं उठनी चाहिए। अब जाओ जल्दी से लौट जाओ....। बोलो अगर आज गोली चलती तो कितने निरपराधों का खून होता.... । ....एक बड़ा अनर्थ बच गया। यह भगवान की दया है नाहर! उसको धन्यवाद दो। और तुम भी जण्डेल! तुम्हारी बहन गोमा....मास्टर जी के साथ सुखी है। बोलो तुम लोग, एक ब्याहता का सुहाग छीनने आए थे, इन गोलियों से।'

नाहर विलख उठा, बोला–"मैं भैया के चरणों की कसम खा कर प्रण करता हूँ कि अब मैं बन्दूक हाथ में न लूँगा, गोली न चलाऊँगा।"

"सरदार...." जराडेल के मुँह से आवाज निकली।

"चलो जराडेल! अपना काला मुँह जंगलों में जाकर छिपा लें, अच्छा परनाम।"

दोनों गरदन झुकाए, एक ओर को चले गए, आज्ञाकारी बेटों की तरह। सबकी आँखों में आँसू थे और ओठों पर मुस्कराहट।

—×—

१५

जिस दिन से सरीन रूपा के यहाँ से होकर आया था, उसका हृदय और मस्तिष्क विक्षिप्त सा हो रहा था। उसे बार बार अपने पर, आसपास पर और इस दुनिया पर झुँझलाहट पैदा हो रही थी। वह जहाँ भी आगे बढ़ता उसे असफलता ही दिखाई पड़ती। उसने मृणाल को लेकर सपने संजोए थे। वह बोस का कृपा पात्र भी था, मगर मृणाल का हृदय जीतने में वह असमर्थ था। उससे हट कर उसका अटकता मन रूपा की रूपछटा पर आकर टिक गया। मगर वहाँ भी वह स्थिर न रह सका। घूम फिर कर वह फिर मृणाल के बारे में सोचने लगा। मृणाल एक कर्मठ युवती थी। कर्म में विश्वास करती थी। उसने सोचा, अगर कुछ दिनों जम कर कार्य किया जाय तो हो सकता है कि प्रभावित हो जाय।

इधर इन दिनों उसका ध्यान इन्हीं उलझनों में उलझा रहा। अब तक अपने आफिस का काम भी न देख पाया। बहुत दिनों बाद वह आफिस पहुँचा तो जैसे एक युग बदल गया हो। इस बीच अनेक घटनाएँ घट चुकी थीं। कई स्थानों पर डाके पड़ चुके थे, और सही रोकथाम नहीं हो पाई थी। अब आया तो एक साथ बोझ उसके कन्धों पर आ गया। वह सोचने लगा। क्या करे वह। इन सबसे जूझने के लिए वह अकेला है, सिर्फ अकेला वह। इधर नाहर व जगडेल की गतिविधियाँ बढ़ती जा रही थीं। उसने इधर-उधर बहुत सी अफवाहें सुनी थीं, मगर प्रामाणिक सबूत के बिना वह कोई कदम नहीं उठाना चाहता था।

शाम को वह बंगले की ओर जाने को तैयार ही था कि एक थानेदार आ पहुँचा और पाँच मिनट के समय माँगने की प्रार्थना की। सरीन वैसे इतने लेट आने वालों से मिलने का आदी न था। मगर वह थानेदार डाकू ग्रस्त इलाके

से आ रहा था । अतः उसे सुन लेना ही ठीक रहेगा । यह सोच कर वह रुक गया ।

"कहो इकबाल बहादुर ! क्या हाल हैं, तुम्हारे क्षेत्र के ।"

"सब सरकार की दया है । वह आपके दोस्त.... ।"

"कौन नरेन्द्र ! क्या किया उन्होंने ?"

"वे सब अपने आप कर लेते हैं । किसी दिन हम को तो हथकड़ी डलवा देंगे ।"

"क्यों क्या बात हुई !" सरीन ने पूछा ।

इकबाल बहादुर बोला—"होगा क्या ? नाहर के पकड़ने का अच्छा मौका था, मगर उन्होंने उसे साफ बचा दिया ?"

"क्या कह रहे हो तुम ?"

"मैं ठीक कह रहा हूं, सरकार।"

"साफ साफ कहो, क्या बात है ?"

"सरकार ! आपको यह तो पता ही होगा कि सन्तपुरा का जण्डेल फरार हो गया है । वह अपनी बहन को नाहर से ब्याहना चाहता था । मगर नरेन्द्र बाबू बीच में पड़ गए और विवाह भँवरसिंह के साथ करा दिया.... ।"

"यह तो अच्छा किया ।" सरीन बोला ।

"आगे सुनिए सरकार ! जण्डेल और नाहर दुलहन को लूटने सन्तपुरा के पास पड़ाव डाले हुए थे । हमने भी घेरा डाल दिया । इतने में बरात लौटी । डाकुओं ने लूटना चाहा । मगर वहाँ नरेन्द्र बाबू मौजूद थे । इसलिए वे वापस लौट गए ।"

"तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"यही हजूर ! अगर नरेन्द्र बाबू न होते तो हम लोग गोली चलाते । मगर हमने गोली न चलाई, क्योंकि नरेन्द्र बाबू के साथ मृणाल और उनके साथी थे ।"

"ओह....मगर तुम घेरा आगे बढ़ा सकते थे.... ।"

"डाकू और नरेन्द्र बाबू दोनों ही तैयार थे । जरा सा पत्ता हिलते ही लोग गोली चलाते । नरेन्द्र बाबू के साथियों के पास एक एक पिस्तोल थी अगर वे लोग वहाँ न होते, बड़ी आसानी से हम नाहर को पकड़ लेते ।"

"तुम ने अक्लमन्दी से काम नहीं लिया, जाओ यहाँ से।"

वह चला गया। उसने मोटर साइकिल उठाई और दौड़ पड़ा। वह सोचने लगा। यह नरेन्द्र सदा ही मेरे रास्ते में आता है। अब तक मेरी जिन्दगी से खेल रहा था, अब मेरी नौकरी से भी खिलवाड़ कर रहा है। कानून सब अपने हाथ में ही ले लिया है। मैं कहता हूँ, क्या चाहता है यह। वह तो मेरा सहपाठी रहा है, नहीं तो अब तक बन्द कर देता। डाकुओं से साँठगाँठ करना कोई मामूली बात है। इसीलिए तो लोगों की हिम्मत बढ़ती जा रही है। फिर हमें कौन पूछेगा ?

सरीन ने एक साथ कमरे की किवाड़ों को धक्का दिया और सीधा अन्दर जा धमका। हाथ में पिस्तोल लिए कड़क कर वह बोला—"नरेन्द्र····।"

नरेन्द्र एक साथ उठ खड़ा हुआ, बोला--"अरे सरीन····आओ····बैठो न।'

"मैं आज बैठने नहीं आया हूँ····।" सरीन ने गम्भीर होकर कहा।

"तब क्या मुझे गिरफ्तार करने आए हो ?" नरेन्द्र ने हंस कर पूछा।

'हाँ ! अगली बार आऊँगा तो गिरफ्तार करने ही····।" सरीन ने कहा—"अभी तो दो बातें करने आया हूँ।"

"हाँ ! हाँ ! कहो न क्या बात है।"

"देखो नरेन्द्र ! साफ बात है ! तुम हमारे रास्ते में न आओ। नहीं तो मुझे अपना फर्ज पूरा करना होगा। दोस्ती फर्ज के आड़े नहीं आएगी।"

"मै कब चाहता हूँ कि मैं दोस्ती का फायदा उठाऊँ····।" नरेन्द्र ने कहा, "और फिर मेरी तुम्हारी टक्कर ही क्या ? मेरा दूसरा क्षेत्र है तुम्हारा दूसरा क्षेत्र।"

"तुम मेरे क्षेत्र में दखल दे रहे हो····दूसरे शब्दों में तुम कानून को खुली चुनौती दे रहे हो।"

"तुम क्या कह रहे हो सरीन !"

"मैं ठीक कह रहा हूँ ! क्या तुम इस बात से इंकार करते हो कि तुम्हारी और नाहर की गतिविधियाँ नहीं बढ़ती जा रही हैं ? पुलिस उसे पकड़ना चाहती है और तुम दोस्ती निबाहते जा रहे हो।"

"क्या दोस्ती निभाई मैंने, मालूम तो हो। मैंने क्या दे दिया नाहर को····।"

सरीन ने धीमे से पूछा—"एक एक कर गिनाऊँ ?"

"हाँ ! कहो न···मुझे डर क्या है ?"

"तुम उसके गैंग में गए थे।"

"वह मुझे उठा ले गया था....।"

"मृणाल की वर्षगाँठ पर बच्चा भेंट करने कौन आया था, नाहर ही था ?"

"हाँ·········।"

"और एक बार तुम्हारे कमरे पर वह पठान····।"

"हाँ वह पठान था।"

"नाहर नहीं था, उसने रुपए देने का वादा नहीं किया था, और फिर उस ड्रापे में किसने गुप्त दान किया था····?"

"मुझे क्या मालूम····।"

"सब मालूम है तुम्हें····वह नाहर था। और फिर नाहर और जगडेल के बराबर खत तुम्हें मिल रहे हैं····क्यों है ना ?"

"उससे तुम्हें मतलब ?"

"पुलिस को हर बात से मतलब है, इस बात से भी कि बिना सूचना दिए सन्तपुरा प्रबन्ध करने क्यों गए ? और फिर नाहर से भेंट हुई थी, उसकी रिपोर्ट यहाँ आने पर क्यों नहीं की ? डाकुओं से मिले होने के अपराध में तुम्हें गिरफ्तार किया जा सकता है।"

"तब मन की कर लो सरीन !" नरेन्द्र ने कहा, "तुमने मुझे अगर इसी तरह पहचाना है, तो मुझे मंजूर है। मैं तो हरेक काम को सहूलियत से करने का आदी हूँ। खून-खराबा मुझे पसन्द नहीं। यह तुम्हारा ख्याल ही है कि मैं तुम्हारे काम में रोड़े अटकाता हूँ। अगर तुम समझने की कोशिश करो तो तुम्हें मालूम होगा कि मैं तो तुम्हारी मदद करता रहा हूँ।"

"मुझे नहीं चाहिए ऐसी मदद।"

"तब फिर मैं कोई मदद न करूँगा।" नरेन्द्र ने कहा।

"नहीं····"सरीन ने गम्भीर होकर कहा।"

"तब फिर क्या चाहते हो तुम····।"

"मैं चाहता हूँ····तुम मेरे रास्ते से हट जाओ। यह मेरा क्षेत्र है। यह

काम मुझे सौंपा गया है। तुम्हारे यहाँ रहने से डाकुओं को बढ़ावा मिल रहा है....।"

"यह तुम कह रहे हो सरीन...." नरेन्द्र ने कहा, "क्या तुम चाहते हो कि मैं यहाँ से....।"

बीच में ही सरीन बोला—"दूर....बहुत दूर....बहुत दूर....।"

"बहुत दूर चला जाऊँगा सरीन" नरेन्द्र ने कहा, "तुम बेफिक्र रहो। ऐसा दूर, जहाँ से मेरी खबर भी तुम्हें न मिले। बस! और कुछ चाहते हो?"

"कुछ नहीं....अच्छा चलूँ! मुझे दुबारा न आना पड़े।" सरीन ने कहा और एक साथ बाहर हो गया।

नरेन्द्र खड़ा आँसू पोंछता रहा।

तीन पत्र

(१)

श्री मंत्री महोदय,
युवक सेवक समाज,
केन्द्रीय कार्यालय, दिल्ली

आदरणीय !

यह मेरा निजी पत्र है। गम्भीर परिस्थितियों ने मुझे विवश किया है कि मैं आपको पत्र लिखूँ। आशा है आप सही मार्ग-दर्शन करेंगे।

नरेन्द्र बाबू, स्थानीय युवक सेवक समाज के मंत्री, के विषय में तो आप जानते ही हैं कि वे अहिंसक क्रान्ति के पोषक हैं। उस क्रान्ति में उन्होंने कदम इतने आगे बढ़ा दिए हैं कि उनका पीछे हटना असम्भव है।

जाने या अनजाने इस क्षेत्र का एक डाकू दल उनके सम्पर्क में आ रहा है, उस पर उनका प्रभाव भी यथेष्ट पड़ा है, किन्तु पुलिस को यह पसन्द नहीं वे पुलिस और डाकुओं के बीच उलझ गए हैं। किसी भी समय वे दोनों का विश्वास खो सकते हैं और कोई अनिष्ट हो सकता है। अतः मेरा निवेदन है कि आप उन्हें संभाल लें।

मैं इस विषय में खुद उनसे चर्चा करती, मगर वे अपने सिद्धान्तों के पक्के हैं और हठी भी। निश्चय ही मुझे निराशा हाथ लगती। वे अनुशासन के हामी हैं। आपकी आज्ञा न टालेंगे।

आशा है आप इस ओर तुरन्त ध्यान देकर कोई उचित कदम उठाँएगे, जिससे शासन और कार्यकर्ताओं के बीच जो खाई आ गई है, उसका विस्तार न हो, और किसी का अहित भी न हो।

धन्यवाद !

भवदीया
मृणाल बोस-अध्यक्षा
क्षेत्रीय युवक सेवक समाज, ग्वालियर

पुनश्च:—यदि आप अन्य कोई आधार लेकर नरेन्द्र बाबू को कुछ दिन के लिए ग्वालियर से दूर, जहाँ पुलिस और डाकू उनकी छाँह न पा सकें, भेजने के लिए प्रेरित कर सकें तो उत्तम रहेगा। स्थानीय कार्यालय की चिन्ता न करें। मैं रहूँगी, और भी कई कर्मठ कार्य कर्त्ता हैं।

---

(२)

प्रिय श्री नरेन्द्रजी,

आशा है आप सकुशल होंगे। इधर कुछ दिनों से ग्वालियर युवक सेवक समाज की प्रगति के बारे में आपकी ओर से कोई सूचना नहीं मिली। वैसे आप के कर्मठ हाथों में यह संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करेगी, यह निश्चय है।

आप जैसे गम्भीर, सहिष्णु और सच्चे कार्यकर्ताओं की देश को आज बड़ी आवश्यकता है। आपका महत्व क्षेत्रीय स्तर से उठ कर व्यापक हो गया है। केन्द्र में भी ऐसे ही योग्य संगठनकर्ता का अभाव है। किन्तु हमें अभी अन्य क्षेत्रों का विकास करना है, जहाँ की पिछड़ी, भूली बिसरी जनता, आजादी के मीठे फल का स्वाद चख सके।

बस्तर से निरन्तर माँग आ रही हैं कि जन-जाति कल्याण के लिए उन्हें योग्य नेता की आवश्यकता है। यह क्षेत्र आदिवासियों का है व गोंड और भीलों का कार्यक्षेत्र है। अतः ऐसी जगह अनुभवी व्यक्ति की आवश्यकता है। ऐसे स्थान के लिए समिति ने आपका नाम प्रस्तावित किया है। आशा है आप स्वीकार करेंगे।

मुझे निश्चय है कि आप इस नए उत्तरदायित्व को शीघ्र संभालने का

प्रयास करेंगे, साथ ही इस कार्यालय को आपके प्रस्थान की सूचना दें ताकि वहाँ की उचित व्यवस्था की जा सके।

और लिखिए कि बस्तर क्षेत्र में आपके सहयोग के लिए किन्हीं विशेष कार्यकर्ता की आवश्यकता हो तो उन्हें यथोचित निर्देशित किया जा सके।

कृपा भाव बनाए रखें, उत्तर से सूचित करें।

भवदीय
श्याम मनोहर दीक्षित
मंत्री, केन्द्रीय युवक सेवक समाज, दिल्ली

---

(३)

आदरणीय श्री मंत्री जी,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद! आपने जो प्रस्ताव रखा है, उसका मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। आपका यह प्रस्ताव मेरे प्यासे हृदय को प्रथम बौछार-जैसा लगा।

मैं भी यहाँ से चला जाना चाहता हूँ। दूर, दूर, बहुत दूर। जहाँ कोई परिचित न हो। किसी को मेरी खबर न मिले। सच पूछिये तो इस क्षेत्र में कुछ थक भी गया हूँ। यह विश्राम मुझे जीवन प्रदान करेगा।

जो क्षेत्र आपने मुझे दिया है, वह मेरे अनुकूल है, क्योंकि मेरी शोध का विषय भी इन्हीं लोगों पर आधारित है। उनकी सभ्यता-संस्कृति के साथ साथ उनका साहित्य निकट से देखने का अवसर मिलेगा। उनसे प्रेरणा प्राप्त कर मैं कुछ सृजन कर सका तो अपने को धन्य समझूँगा।

अपने कार्य के साथ यदि मैं उनके उत्थान के लिए कुछ कर सका तो मुझे खुशी होगी। निश्चय ही मैं उन्हें अपनी प्राप्त आजादी के मधुर फल का स्वाद चखाने का प्रयत्न करूँगा। यह मेरे जीवन की दूसरी परीक्षा होगी, देखूं मैं उसमें सफल होता हूँ या नहीं।

इस क्षेत्र की ओर से मैं आश्वस्त हूँ। और फिर नया रक्त आगे बढ़ना चाहिए। मैं इसका पूर्ण पक्षपाती हूँ।

मैं शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान कर रहा हूँ, दिनाँक से यथासमय सूचित करूँगा।

भवदीय,
नरेन्द्र

नदी के भरकों में क्या हुआ ? अनिष्ट होते होते बच गया । यह खबर जब सन्तपुरा पहुंची तो सब साँस बाँधे उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । सुनते ही सब उछल पड़े । कल से हो रही घटनाओं का रहस्य अब जान पड़ा । पूरे गाँव में हर्ष की लहर छा गई । बाजे बजने लगे । बच्चों को मिठाई बाँटी गई । अध्यापक लोगों में प्रसन्नता की सीमा न थी । सारे गाँव को सजाने में लग गए । ठाकुर का मकान जगमगाने लगा । ऊपर की अटारी तो सुगन्धित फूलों की मालाओं से पाट दी गई । ठीक बीच में एक सुन्दर पलंग, मखमली गलीचे, तकियों से सज्जित, इत्र में भीना हुआ । चारों ओर गुलाब, चमेली और चम्पा की कलियों की बन्दनवारों से सजाया गया ।

शाम घनी होती गई । भँवरसिंह सबसे गले मिलते रहे । एक पहर गए वे अन्दर गए । गए क्या साथियों ने अन्दर ठेला । उनमें से एक ने तो उन्हें जीने तक पहुँचा दिया । हाथों में सुगन्धित गजरे लिए उन्होंने अटारी में प्रवेश किया । सुगन्धि से जैसे वे नहा गए । चारों ओर मुस्करा कर उन्होंने देखा । दूर कोने में एक फूलों की ढेरी दिखाई दी । वे आगे बढ़े और उस ढेरी को टटोला । घुटनों तक घूँघट लिए गठरी बनी गोमा थी यह । मास्टरजी का हृदय गुदगुदा उठा । उस लचकती हुई लता जैसी गोमा को उन्होंने उठा लिया और अपनी पूरी बाँहों में भर लिया । वह सिमट कर नीचे गिर पड़ना चाहती कि मास्टर जी ने उसे अपनी गोद में उठा लिया । अब गोमा क्या करे । मास्टरजी उसे पलंग पर ले आये और तकियों पर लुढ़का दिया । वह एक साथ उठी फिर गठरी बन गई । भँवरसिंह मुस्कराए । पास बैठ कर, धीरे धीरे उसका घूँघट उठाया । उसने दोनों हाथों से मुँह ढाँप रखा था । भंवरसिंह ने दोनों कोमल हाथ अपने

बाँए हाथ में ले लिए, दाँए हाथ से उसका मुखड़ा उठाया। गैस के उज्जवल प्रकाश में पूर्ण चन्द्र सा वह मुखड़ा दमक उठा। भँवरसिंह के मुख से निकला—"ओह···यह अनुपम सौन्दर्य।"

गोमा लजा गई। उन्होंने उसकी चिबुक उठाई और उसके कोमल रक्ताभ पतले अधरों पर अपने चिरपिपासित अधर रख दिये, बोले—"ओह कितनी मादक मधुरता है इनमें। ओह गोमा···तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गया।"

उन्होंने देखा गोमा की सींप सी आँखों से दो बड़े बड़े मोती ढुलक आए। भँवरसिंह ने अपने प्यासे अधरों से उन्हें पी लिया, बोले—"आज जीवन की इस मधुर घड़ी में यह क्या गोमा···ये आँसू क्यों?"

"····"गोमा चुप रही। रोती रही।

"क्या मुझे कुछ भी न बताओगी···बोलो तो गोमा···मेरी रानी···कितनी तपस्या के बाद तो मैंने तुम्हें पाया है···और और···।"

"·······"गोमा सिसकती रही।

गोमा सोच रही थी। हाय! यह क्या हो गया। मैं किस लायक थी, कहाँ पहुँच गई। मास्टर जैसे देवता के चरणों में कोई भाग्यशाली फूल ही चढ़ाने को होता, कोई ऊँचा फल होता। वह कहाँ उनके लायक है। वह तो गिरी हुई है, मिट्टी से भी गई-बीती। उसे ऐसे महान आदमी को पाने का हक क्या है। पर वह क्या करे। वह तो चुप ही रही है, न कुछ बोली ही, न कुछ कहा ही। घटनाएँ, एक के बाद एक बनती गई हैं और मास्टरजी उसके और अधिक नजदीक आते गए हैं, अनजाने ही, अनायास ही। और एक दिन जरूरी हो गया कि मास्टरजी उस मिट्टी को गले लगा लें। वह क्या करे, उसके पूर्व जन्म का कोई फल ही होगा। इस जन्म में तो उसने काला मुँह ही किया है। अपना घर बरबाद किया है, मास्टर जी, नरेन्द्र और मृणाल सब को मुसीबत में डाला है। उसका विवाह क्या हुआ, गोली, बन्दूक, कारतूस, पिस्तौल के बीच वह नाची है। और उस देवता ने अपनी जान की बाजी लगाकर उसे ब्याहा है। जिसे कोई नहीं ब्याहता, जिसे डाकू उठा ले जाता, जो जंगलों में भटकती, वही आज सेज पर बैठी है, रानी बनी। क्या इस लायक है वह।

"तुम बताओ न गोमा···मेरी अच्छी गोमा···तुम्हें मेरी कसम।"

हाय ! मास्टरजी की कसम, मेरे सुहाग की कसम । अब मैं क्या बताऊँ मैं क्या हूँ । बस अब कुछ नहीं । अपनी छाती फाड़कर दिखा दूँ—"देख लो मेरे देवता, इसमें एक छोटा मन्दिर है, उसमें तुम्हारी मूर्ति है, उसी की मैं पूजा करती हूँ ।"

"पर यह मन्दिर···हाय यह···अपवित्र है, इसे किसी ने कालिख लगाई है । यह कालिख भी देख लो मेरे स्वामी और मुझे ढकेल दो किसी खाई में । अगर मेरी गरदन दबोच भी दो तो मेरे मुँह से आह न निकलेगी । इन्हीं चरणों पर सो जाऊँगी ।"

मास्टरजी ने फिर प्यार से पूछा—"कुछ तो कहो···मेरी सब कुछ···मेरी अपनी गोमा । तुम्हें मेरी सौगन्ध···।"

सौगन्ध···हाय फिर सौगन्ध । वह उठी, मास्टरजी के चरणों पर जा गिरी । अपने आँसुओं से उनके चरण धोती रही । मास्टर जी ने उसे उठा लिया, बोले—"मुझे लगता है, जैसे तुम यह ब्याह नहीं चाहती थीं । मैंने तुम्हारे साथ जबरदस्ती की है । मैं तुम्हारे लायक नहीं हूँ ।"

गोमा ने झट अपना हाथ मास्टरजी के मुँह पर रख दिया, बोली—"हाय ! ऐसा न कहो, आप तो सब कुछ हैं ।"

भँवरसिंह ने उसे अपनी भुजाओं में कस लिया, बोले—"फिर क्या है । इस धारा को रोको, नहीं तो इस में आज का माधुर्य बह जायगा ।"

"नहीं···नहीं···" वह उनकी गोद से अलग जा पड़ी, बोली—"नहीं··· स्वामी···मैं इस लायक नहीं हूँ । आप देवता हैं···देवता पर बासी फूल नहीं चढ़ता । मुझे तो इन चरणों में पड़ी रहने दो·······इन्हीं पर प्राण दे दूँ । बस···।"

"नहीं गोमा···तुम मेरे हृदय की देवी हो । मेरे सपनों की रानी । तुम तो देवी हो देवी···मेरे मन मन्दिर की देवी—मेरे अङ्ग-अङ्ग की महारानी ।"

"नहीं, नहीं······मेरे प्रभु ! यह आपका बड़प्पन है । आपको नहीं मालूम···?"

"मुझे क्या नहीं मालूम ? मुझे सब मालूम है गोमा ! तुम मेरी हो, आओ गले लगें, और देखो मेरे जन्म-जन्म की प्यास तुम्हें बुला रही है ।"

गोमा को लगा कि वह सब कुछ अपना अर्पित कर दे । अपने मन के पाप

को इस पावन गंगा में धो दे। उसके हृदय में ज्वार उठ रहा था, वह अपना हृदय थामे बैठी थी, और सामने मास्टर जी खड़े थे, ऊँचे, बहुत ऊँचे। जिनकी ऊँचाई पर वह बैठा दी गई है, पर उसकी कमजोरी उसे वहाँ से ढकेल रही हैं। वह सँभल जाय, नहीं तो अगले क्षण गिर पड़ेगी, सदा के लिए। उसके हृदय में तूफान उठ रहा था, जैसे कह रहा हो, सब कुछ अपने मन का कलुख खोलकर रख दे, अपने देवता के आगे।

"आपको नहीं मालूम मेरे देवता····" वह रो पड़ी।

"क्या नहीं मालूम मुझे····" मास्टरजी ने उसे उठाते हुए कहा।

"मैं पतिता हूँ····" वह बोली, छिटक कर दूर जा खड़ी हुई, "मैं वह फूल हूँ, जिसे कोई सूंघ चुका है। मैं अपना सब लुटा चुकी हूं। मोहन ने मुझे कहीं का न रखा मास्टरजी····आपको नहीं मालूम····।" उसकी घिग्घी बँध गई, वह जमीन पर गिर पड़ी और फफक-फफक कर रो पड़ी। वह रोती रही। उसने यह सब एक सांस में कह दिया। अब उसके पास कुछ नहीं बचा। जैसे उसका बोझ उतर गया हो।

वह सोच रही थी कि अभी मास्टर साहब सुनेंगे तो अवाक् रह जायँगे। उसे बुरा-भला कहेंगे। कहेंगे—"तुम कलंकिनी हो! तुम कुलटा हो, भ्रष्टा हो! तुमने एक की जान ले ली, एक का घर छुड़वा दिया। और मुझे भी बर्बाद कर दिया। अरी हतभागिन, मुझे डसने से पहले ही तू मर क्यों न गई। जा, जा दूर हो मेरी आँखों से और अपनी काली सूरत न दिखा।"

गोमा बैठी रही। अपलक मास्टरजी की ओर देख रही थी और भावी आशंका से काँप रही थी। वह सोच रही थी, उसने पहले ही पाप किया है, अभी छुपाकर उससे भी बड़ा पाप करेगी और जीवन भर उस पापाग्नि में जलती रहेगी और कभी चैन न पाएगी। उसने कह दिया, अच्छा ही किया? अपराधिनी तो वह है ही। हर सजा के लिए वह तैयार है।

उसने देखा, मास्टरजी अब भी मुस्करा रहे हैं। वह उनकी ओर एकटक प्रश्न चिन्ह बनी देखती रही। मास्टरजी ने धीमे से कहा—"यह सब तो मुझे पहले ही मालूम था गोमा····।"

"आपको मालूम था····हाय राम····।" उसके मुँह से निकला। तो क्या मास्टरजी को मालूम था, मोहन यहाँ आता था और इसीलिए मोहन मारा भी

गया। बोली—"मालूम था, तब फिर आपने मुझसे ब्याह क्यों किया? तरस खाकर या मजबूरी से····?"

"न तरस खाकर····न मजबूरी से····बल्कि अपनी इच्छा से। मैं तो तुमसे बहुत पहले ही ब्याह करना चाहता था। इस बारे में ठाकुर और जण्डेल से बात चलाना चाहता था। मगर मैं गरीब घर का था और घर में अकेला। इसलिए राह देख रहा था।

मोहन के बारे में मुझे मालूम था? इस बारे में मैं उसे और तुम्हारे भाई को सतर्क करना चाहता था, पर जण्डेल के स्वभाव से परिचित था। इसलिए अवसर की राह देख रहा था कि यह घटना घट गई। फिर इस चर्चा से तुम्हारी बदनामी फैलने का डर था, इसलिए मौका ढूँढ़ रहा था।" मास्टरजी ने बड़ी सरलता से कहा।

"आप जानते थे, फिर भी मुझसे ब्याह किया····मुझ पापिन से। मुझे सजा दो, मैंने गलती की है। मैंने आपके साथ, अपने होने वाले पति के साथ घात किया है। उससे बड़ा कसूर और क्या होगा।"

"कसूर! तुम्हारा नहीं, मोहन का था? तुम गाँव की अबोध कन्या, जिसे बोलने का भी अधिकार नहीं। अगर बोलतीं भी तो बदनामी तुम्हें दाग-दाग कर देती····बोलो क्या चारा था तुम्हारे पास? तुम भोली थीं, मीठी बातें अच्छी लगीं। तुम्हारा भोलापन देख कर ही तो मोहन आगे बढ़ा। असली कसूर मोहन का है। उसकी सजा उसे मिल ही गई।" मास्टरजी ने कहा।

वह मास्टरजी का मुँह देखती रह गई। यह क्या कह रहे हैं मास्टरजी। हाय! ऐसे भी आदमी होते हैं इस संसार में। इनके तो चरण धो-धोकर भी पिए तो थोड़ा। मास्टरजी कह रहे थे—"तुम्हारी भूल थोड़ी है। और भूल किस से नहीं होती। और तुम अपनी भूल महसूस कर ही चुकी हो। अब तो तुम गंगा की तरह पवित्र हो, चन्दन की तरह सुगन्धित हो और प्रकाश की तरह उजली हो।"

वह देखती रही, देखती रही। मास्टरजी इतने ऊँचे हैं, हाय रे उसका भाग, इतना बड़ा आदमी लिखा था उसके भाग में। उसे क्या मालूम था। मास्टरजी आगे बढ़े, गोमा को उठा लिया। गोमा न हिली, न डुली। मास्टरजी

ने उसे पलंग पर बिठा लिया। बाहों में समेटते हुए भँवरसिंह ने कहा—"अब तो न भागोगी मुझ से दूर····।"

"कहाँ जाऊँगी," बड़ी-बड़ी आँखों में मुस्करा कर वह बोली—"आपमें ही समा जाऊँगी।"

"आज मेरे जीवन की साध पूरी हुई गोमा ?" भँवरसिंह ने उसे चूमते हुए कहा—"इतनी तपस्या के बाद तुम मेरी हुई हो····मेरी····।"

"आपकी ही रहूँगी मेरे नाथ····," गोमा उनमें समाती-सी बोली।

"आज मेरा जीवन पूरा हो गया····तुम मेरे मन-मन्दिर की देवी हो। अब तो जी भर कर दर्शन करूँगा····सजाऊँगा और पूजा करूँगा····।"

"क्या मुझे कुछ भी हक न दोगे स्वामी ?" गोमा ने पूछा।

"काहे का हक ?"

"आपकी पूजा का····अपने देवता की····"

बीच में भँवरसिंह ने कहा—"मेरे तो रोम-रोम पर तुम्हारा हक है मेरी रानी। मैं तुम्हें पा गया। अब मुझे कुछ नही चाहिए।"

"और मुझे भी····"

और चाँद धीमे-धीमे बादलों की ओट में चला गया।

१८

डायना का रंग तो साँवला था, मगर नक्श बहुत तीखे थे। एक बार को कोई भी व्यक्ति उसकी ओर देखे बिना न रह सकता था। उन्मुक्त वातावरण में पली होने के कारण उसमें झिझक नहीं थी, इसलिए वह जल्दी ही छा जाती थी और यही कारण था कि किसी को उसकी ओर बढ़ने में समय नहीं लगता था और यदि वह व्यक्ति व्यवहार में कुशल हुआ तो निश्चित ही डायना उसकी प्रशंसक बन जाती थी।

डायना का उद्देश्य, युवक सेवक समाज में आने में सेवा का कम, अपनी अभिनय कला को निखारने का अधिक था। क्योंकि इस संस्था के अन्तर्गत आए दिन ऐसे प्रोग्राम होते रहते थे, और ड्रामेटिक ट्रिप बाहर भी जाते रहते थे। 'जलते गाँव' नाटक में वही राजनर्तकी का अभिनय करना चाहती थी। और सच ही उसकी पतली व फुर्तीली कटि में वह लचक थी कि अंग-अंग में थिरकन पैदा कर देती थी, और उसका नृत्य-प्रदर्शन तो एक जादू था जो दर्शकों पर छा जाता था। जिस समय मेक अप करके तैयार होती थी तो रंग उसका छुप जाता था। आँखें कटीली बरछी जैसी पैनी, भवें कमान, अधर अजन्ता की कलाकृति से रस से सरोबर। जूड़ा वह कई प्रकार से बाँधती थी, और प्रत्येक कोण से भली लगती थी। नरेन्द्र ने 'जलते गाँव' में उसे यह भूमिका इसलिए नहीं दी, क्योंकि उसकी भाषा मँजी हुई न थी।

मगर सक्सेना का विचार था—"भाषा तो रिहर्सलों में सुधर सकती थी मिस डायना। तुम्हारी शक्ल बिल्कुल निम्मी से मिलती है। वह मुसलमान है, फिर भी उसने अंगुलिमाल में काम किया है कि नहीं।"

"तब फिर मुझे चांस क्यों नहीं दिया?" डायना ने पूछा।

"अरे तुम नहीं जानतीं, नरेन्द्र मृणाल को लिफ्ट देना चाहता है।"

"तुम ठीक कहते हो सक्सेना। यह मृणाल और रूपवती तो समाज पर हावी हो रहे हैं। यह रूपवती तो···।"

"तुम्हारे सामने कट तो उसका खाक नहीं, मगर मृणाल की चहेती जो है। और शायद तुम्हें नहीं मालूम वह विधवा है···।"

"इज शी विडो ?" डायना ने पूछा।

"सरटेन ली शी इज !" सक्सेना ने कहा।

"अरे वाह री···मैं ने तो डी० एस० पी० सरीन की कार में देखा है।"

"यह सदाचार के भाषण हमारे लिए ही हैं डायना जी ! मृणाल के क्या कम रंग हैं ?"

"सच सक्सेना···इनकी बातों से तो बड़ी बोर हो जाती हूँ···चलो कहीं रेस्ट्राँ में चलें।"

"हाँ ! हाँ चलें। मैं भी कहने वाला था।"

सक्सेना रेयन का गुलाबी सूट पहने था और बड़ा भला लग रहा था। उसने टेक्सी रोकी और 'होटल दि नौबहार' चलने की आज्ञा दे दी। टेक्सी हवा से बातें करने लगी। सक्सेना के कपड़ों में लगी भीनी खुशबू मस्त बनाए दे रही थी। डायना ने अपना सिर सक्सेना के कन्धे से टिका दिया और ख्यालों में डूब गई। सक्सेना ने अपना दाँया हाथ उसकी पतली कमर में डाला और थोड़ा सा अपनी ओर खींच लिया।

"सक्सेना हाउ स्वीट यू आर" डायना फुसफुसाई।

"यू आर स्वीटेस्ट," सक्सेना ने कहा।

टेक्सी होटल के सामने रुकी। सक्सेना उतरा और दूसरी ओर जाकर कार की खिड़की खोल दी। डायना उसकी इस अदा पर ही मर गई। उसके हाथ में हाथ थामे ऊपर चली गई। हाल में डान्स चल रहा था। नंगा यौवन मदहोशी में थिरक रहा था। सक्सेना ने आर्डर दिया—"दो ह्विस्की, दो सोड़ा।"

बैरा सामान रख गया। सक्सेना ने बोतल खोली। गिलासों मे ढाली। दोनों ने गिलास उठाए। एक दूसरे से लाल लाडलियों को गले लगाया और अधरों से लगा लिया। डायना ने कहा— "बहोत एक्साइटिंग है यह।"

"और लो न डार्लिंग···," उसने और उंडेल दी।

दोनों ने जाम खाली कर दिए। सक्सेना ने उसका हाथ पकड़ा और धीरे से उठा लिया। डायना हल्की गुड़िया सी उठ आई। सक्सेना उसकी कमर में हाथ डाले डांस क्लब की ओर ले गया। वहाँ आधुनिक वाद्य पश्चिमी धुनों पर बज रहे थे। दोनों एक दूसरे की कमर में हाथ डाले नाचने लगे।

डायना बोली— "व्हाट इज दैट सहरिया डाँस ?"

"ओह ! न्यूसैन्स !" सक्सेना ने कहा, "जो मजा इस डांस में है, वह किसी में नहीं।"

"इट मेक्स आस यंग," डायना बोली, "सक्सेना, यह जवानी कब तक रहेगी।"

"इट इज एवरग्रीन" सक्सेना बोला—"और फिर डार्लिंग ! तुम्हारी ब्यूटी का तो फार्म ही ऐसा है कि···· ।"

डायना बीच में ही बोली—"बट ह्वाट फोर ···· ?"

सक्सेना ने कहा—"मेरे लिए····जिसे तुम चाहो, उसके लिए···· ।"

"ओह सक्सेना ! यू आर लकी····आई लव यू !"

"ओ माई स्वीट डायना," सक्सेना ने उसको अपनी भुजाओं में भर लिया और एक मादक चुम्बन कस दिया।

इतने में डांस समाप्त होने की घण्टी बजी। दोनों चले। सक्सेना उसे टैक्सी में पहुंचाने गया। बंगले के गेट पर ही वह उतर गई, उसने टा टा किया और अन्दर चली गई।

अगले चौराहे पर उसने टेक्सी छोड़ दी। उसने जोड़ लगाया था, चवालीस रुपये उनहत्तर नए पैसे–"चिड़िया फँस गई तो सौदा मँहगा नहीं है।" यह सोचता हुआ अपनी गली में मुड़ गया जहाँ उसने एक खोली ले रखी है।

सक्सेना ग्वालियर आया था, नौकरी की तलाश में। मगर सब दफ्तरों की खाक छान कर भी उसे नौकरी न मिली। एक दिन उसकी टक्कर नरेन्द्र से होगई। मैले फटे कपड़े, बाल बढ़े हुए, शेव बढ़ी हुई। नरेन्द्र ने उसे 'कर्म भूमि' में टाइपिस्ट रख लिया और युवक सेवक समाज का भी काम सँभला दिया। सक्सेना का एक ही सिद्धान्त था—"एक ही वक्त रोटी खाओ सूखी, बाकी ऐश के लिए रखो।"

डायना चाहती थी कि कोई बोल्ड साथी मिले, तो जिन्दगी में बहार आए। दोनों की मुलाकात समाज के कार्यालय में हुई। पहले दिन ही सक्सेना ने कहा—"यह सेवा का दफ्तर नहीं, यंगमेन्स स्लोटर हाउस है।"

"हाउ····," डायना ने पूछा।

"अब आप खुद को ही देखिए ! कितनी टैलेन्टड हैं। क्या खुरपी-कुदाली उठाने के लिए ही बनी हैं।"

डायना को उसकी यह बात भा गई। डायना बड़े घर की लड़की थी। उसके पिता एक्साइज के बड़े अफसर थे। शराब में पली व चाँदी में खेली थी। कई बार उसने सक्सेना को घर पर बुलाया, चाय पिलाई। सक्सेना ने भी उसके घर जाने के लिए दो एक बढ़िया सूट सिलवाए थे, और जब तब खुलकर खर्च करता था। डायना समझती थी कि सक्सेना कभी पीछे हटने वाला जीव नहीं है।

एक दिन डायना ने कहा—"डियर सक्सेना ! एक आर्टिस्ट का कन्टेस्ट निकला है। कहो तो एप्लाय करूँ।"

वह बोला—"अरे तुम तो बनी बनाई हीरोइन हो, यह बैजयन्तीमाला तुम्हारे सामने क्या टिकेगी।"

डायना ने मुस्कराकर कहा—"यहाँ तो मेरा आर्ट डल हो रहा है, वहीं तकदीर आजमाऊँ।"

"वाह ! तुमने पहले क्यों नहीं कहा ? फिल्म इण्डस्ट्री में तो अपने कई आदमी हैं।"

"सच····इज इट ?"

"तुम्हारी जान की कसम डायना !" सक्सेना बोला—"मेरे ममेरे भाई सिनिरियो लिखते हैं, बी० आर० चौपड़ा के तो दांए हाथ हैं।"

"मैं फिल्म आर्टिस्ट बन सकती हूँ····आर यू····श्योर ?"

"अरे आप एक बार वहाँ तक चलिए तो····जाते ही चान्स दिलवाऊँ।"

"कितना खर्चा लगेगा, एक ट्रिप में····।"

"यही एक-दो हजार साथ लेलो····।"

"अरे बस" डायना बोली, "आई शैल अरैंज फार फाइव थाउजेन्ड।"

"तब फिर लो हाथ मिलाओ....," सक्सेना ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दबाते हुए कहा—"तो बस....तुम हीरोइन बन गई।"

"कब चलें....?"

"कल ही....।"

"कल नहीं....पापा को थोड़ा झांसा देना होगा।"

"अरे पापा से कह देना, युवक सेवक समाज का ट्रिप जा रहा है बम्बई, प्रधानमन्त्री आ रहे हैं।"

"हाँ ठीक रहेगा....पर थोड़ा टाइम लगेगा।"

"जब तुम ठीक समझो।"

१६

तीन अन्तर्व्यथाएँ

मृणाल

मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किससे कहूँ ? यह सब मैंने ही तो किया है। अपने लिए ही कांटे बोए। अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारी। हाय, अपना ही संसार उजाड़ा। पर मैं करती भी क्या ? कोई उपाय भी नहीं था ? पर ऐसा सोचा कब था कि नरेन्द्र इतनी दूर, हजारों मील दूर चला जायगा। मेरी नजरों से दूर, जहाँ मेरी आशाओं के सपने भी न पहुंच सकें, इतनी दूर। मगर वह यहाँ रहता कैसे ? अगर यहाँ रहता तो खतरे की काली घटाएँ उसके चारों ओर मँडरातीं ? वह और उनमें उलझ जाता ? सरीन अलग उस पर शक करने लगा था। किसी भी दिन हथकड़ी डाल देता ? उधर नाहर का दिमाग बदलते देर नहीं लगती ? अगर उसे विश्वास हो जाय कि कोई पुलिस का मुखबिर है तो वह उसे दिन-दहाड़े गोली मार जाय ? नरेन्द्र ठहरा भावुक कार्यकर्ता। दोनों को समझा भी न पाता। कहाँ से लाए पुलिस और डाकुओं की भाषा ? अच्छा ही हुआ वह इस आग से थोड़ी दूर हट जाय, नहीं तो झुलस जाता।

वह बस्तर जारहा है। बस्तर तो बहुत दूर है। प्रदेश के दूसरे छोर पर। जहाँ तक पहुंचने में भी तीन दिन लगें। चारों ओर जंगल ही जंगल ! बियाबान। आदिवासियों का देश। भील और गोंडों के बीच। अकेला, केवल अकेला। आज तक मैंने उसे अकेले नहीं जाने दिया। अब जायगा, वहाँ रहेगा। कैसे रहेगा वहाँ नरेन्द्र ! हाय, मैं क्या करूँ ?

आज उसकी विदाई थी। मेरे जीवन का सबसे बड़ा आघातक क्षण। मैंने ही उसे अपने हाथों बिदा की माला पहनाई। उसकी बिदाई का आयोजन युवक सेवक समाज के कार्यालय में ही किया गया था। सभी सदस्य उपस्थित थे। समाज अपने मन्त्री को खोकर रो रहा था। सब कह रहे थे, अब कैसे होगा, क्या होगा। रूपवती तो कुछ कहती न थी, गुमसुम बैठी थी। लतीफ आँसुओं से रूमाल भिगो रहा था। रमाकान्त ने वह बिछोह का चित्र खींचा कि सब के हृदय को छू गया।

शाम को कार्यक्रम समाप्त हुआ। मैं उसे पहुँचाने कमरे तक गई। रास्ते में ही मेरी आँखें बरस पड़ना चाहती थीं। कमरे पर पहुँचने पर तो बाँध जैसे फूट निकला हो। हिचकी बँध गई। नरेन्द्र बोला, "है, हैं, यह क्या ? इतनी कर्मठ कार्यकर्ता में ऐसी दुर्बलता क्यों ?" फिर अपने खादी के रूमाल से मेरे आँसू पोंछते हुए बोले, "अच्छा बस करो मेरी अच्छी रानी ! देखो मुझे हँसते-हँसते मुस्कराते मुख से विदा करो·· मृणाल ! देखो तो····"

मेरे आँसू रुक गए। पर भर्राये गले से मैं बोली—"मैं नहीं रहूँगी यहाँ। मैं भी चलूँगी तुम्हारे साथ ?"

"अरे कहाँ····?" उन्होंने हँसकर पूछा।

"बस्तर····आदिवासियों के बीच," मैं बोली।

"अरे पागल हुई हो····, और फिर चिन्ता क्या है, मैं थोड़े दिनों में आ ही जाऊँगा।"

"नहीं····नहीं····मैं जाऊँगी ही····मना न करो नरेन्द्र ! अगर तुम साथ न ले चलना चाहो तो वैसी कह दो। मैं मन मसोस कर रह जाऊँगी।"

"है, हैं ! कैसी बात करती हो मृणाल। मैं तो इसलिए कह रहा था कि तुम वैभव में पली वहाँ इतने कष्ट कैसे सहोगी····।"

"मैं सब सह लूँगी····तुम हाँ कर दो····।"

"अच्छा ठीक है" वह बोले, "अपने पिताजी से पूछ लो। अगर वे कह देंगे तो ठीक है। उनकी अनुमति के बिना मैं तुम्हे साथ नहीं ले जा सकूँगा।"

"अच्छा ! पूछ कर आती हूँ पिताजी से।" यह कहकर मैं भागी। दौड़ कर घर आई। भोजन कर उठे ही थे कि मैं पहुँच गई। बोले, "कहाँ थी मृणाल ! चलो खाना खालो।"

"खाऊँगी बाद में····पहले मुझे आज्ञा दीजिये।"

"कैसी आज्ञा बेटी।"

"मैं बस्तर जाऊँगी····नरेन्द्र के साथ····आदिवासियों में काम करने के लिए। मैं तो जाऊँगी वहाँ। बस आप आज्ञा दे दीजिए।"

मैंने देखा, पापा एक साथ गुमसुम हो गए हैं। न कुछ बोलते हैं, न कहते हैं। मैंने उन्हें झकझोर कर कहा, "डेडी····आज्ञा दीजिए न।"

वे फटी-फटी आँखों से मुझे देखते रहे। बोले—"जाओ न बेटा। जीवन में एक ही आस बांधी थी कि तू बुढ़ापे की लाठी बनेगी। वही छीन ले। मेरा क्या है ? तुझे मेरी चिन्ता क्या है ? तू जा, चली जा। मुझ से जितने दिन जिया जायगा, उतने दिन जी लूंगा।"

"नहीं, नहीं, डेडी ऐसा न कहो। ऐसी अशुभ बात न कहो।"

"तब तू भी जाने की बात न कह। मैने तुझे हर स्वतन्त्रता दी है। इसका यह मतलब तो नहीं कि तू मुझे ही छोड़ जाये। तेरे मन में काम करने की लगन है, तो यहाँ ही कर ! यहां क्या क्षेत्र नहीं है। और कुछ नहीं तो····अपनी पढ़ाई कर।····क्या-क्या सपने संजोए थे····।"

वे न जाने क्या कहते रहे। मैं मुँह ढांके सिसकती रही।

नरेन्द्र

मृणाल फफकती हुई आई। मैं समझ गया, उसे स्वीकृति नहीं मिली। मैंने उसे ढाढस देते हुए कहा—"तुम फिक्र न करो····मैं जल्दी ही आ जाऊँगा।"

"····· ···," वह सिसकती ही रही।

"देखो, यहां समाज है। भला इसे कौन देखेगा। जिस पौधे में तुमने रक्त दिया है, उसे यूँ छोड़ जाना चाहती है। तुम्हारे पिता ने ठीक कहा है। यहां भी कार्य करने का विस्तृत क्षेत्र है। अगर तुम मुझे प्रसन्न देखना चाहती हो तो····"

मैं चुप हुआ। मृणाल ने मेरी ओर देखा। मैं उसे पढ़ लेने की कोशिश कर रहा था। बड़ी-बड़ी पलकें उठाकर वह बोली—"तो····।"

"तो तुम भी प्रसन्न रहो····मुझे मुस्कराकर विदा करो। तभी जाऊँगा।" मैंने कहा और देखा कि उसके अधरों पर एक प्यारी मुस्कराहट फैल गई।

"आओ चलें ! समय हो गया है।" मैंने कहा और हम दोनों चल दिए।

सामान पहले ही स्टेशन पहुँच चुका था। वहां पहुँचने पर हमने देखा कि मित्र लोग पहले ही वहाँ खड़े हैं। सबने एक साथ मुझे मालाओं से ढक दिया। मैं बोला—"हैं, हैं, यह क्या ? क्या मैं कोई बहुत बड़ा नेता हूँ····अरे मैं तो····।"

"छोटा सा बच्चा हूँ····? क्या आप हमारे पथ-प्रदर्शक नहीं हैं ?" रूपा ने कहा। वह एक ओर खड़ी मुस्का रही थी।

"मैंने कहा—,ओ रूपा····तुम····?"

"हाँ ! क्या मुझे इजाजत नहीं है, आपको विदा देने की ?"

"अरे वाह····तुम ख्याल रखना समाज का। तुम भी रामेश्वर, शर्मा और लतीफ भी और····। अरे वह डायना कहाँ गई····सक्सेना भी नहीं आया।"

हार्डीकर बोला—"वे तो कई दिन से नहीं दीख रहे हैं ···।"

मैं कुछ कहता कि घण्टी बजी। गाड़ी आगई। सब लोगों ने सामान जमा दिया। मै चढ़ा। सबने हाथ जोड़ दिए····। मैं बोला—"अरे अभी से। अभी तो गाड़ी पन्द्रह मिनट बाद जायगी।"

"और जब तक हम न कहें····," मैंने देखा भीड़ में से कोई आगे निकल आया है। मेरे मुँह से निकला—'अरे भँवरसिंह तुम····अरे वाह····गोमा भी साथ है।····अरे देखूँ तो कैसी अच्छी लग रही है ?"

गोमा शरमा गई—"आपके दर्शन करने आए हैं नरेन्द्र बाबू।"

"और तुम भँवरसिंह ?" मैंने हँसकर पूछा।

"आपका आशीर्वाद लेने !" वह बोला।

"बस मेरा ही, मृणाल का नहीं," मैंने कहा और मृणाल की ओर देखा। वह धीमे से मुस्करा दी।

भँवरसिंह ने कहा—"उन्होंने तो हमें जिन्दगी दी है····?"

इतने में सीटी बजी। झण्डी हिली। गाड़ी चल दी। "अच्छा विदा" मैंने कहा। देखा, सबके हाथ हिल रहे थे। मृणाल की आँखों में दो मोती थे।

गाड़ी धीरे-धीरे बढ़ी और स्पीड पकड़ गई। गाड़ी दौड़ रही थी मैं दूर होता जा रहा था, त्यों-त्यों मृणाल पास आती जा रही थी। लगता कि जैसे वह मेरे साथ ही हो। उसके दो मोती अब भी चमक रहे थे। पता नहीं कितनी दूर निकल गया कि झटका-सा लगा। देखा छोटा सा स्टेशन है। बाहर गर्दन निकाल कर पढ़ा—'आंतरी'। इतने में एक देहाती इसी ओर आता दिखाई दिया। आकर ठीक मेरे सामने खड़ा हो गया। थोड़ी देर मुझे देखता रहा, फिर रो पड़ा। मैं समझ भी न पाया कौन है, क्या बात है ?

वह सिसकते हुए बोला—"मुझे माफ कर दो भैया। अब गलती न होगी। हाय! तुम्हें मेरी वजह से जाना पड़ रहा है। न मैं होता, न तुम्हें यह दुख भोगने पड़ते।"

मैंने हाथ बढ़ाकर उसका मुँह ऊपर को किया, मेरे मुँह से निकला—"अरे····।"

इतने में गाड़ी चल दी···। यह नाहर था।

नाहरसिंह

जबसे भैया से मिलकर आया हूं, कुछ भी करने को जो नहीं करता। दिन और रात हृदय में मंथन चलता रहता है। इस आदमी ने तो मुझे जीत ही लिया है। जो नाहर बड़े से बड़े पुलिस अफसर से नहीं झुका, वह एक साधारण इंसान से झुक गया!

हमारी रसद खत्म हो रही है। साथी सलाह दे रहे हैं कि कुछ किया जाय। कहीं छापा मारा जाय। बोधासिंह बोला—"सरदार! ऐसे कितने दिन चलेगा····कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

"क्या करें····कुछ समझ में नहीं आता।" मैंने निढाल होकर कहा।

"चलें! कहीं डाका डालें। मवासीपुरा में एक सेठ है। बड़ा माल है सरकार! बहुत चूसता है। उसी को ठिकाने लगाया जाय।"

"मुझ से कुछ न होगा। तुम जानो सो करो।"

"मैं करूँगा। आप बेफिक्र रहें" जण्डेल ने कहा—"अभी मुझे सन्तपुरा के चमारों से बदला लेना है। मेरी बन्दूक अभी भूखी है सरदार, आज्ञा दो।"

"जण्डेल मुझे तुम पर भरोसा है····और तुम भी बोधासिंह मेरे हाथ हो," मैंने कहा—"मुझे माफ कर दो····मैं कुछ न कर सकूँगा।"

"कम से कम साथ तो चलेंगे।"

"नहीं"

"फिर क्या करेंगे यहाँ?"

"थोड़ा भगवान को याद करूँगा। तुम्हारी जान की रक्षा की प्रार्थना करूँगा।" मैंने कहा।

"तब फिर आशीर्वाद दीजिए····हम ही आगे बढ़े।"

"भगवान सबका भला करे।" मेरे मुँह से निकला।

२०

सन्तपुरा में शाम से ही घटाएँ छा रही थीं। लगता था जैसे आज दिन भर की उमस बाहर धनीभूत हो गई है। गाँव की झोंपड़ियों से धुँआ निकल रहा था, और छोटे छोटे दीपक टिम-टिम जल रहे थे। लगता था, जैसे इस झंझावात से लोहा लेने के लिए कमर कसे बैठे हों। चारों ओर उदासी और सूनापन छाया हुआ था। सब की आँखें आने वाले भय से भयभीत थीं। मास्टरजी इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। इस छोर से उस छोर तक। सब निढाल हो रहे थे। मगर मास्टरजी सब को चेतना प्रदान कर रहे थे।

ठाकुर माथे पर हाथ धरे बैठे थे। गोमा ने भी खाना नहीं बनाया था। मास्टरजी आए। देखा तो बोले—"यह क्या कक्का! आप तो गाँव के मुखिया हैं?"

ठाकुर बोले--"मेरा तो डूब मरने का दिन आ गया है। मेरा बेटा ही मुझे नरक में ढकेल रहा है।"

मास्टर जी ने कहा—"देखो कक्का! इस वक्त वह न तो तुम्हारा बेटा है, न तुम उसके बाप! वह एक डाकू है, और आप गाँव के मुखिया। कहिए क्या आप अपनी आँखों यह आग लगते देखेंगे?"

"नहीं, नहीं''''मैं ऐसा कृतघ्न नहीं हूँ।"

"तब उठिये, और लीजिए यह बन्दूक! आज हम बतादें कि हमारे गाँव पहिने हैं, उनके लिए हम जान लड़ा देंगे?" और फिर गोमा की ओर देख कर बोले—"गोमा! खाना बनाओ! हम लौटकर खाएँगे।"

ठाकुर उठे। अपना अंगरखा पहना। महाकाल को शीश नवाया और मास्टरजी के साथ हो लिए। बाहर जाकर देखा तो सारा गाँव मास्टर जी के

इशारे पर मरने के लिए तैयार हैं। मास्टरजी ने कहा—"भोला, तुम पूरब संभालो। और नूर तुम दक्षिण। दामो तू पश्चिम····।"

"और हम····,"ठाकुर ने पूछा।

"हम चमरियाने पर रहेंगे।" मास्टर जी ने कहा और सब की तरफ देख कर बोले—"देखो तुम बीस बीस जवान हो। तुम सब मकानों की मुँडेर पर बन्दूक साधे लेटे रहोगे। बीस नीचे रहेंगे। जो तुम्हारे इशारे पर पहुँच जाएँगे।"

"देखो तुम गोली न चलाना जब तक मैं न कहूँ। जब मैं गोली छोड़ूँ तो समझना कि तुम्हें आगे बढ़ना है। मैं तीन दिशाओं में तीन गोली छोड़ूँगा।"

"आवश्यकता पड़ने पर तुम यह घेरा कम करते जाना। खबरदार गाँव का कोई कोना अछूता रहे। अगर बढ़ने में गोली भी लगे तो परवाह नहीं।"

"आप बेफिक्र रहें। आपके इशारे की देर है, हम सब संभाल लेंगे।"

"बस ठीक है हम उधर जाते हैं।"

"मास्टर जी ठाकुर को लेकर चमरियाने की ओर गए। वहाँ सब हले ही तैयार थे। चमारिने भंगिने सभी छुरे-चाकू लिए बैठी थीं। मास्टर जी ने सबको यथोचित निर्देश दिए। और अपना स्थान सम्भाल लिया। ठाकुर को छीतू की पौरी में बिठाया। अगर कोई घुसे तो····।"

यह सब आनन फानन हो गया। सब अपने स्थानों पर सांस बांधे लेटे रहे। घटाएँ उमड़ती रही। बिजलियाँ चमकती रहीं। हवा का झंझा चलता रहा। मगर सब ज्यों के त्यों पड़े रहे। एक घन्टा, दो घन्टा, तीन घन्टा। आधी रात बीत गई। देह भी पड़े पड़े अकड़ गई। रात भी काली स्याह होती गई। वातावरण भयावह होता गया। मगर एक शब्द भी सुनाई न पड़ा।

'छपर····छपर····छपर····।' दूर····दूर····बहुत दूर····कुछ चींटियाँ सी रेंगती दिखाई पड़ीं। धीरे धीरे यह आकार बड़ा होता गया। उधर से एक फायर हुआ। इधर सब शान्ति।

बोधा बोला—"मालूम होता है, सारा गाँव सोया पड़ा है।"

जण्डेल ने कहा—"अभी सुलाते हैं चल कर।"

"चलो चले सारे गाँव को घेर लें।" बोधा ने कहा।

"नहीं····सिर्फ चमारों का मुहल्ला। और किसी को हाथ न लगाना।"

"अच्छा।"

बोधा आज अकेले चला तो आया, पर जी उसका धक-धक कर रहा था। आज तक वह अकेले नहीं गया। नाहर के रहने से उसकी हिम्मत दूनी हो जाती थी। पर आज कमान उसके हाथ में थी। फिर भी उसने दिल मजबूत किया, आगे बढ़ा। देखा, चारों तरफ सन्नाटा छा रहा है। यह कैसा गांव है। कुत्ते भी मौन हैं। तब तो खूब बेफिक्री से लूटा जायगा। उसने साथियों से कहा—"चलो।"

और वे तेजी से आगे बढ़े। चारों तरफ देखा। कुछ भी नहीं। अरे वाह! तब तो मैदान अपना ही है। जण्डेल ने सोचा, आज छीतू के सारे खान्दान को ठिकाने लगाऊँगा।

उन्होंने चमरियाना घेर लिया और एक हवाई फायर किया। जण्डेल ने कहा—"तुम चारों तरफ से सफाया करो। मैं छीतू के घर को ठिकाने लगाता हूँ।"

मास्टरजी ने भी एक हवाई फायर किया। उनकी बन्दूक की आवाज अलग ही थी। सब सचेत हो गए। रेंगते से आगे बढ़े। घेरा कम होता गया।

जण्डेल ने छीतू के घर में प्रवेश किया। पौरी में पैर धरते ही उसकी टांग में एक गोली लगी 'धाँय'। वह गिर पड़ा। फिर फुर्ती से उठ खड़ा हुआ बन्दूक लिए चारों ओर घूम गया। बैठा कोने में कोई बैठा है। वह घोड़ा दबाने वाला ही था कि उसने देखा और उसके मुँह से निकल पड़ा—"अरे कक्का। आप····!"

"हाँ! मैं····चला जा यहाँ से····नहीं तो गोली मार दूँगा।"

"हः हः हः! वाह कक्का खाली लौट जाऊँ····अपनी बहन की बेइज्जती का बदला न लूँ·· यूँही चला जाऊँ····।"

"तेरी बहन मजे में है।"

"मगर मेरे अन्दर तो आग लगा रही है····आप क्या जानो।"

यह कह कर वह झपाटे से अन्दर कूद गया। अन्दर भी गोली चली। उसने देखा, चारों ओर से गोलियों की आवाजें आई। यह क्या? क्या पुलिस आ गई। अरे तब तो घिर जाएँगे।

वह लंगड़ाता हुआ भागा। बन्दूक उसने वहीं छोड़ दी। इसके रहते खतरा रहेगा। वह निकला। झुके झुके बाहर हो गया। उसे सुनाई दिया "कौन····।"

वह खाँसा, जैसे टीवी का मरीज हो, बोला—"कोई नहीं····जुगनू हूँ। घर जा रहा हूँ····।"

"जल्दी जाओ, दद्दा। गोली चल रही है।" वह आगे बढ़ा। अंधेरे में बढ़ता ही रहा। सरकता ही रहा। उसने टटोल कर देखा, अरे यह तो अपना ही घर है। उसने धीरे से धक्का दिया। किवाड़ खुल गये। दीपक लिए गोमा दौड़ी आई—"कौन ?"

फिर एक साथ सहम कर खड़ी हो गई। मुँह से एक दबी सी चीख निकली—"हाय! भैया" और झट उसने किवाड़ें फेर दीं। उसने जण्डेल को उठाया। देखा, उसकी टाँग में खून बह रहा था! उसने अपनी धोती फाड़ी और उसे कस कर बाँध दिया। दौड़ी-दौड़ी अन्दर आई। रोटी पर साग धर लाई बोली—"भैया! लो खा लो। कैसी अच्छी भाजी बनाई है।"

जण्डेल आँखें फाड़े देखता रहा। वह शक्तिशून्य हो रहा था। उसने साहस बटोरा। दाएं हाथ से गोमा के हाथ की रोटी को दूर फैंक दिया, बोला—"कुलकलंकिनी! तेरे हाथ का खाऊंगा····दूर हो जा मेरी आँखों से।"

"मुझे माफ कर दो भैया! मुझे माफ कर दो····। मास्टरजी ने मुझे माफ कर दिया है।" गोमा रोती हुई बोली

"मेरी आत्मा तुझे कभी माफ न करेगी।" यह कह कर वह झपाटे से निकल गया। गोमा रोकती रही, फफकती रही।

बोधा जिस घर में घुसा था, वहाँ आदमी कोई न था। औरतें ही थीं। सबके हाथ में छुरे और कटार थीं। बोधा ने बन्दूक दिखाई तो वे सब काँपने लगीं। छुरे हाथों में से गिर गए। बोधा गरजा—"अपना अपना जेवर निकालो।"

सबने उतार दिए। वह बोला—"नहीं अन्दर से" और वह भीतर लपक गया। अन्दर जाकर देखा, एक नई नवेली कोई दुलहिन खड़ी है। उसने देखा तो देखता ही रह गया। क्या जादू था उस रूप में। बोधा ने उसका हाथ पकड़ा। वह चीखी। बोधा ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, और अपनी ओर खींचा। एक साथ उसे सुनाई पड़ा जैसे नाहर कह रहा हो—"बोधा! डाके में गरीब और औरत का हमेशा ख्याल रखो। दूसरे की बहन अपनी बहन····।"

उसके हाथ ढीले पड़ गए। वह औरत छुई मुई सी मुरझाई जमीन पर जा गिरी। पसीना पोंछता बोधा बाहर निकला। चारों तरफ गोलियाँ चल रही थीं। उसने सोचा, यह अपने साथी फायर कर रहे हैं।

वह भागने को ही था कि चारों तरफ से घेर लिया गया। चारों तरफ बन्दूकें ही बन्दूकें। एक गरज सुनाई पड़ी, "बन्दूक फेंक दो! हाथ ऊँचे करो।"

उसने देखा अब कोई चारा नहीं है। चारों ओर निगाह दौड़ाई उसके कोई साथी दिखाई नहीं दिए। उसने बन्दूक डाल दी। उसे चारों तरफ से पकड़ लिया।

२१

जबसे मृणाल ने नरेन्द्र को विदा किया था, उसका किसी काम में जी नहीं लग रहा था। उसे चारों ओर सूना ही सूना दिखाई दे रहा था। कई दिन से वह समाज में भी न जा पाई थी। घर ही रहती और अपने एकाकी में घुलती रहती। उसका जीवन एक यंत्र जैसा हो गया है। जैसे उसे इस दुनिया से कोई सरोकार न हो।

उस दिन अपने बगीचे में बैठी हुई थी और दूर भँवरे की अठखेलियाँ देख रही थी। फूल झूम झूम कर उसका स्वागत कर रहे थे। ऊपर रंगबिरंगी चिड़िया चहचहा रही थीं और दूर एक हिरन का जोड़ा सिर झुकाए आपस में मौन निमंत्रण दे रहे थे। वह सिहर सिहर उठी। वही, केवल वही, इस संसार सूनी है, अकेली है।

इतने में खटका हुआ। देखा, पीछे रामवती न जाने कितनी देर से खड़ी है। देखते ही मुस्करा गई, बोली—"दिटिया! मैं तो अपना दुख लेके आई थी, यहाँ तो तुम खुद····।"

बीच ही में मृणाल बोली—"बैठो ताई····अच्छा हुआ आप आ गईं। रूपा कहाँ है? बहुत दिनों से नहीं आई····।"

"घर ही है" रामवती बोली, "कुछ दिन तो उसका मन काम में बहुत लगा, पर अब तो तुम्हारी तरह सुस्त बनी रहती है।"

मृणाल ने देखा रामवती के मुख पर बड़े अजीब भाव नाच रहे थे। उसने दूर देखा, एक गाय अपने बछड़े को दूध पिला रही थी। ऐसा ही कुछ भाव रामवती के मुख पर था। रामवती कह रही थी—"बेटा! मुझसे उसका दुख नहीं देखा जाता। मैं चाहती हूँ कि चहकती रहे····बस····।"

सूनी दिशा की ओर देखते हुए मृणाल बोली-"एक बात मानोगी ताई·····।"

"भला मैंने तेरी बात टाली है कभी·····?"

"तो ताई, रूपा का विवाह कर दो·····।" मृणाल एक साथ कह गई।

रामवती के हृदय के तार जैसे एक साथ झनझना गए हों, बोली—"ब्याह ! हम लोगों के यहाँ तो बेटो,लड़की का एक बार ही ब्याह होता है।"

'अब जमाना तेजी से बदल रहा है, ताई ! अब लोग चाँद तक पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं। और फिर तुम्हीं सोचो, रूपा को तुम कितने दिन बिठा रखोगी·····और फिर तुम्हारे बाद·····।"

"इसी डर से तो मेरा रोम रोम काँप उठता है, मैं पागल हो जाती हूं। क्या होगा, मेरे बाद। किस किनारे लगेगी, उसकी नाव !"

"इसीलिए तो मैं कहती हूँ·····उसका ब्याह कर दो। वह अपने घर सुखी रहेगी। तुम्हारी आत्मा भी प्रसन्न रहेगी।"

"तुम ठीक कहती हो। बेटी पराया धन होती है·····पर रूपा उसके लिए तैयार होगी।"

"उसकी फिक्र छोड़ो। मैं सब देख लूँगी।" मृणाल ने कहा।

रामवती बोली—"पर कौन है जो हाथ थामेगा, मेरी लढ़ेती का। वह विधवा है। कौन उसे अपनी बनाना चाहेगा।"

"इसे भी मुझ पर छोड़ दो। संसार इतना बड़ा है। हीरे का परखने वाला कोई तो मिलेगा।" मृणाल ने कहा।

"अच्छा, तुम जानों·····रूपा तुम्हारे चरणों में पड़ी है·····चाहे जैसा करो।"

"वह मेरी बहन है ताई·····पहले मैं उसके लिये सोचूँगी·····बाद में·····।"

बीच ही में रामवती बोली—"तुमने मेरी छाती दूनी कर दी·····अब मैं बेफिक्र हो गई। अच्छा अब चलूँ।"

"अच्छी बात है" मृणाल ने कहा, "रूपा को भेज देना, थोड़ा मन लगेगा।"

"अच्छा·····।" कहकर रामवती चली गई। मृणाल एक टक उसे देखती रही। देखती रही और सोचती रही। उसने सारी जिम्मेदारी सहज में ही अपने ऊपर लेली। मगर वह क्या करे। परिस्थितियों से जूझने के लिए वह अकेली

रह गई है। मगर यह क्या ? उसमें इतनी कमजोरी क्यों आ गई है। क्या नरेन्द्र इसीलिए उसे यहाँ छोड़ गया है। सब कुछ उस पर छोड़ कर ही तो वह गया है। क्या वह अब कन्धा डाल दे। अगर वह ही झुक जाएगी तो यह और क्या करेंगे। नहीं''''नहीं''''वह उठेगी, काम करेगी। सबके लिए संघर्ष करेगी। किसी ने उस पर आस बाँधी है तो वह उसे किनारे लगाएगी।

यह सोचती वह उठी। हल्की उजली धूप अब कड़ी होती जा रही थी। उसने बरामदे में पैर रखा ही था कि उसे सुनाई दिया—"दीदी ''।"

उसने मुड़ कर देखा, रमाकान्त था। बोली—"आओ न रमा ! आओ बैठो"

"मैं एक गम्भीर बात आपसे करने आया हूँ दीदी" रमाकान्त बोला

"हाँ ! हाँ कहो न !"

"तुमने सुना दीदी। डायना सक्सेना के साथ भाग गई।"

"डायना भाग गई, मगर क्यों ?"

"साथ में अपने बाप की तिजोरी से पाँच हजार भी ले गई है ?"

"तुम्हें कैसे मालूम''''"

"उसके पिता आए थे''''पूछ रहे थे कि क्या युवक सेवक समाज का कोई ट्रिप बम्बई जा रहा है। डायना ऐसा ही कुछ उनसे जिक्र कर रही थी।"

"तुमने क्या कहा ?"

'मैंने कहा जी नहीं। अगर ट्रिप जाता और डायना को उसमें ले जाया जाता, तो आपको सूचना दी जाती। बिना पालकों की सहमति के हम किसी को साथ नहीं ले जाते।"

"हाँ तुमने ठीक ही कहा''''अब।"

"आप जो कहें'''।"

"अच्छा अन्दर तो आओ।" मृणाल ने कहा। और अन्दर चली गई। रमा भी उसके पीछे चला। अन्दर पहुँच कर मृणाल एक कुर्सी पर बैठते हुए बोली—"बैठो चाय पीकर जाना।" उसने बटन दबाया। घन्टी बजी। नौकर आया। चाय की आज्ञा दी। वह चला गया।

मृणाल ने कहा—"रमा ! यह सब क्यों होता है ?"

"मैं क्या जानूँ दीदी," रमाकान्त ने आँखें झुकाए कहा, "मैं तो यह जानता हूँ कि अनियंत्रित प्रतिभाएँ इसी प्रकार गलत मोड़ लेती है ?"

'क्या सभी के साथ ऐसा होता है ?"

"नही ! दृढ़ आस्था वाले लोगों को कोई डगमगा नहीं सकता ।"

"यह बात नहीं है रमा ! अनैतिकता हमारे राष्ट्र में घुन की तरह लग गई है । हमारा राष्ट्र और समाज खोखला होता जा रहा है । और एक दिन देखना, यह ढह जायगा ।"

चाय आ गई थी । चाय पीते हुए रमा बोला--"तब फिर क्या हो दीदी ?"

"उसके लिए हमें निज का त्याग करना होगा । हमें अपनी दृष्टि समूह की ओर, समाज की ओर, राष्ट्र की ओर रखनी होगी । हमारा एक भी कदम उसे क्षति पहुँचा सकता है । एक एक जन उठे, तभी तो यह राष्ट्र का महल ऊंचा हो— ।"

"इसके लिए हमें क्या करना होगा ?"

"अपने स्वार्थों का त्याग । समाज जैसा चाहता है, वैसा अपने को ढालना होगा । हमें समाज के लिए जीना होगा ।"

"समाज क्या चाहता है ?"

"समाज चाहता है सुयोग्य नागरिक""ठोस कार्य-कर्ता ।"

"तुम सच कहती हो दीदी ! आपका स्वप्न बड़ा मनोहर है । मगर ऐसा होता कहाँ है । यह तो आदर्श है । यथार्थ कब आदर्श को अछूता छोड़ता है ?"

"इस यथार्थ को ही तो सजा कर संवार कर आदर्श बनाना होगा रमा ।"

"क्या यथार्थ भी सजेगा, संवरेगा""?"

"क्यों नहीं""अगर हम प्रयत्न करें तो ।"

थोड़ी देर वातावरण में निस्तब्धता छा गई । मृणाल बोली—"डायना भाग कई ! यह अच्छा नहीं हुआ रमा ! समाज पर बदनामी आती है ?"

"क्यों नहीं""हम सब का सिर नीचा होता है ।" रमा ने कहा । थोड़ी देर रुक कर कहा—"अच्छा ! चलूं दीदी । आज थोड़ी देर में ही बहुत सीखा है मैंने ।"

"अच्छा ! चलोगे""आज क्यों न समाज की बैठक रखी जाए ।"

"हाँ हाँ ! जरूर, उसमें इस पर भी विचार कर लिया जाय ।"

"हाँ""तब तुम ही कष्ट करना । इसके संगठन का भार तुम पर ही है ।"

'ठीक है, जैसा आप कहें।''

रमाकान्त चला गया। मृणाल देखती रही। कैसा होनहार छोकरा है। अगर उसे सही दिशा मिल जाय तो हीरा बन सकता है। वह अन्दर चली आई। घर के कामों में व्यस्त हो गई।

शाम को छह बजे युवक सेवक समाज की बैठक आयोजित हुई। रमाकान्त दिन भर लोगों को दौड़ दौड़ कर सूचना देता फिरा। फिर शाम को मीटिंग में बहुत थोड़े लोगों ने भाग लिया। मृणाल जब वहाँ पहुंची तो देखा कि वहाँ पाँच-सात व्यक्ति ही मौजूद हैं। उसे बड़ा दुख हुआ। सब इस प्रकार उदासीन क्यों हो गए हैं ? एक ही व्यक्ति के न होने से यह शिथिलता क्यों आ गई है ? क्या अनुशासन का यही मानदण्ड है ?

रात को आठ बजे बैठक आरम्भ हो पाई। डायना के पलायन पर विचार किया गया। मृणाल बोली— ''बात डायना के पलायन तक ही सीमित नहीं है। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि आज की नौजवान पीढ़ी को अनैतिकता से कैसे बचाया जाय।''

शर्मा ने कहा—''माननीय अध्यक्षा ! मेरे विचार में तो इस प्रश्न में सेक्स का प्रश्न निहित हैं। युवक-युवतियाँ सेक्स के प्रभाव से बंचित नहीं रह सकते। कोरे उपदेश उनका मार्ग-दर्शन नहीं कर सकते।''

मृणाल ने कहा—''आप ठीक कहते हैं मिस्टर शर्मा। किन्तु किसी प्रकार भी उनको सही मार्ग किस प्रकार दिखाया जाय। उसमें पहला तरीका तो यह है कि उन्हें आत्मसंयम का पाठ पढ़ाया जाय। किन्तु आपके शब्दों में यह कोरा आदर्शवाद होगा।''

लतीफ ने कहा—''तब फिर क्या हो ?''

मृणाल ने कहा—''एक दूसरा उपाय यह है कि उन्हें उच्चस्तर का सम्पर्क प्राप्त हो। जैसा कि इस प्रकार के संगठनों द्वारा किया जाता है। जहाँ दूसरे के हित के लिए अपने को नियंत्रित रखना होता है।''

अजरा बोली—''मगर दीदी ! फिर भी ऐसी घटनाएं क्यों होती हैं ?''

मृणाल ने कहा—''इसलिए कि मनुष्य, संगठन के मुकाबले में अपने को अधिक महत्व देने लगता है। समाज की मर्यादा व प्रतिष्ठाओं का ध्यान रखकर हमें आगे बढ़ना चाहिए।''

सब चुप रहे। मृणाल ने कहा— "और तीसरा उपाय है कि मनुष्य को परिस्थितियों के हाथ की कठपुतली बनने के लिए छोड़ दिया जाय। वह अनुभव करे, गलती करे और सीखे। जैसा डायना के साथ हुआ है।"

मोघे बोला— "इससे तो विनाश की अधिक आशंका है।"

"और नहीं तो क्या?" मृणाल ने कहा— "और समाज को यह हानि उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

शर्मा ने कहा— "मगर एक की गलती को सब क्यों भुगतें।"

"यही तो व्यापक दृष्टिकोण अपनाना होगा मिस्टर शर्मा" 'मृणाल ने कहा— "अगर एक ने गलती की है तो आवश्यक नहीं है कि सभी गलती करें।"

"तब फिर क्या करना होगा?" हार्डीकर ने पूछा।

"उसे जीने का हक देना होगा, उसे समाज में वही प्रतिष्ठा देनीहोगी।" नहीं तो वह बर्बाद हो जाएगी। अब आप रूपा का ही उदाहरण लें। रूपा एक विधवा युवती है। यदि समाज ने सहारा न दिया तो वह कहीं की न रहेगी। पूर्ण युवा है वह और उसकी माँ दो-चार साल की मेहमान। मैं आप लोगो के सामने रूपा का प्रश्न रखना ही चाहती थी।"

"उसे समाज में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त तो है", मोघे बोला— "और क्या चाहिए?"

"इतने से ही कुछ नहीं होता। इससे उसके जीवन को स्थायित्व थोड़े ही मिलता है।"

"आपका तात्पर्य है कि रूपा का पुनर्विवाह हो।" अजरा ने कहा।

"हाँ! क्यों नहीं" मृणाल ने कहा, "हमें अपनी परम्पराओं को बदलना होगा। हमें युग के साथ कदम बढ़ाना होगा।"

"तब फिर क्या किया जावे! समाज उसे सहर्ष अनुमति दे सकता है।"

"अनुमति देकर ही तो काम नहीं चलेगा।"

"तब फिर?" सबने पूछा।

"हम में से किसी को आगे आना होगा। आप युवकों में से कोई आगे बढ़े और रूपा को सहारा दे। मास्टर भँवरसिंहजी का नाम उदाहरणीय है। किस प्रकार उन्होंने गोमा को सहारा दिया है····।"

"···" सब चुप। मृणाल ने सबकी ओर देखा। सब निगाह नीची किए बैठे रहे। मृणाल ने कहा— "मोघे तुम···· ?"

"माफ करो दीदी ! मैं विधवा से विवाह नहीं कर सकता । मेरे भी तो कुछ अरमान हैं।"

"और तुम हार्डीकर··· ?"

"हमारी उनकी संस्कृति भिन्न हैं। विवाह जीवन भर का सौदा है। सोच-समझकर कदम बढ़ाना चाहिए ।"

"और शर्मा ! तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

"मैं बिना अपने माता-पिता की अनुमति के कुछ नहीं कह सकता।"

"ओह····," मृणाल घबड़ा गई "अब तो रमा पर ही प्रश्न आकर टिका है।"

"दीदी ! मैं आपकी आज्ञा हर्गिज न टालता पर मैं अभी छोटा हूँ। और मुझे जीवन में आगे बढ़ना है। मैं एम० ए० करूँगा····पी० एच० डी करूँगा···· तब बाद में···· ।"

बीच ही में मृणाल उठ खड़ी हुई, बोली— "तब ठीक है ! मैं समझती हूं कि समाज किसी भी दशा में सहयोग और सहकारिता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है।········अच्छा मैं अब चलूँ। धन्यवाद।"

यह कह कर वह चली गई। एक दूसरे की निगाह में व्यंग्य की मुस्कराहट लिए बैठक समाप्त हुई।

२२

सन्तपुरा के डाके में बोधासिंह पकड़ा तो गया। मगर गाँव अधिक भयभीत हो गया था और पुलिस भी क्रुद्ध हो चली थी। क्योंकि उसकी सहायता के बिना यह काम हुआ था। उसका महत्व गिर गया था। अतः उसने मोहन के खून का मामला ताजा कर लिया और शीघ्र इसकी पेशी हो गई। मास्टरजी लाख प्रयत्न करने पर भी ठाकुर को निर्दोष साबित न कर पाए थे और जण्डेल तो खुले आम डाका डाल रहा था। जज ने यही निर्णय दिया कि जब तक जराडेल अपने को हाजिर नहीं करता तब तक इस मामले की सफाई मुश्किल है। चूँकि ठाकुर मौके पर बन्दूक समेत पाए गए हैं अतः अपराध इनके ऊपर ही आता है। मगर चूँकि सबूत पक्का नहीं है केवल घटनास्थल पर होने से पूरी सजा के हकदार नहीं हो सकते। इसलिए उन्हें जब तक जराडेल हाजिर नहीं होता, पकड़ा या मारा नहीं जाता, कैद दी जाती है।"

यह निर्णय सुनकर सब सहम गए। धन इतना था नहीं कि मामला आगे बढ़ाया जाता। ठाकुर गोमा और मास्टर जी को बिलखता छोड़ चले गए।

अकेले ठाकुर के जाने से गाँव में मातम छा गया। गाँव वाले पहले ही डरे हुए थे। अब तो और भी सहम गए। सोचते, अब तो जराडेल अपने बाप की सजा का बदला भी गाँव से चुकाएगा। उन्हें दिन-रात जराडेल का, नाहर का डर बना रहता। मास्टरजी उन्हें लाख दिलासा देते, लाख धीर बाँधते, समझाते, पर वे मानने के लिए तैयार न थे। बल्कि इधर-उधर यह बात भी फैल रही थी कि गोमा और मास्टर जी अगर गाँव में रहे तो इस गाँव का सत्यानाश निश्चित है। मास्टरजी ने सुना तो माथा थाम कर बैठ गए। इस गाँव के लिए उन्होंने क्या कुछ नहीं किया, पर आज उनकी कद्र यहां तक हो गई।

वे घर जाते तो गोमा उन्हें रोती हुई मिलती। कहते भी क्या ? बेचारी के बाप बिछुड़ गए थे। अब गोमा का उनके सिवाय कोई न था। अंधेरी रात में कई बार ख्याल आता कि जरुडेल से प्रतिशोध की अग्नि में जलने वाले कहीं आधी रात को आ जाँय और हम दोनों को.... । आगे वे सोच न पाते और इस स्वार्थी समाज की नीचता पर आँसू बहाने के सिवा उनके पास कुछ न था।

गोमा का दुख देखकर उनका मन कक्का को छुड़ाने के लिये एक बार और होता। सोचते ग्वालियर हाईकोर्ट में अपील करें। पर यहां बैठे कुछ हो नहीं सकता था। अतः उन्होंने सोचा, गांव में धरा क्या है ? ग्वालियर ही क्यों न चला जाय।

उन्होंने अपनी बात गोमा को कही तो वह केवल रो दी। वह क्या कहे। जिसमें स्वामी की मर्जी हो, वह तो उसमें खुशी होगी। सब बातों पर विचार करके उन्होंने अपना इरादा पक्का कर लिया।

एक दिन उन्होंने सामान सँभाला। स्कूल का चार्ज दिया। छुट्टी का प्रार्थनापत्र भरा और सबसे विदा ली। स्कूल के बच्चे विलख रहे थे, मास्टर लोग मूर्ति से खड़े थे और गाँव वाले सहमे-से खड़े थे। गोमा गाँव छोड़ते विलख रही थी। एक बार को मास्टरजी की भी आँख गीली हो गईं। पर ज्यों-ज्यों वे गाँव से दूर होते गये उनकी कोरें सूखती गईं। करीब पचास लड़के और सभी मास्टर उन्हें बस के स्थान तक पहुँचाने आए। बस आई। सबने उसे रोका। मास्टरजी और गोमा को बिठाया। उनके पैर छुए। बस चल दी। मास्टरजी ने देखा, सबके हाथ हिल रहे थे और आँखों में आँसू थे।

मास्टरजी सोच रहे थे। एक दिन वे इस गाँव में हैड मास्टर बनकर आये थे। अकेले थे। कैसे-कैसे लोगों के बीच में उन्हें काम करना पड़ा। कैसी-कैसी परिस्थितियां आईं। उन्होंने सबको मिलाकर, समझाकर काम निकाला। उनको सब सुख थे। पर अकेलापन खटकता था। दिवाली पर ठाकुर ने न्यौता किया था, तभी उन्होंने गोमा को देखा था। एक मीठा विचार उनके मन में आया। फिर सोचा व्यर्थ है। मैं इतनी ऊँची कुर्सी पर बैठा हूँ, कि इस विषय में सोचना भी अपराध माना जाय। उन्होंने एम० ए० किया था, अगर वे किसी जागीरदार के लाड़ले होते तो कई एम० ए० लड़कियां उनके लिए प्रस्तुत होतीं, पर स्कालर-

शिप व अनेक लोगों की दया पर पढ़ने वाले भँवरसिंह को कौन लड़की देता। गोमा की बात मन में आई। सोचा, पढ़ी-लिखी नहीं है, पर है भली। घर की ज्योति तो बनेगी। मैं पढ़ा लूंगा। मगर यह बात उनके मुँह तक न आ पाई। इस बीच अनेकों घटनाएँ घट गईं।

आज गोमा उनके साथ है, पर गांव छूट गया। गाँव की कीमत पर ही जैसे गोमा मिली है। इतनी कीमती चीज को वे संभाल कर रखेंगे। मुरझाने न देंगे। ग्वालियर ले जायंगे। एक बढ़िया सा मकान लेंगे। उसे सजाएँगे, संवारेंगे और जीवन के सुख को संजोएंगे।

उन्होंने गोमा की ओर देखा। कितनी आकर्षक है, कितनी लुभावनी। शहर के वातावरण में धीमे-धीमे ढल जाएगी। मृणाल, रूपवती और डायना के बीच घूमेगी फिरेगी तो इसका शृंगार निखर जायगा और गोमा, पढ़ी-लिखी लड़कियों के कान काटेगी।

मास्टरजी मन में गुदगुदाते रहे। बस बढ़ती रही। सामने के दृश्य पीछे छूटते जाते, जैसे मालूम पड़ता कि जो सामने है वह पीछे छूट जायगा और आगे एक बिल्कुल नवीन वर्तमान आएगा।

बस मुरैना, बामोर होकर ग्वालियर की सीमाओं में सरक रही थी। ऊँची-ऊँची भव्य इमारतें दिखाई पड़ रही थीं और कोलाहल मय बाजार की सजावट पास आती जा रही थी। गोमा यह सब पलकें झुकाए अधमुंदे नयनों से देख रही थी। अब आया ग्वालियर। अब आया ग्वालियर। ग्वालियर, मेरे सपनों का शहर। कब से जिया मचल रहा था, ग्वालियर देखने को। पहले एक दिन को आई थी। कुछ देख न पाई। अब तो हमेशा को आ गई हूँ ग्वालियर देखने। मोहन ने वादा किया था ग्वालियर दिखाने का। झूँठा कहीं का। मुझे धोखा दे गया। अगर मास्टरजी न होते तो। और अब मास्टरजी ही मुझे ग्वालियर दिखा रहे हैं। जो मोहन ने झूंठे सपने दिखाए थे वे सब मास्टरजी पूरे कर रहे हैं। मोहन, जिसने मुझे लूटने में कमी न रखी और मास्टरजी जिन्होंने लुटाने में कमी न रखी। एक पाताल, एक आकाश। एक मिट्टी, एक सोना। हाय! मेरी आँखों पर ही पत्थर पड़ गए थे। उस सत्यानासी की तरफ न जाने किस कुघड़ी में देखा था। मुझे डस गया और वह सारा जहर पी लिया मास्टरजी ने। शिवजी की तरह। वे तो शिवजी बन गये, पर मैं पार्वती कहाँ बन पाई। हाय····मैं पार्वती

कैसे बनूं । तभी अपने भोले शंकर के गले की हार बनूंगी । पार्वती जी अग्नि में जल मरी थीं'''मैं भी आग में कूद पड़ूं । तभी असली परीक्षा होगी । पर ये कूदने देंगे । सब तरह से मुझे बांध लिया है । मैं तो इनकी दासी भी बनने लायक नहीं । यही अब मुझे ग्वालियर ले जारहे हैं । इतनी बड़ी जगह । यहाँ अच्छे मकान में सजकर रहूंगी । दिन और रात इनके साथियों में घूमना होगा । मृणाल, रूपवती सबके साथ बात करनी होगी । मैं कर पाऊँगी ? कहीं मुझे गांव की गंवल्ली न समझ लें । तब तो मास्टरजी का मुँह नीचा हो जायगा । मैं कोशिश करूंगी, अपने देवता को रिझाने की । उनके पैरों की धूल ही बन पाऊँ तो मेरा जनम सफल हो जाय ।

बस आकर बाड़े पर रुक गई । जिन्होंने ग्वालियर देखा नहीं हैं, वे उसके सौन्दर्य को नहीं जानते । और ग्वालियर का सारा सौन्दर्य जैसे बाड़े पर आकर ही केन्द्रित हो गया है । बाड़ा बोलचाल की भाषा का नाम है, वैसे इसे जयाजी चौक कहते हैं । जयाजी चौक एक विशाल वृत्त अपने अक्षुण्ण सौन्दर्य को समेटे आगन्तुकों का मन मोह लेता है । और सच ही वहाँ का दृश्य अनुपम है । मध्य में श्री जयाजी राव शिन्दे की विशाल प्रतिमा है जो धवल उज्ज्वल मन्दिर के प्राचीरों में प्रतिष्ठित है, जिसके चारों ओर श्वेत संगमरमर की सीढ़ियां नीचे की ओर मखमली घास से भरे लान में उतरती हैं । लान के ये चार टुकड़े, चार छोटी छोटी सड़कों और अपने चारों ओर पत्थर की जाली के घेरे से घिरे हुए हैं । इनके पौधे व्यवस्थित व कटे हुए शेड़ में भले लगते हैं । और ऊँचे विशालकाय बिजली के लट्टू, जिनमें मरकरी लाइट जगमगाती है, इनका पहरा देते हैं ! इस लान में बैठ कर साँयकाल मित्र अपनी दिन भर की चर्चाएं करते हैं, वयोवृद्ध अपने जीवन के बचे क्षणों को सौभाग्यशाली बनाते हैं और बच्चे अपने जीवन की परिधि को और बढ़ाने के लिए क्रीडाएं करते हैं । लान के बाहर चारों ओर चौड़ा फुटपाथ है और उसके चारों ओर साफ, सुथरी, सुविस्तृत सड़क ।

सड़क की सीमा समाप्त होने पर चारों ओर उसी गोलाकार स्थिति में विशालकाय इमारतें हैं । इधर सामने जो आप ऊंची इमारत देख रहे हैं जो अनगिनत सीढ़ियों पर बैठी गौरव से मस्तक ऊंचा उठाए है, जिसका बाहरी दालान बड़े, चौड़े, गोल खम्भों पर आधारित है, जिसका अग्रभाग ऊपर एक विशाल त्रिकोण बनाता है, जिसे देख कर मास्को की वास्तुकला की स्मृति हरी हो जाती

है, वह है जनरल पोस्ट आफिस। उसके पास सी सड़क छोड़ कर एक ही पत्थर की बनी आधुनिक इमारत है कृष्णराव बल्देव बैंक, जिसके ऊंचे कांच के दर्वाजों में से भीतर पीतल और तांबे से मढ़ा पुष्ट लौह द्वार, अन्दर की मायाविका का सबल प्रहरी बना खड़ा है। इसके पीछे एक और ऊंची बिल्डिंग है जो सार्वजानिक वाचनालय है। जिसमें लग कर ही नगरपालिका निगम का मुख्य कार्यालय है, जहाँ पार्षद सभाकक्ष भी है तथा अन्य विभागों का कार्यालय।

अब यह सड़क जनक गंज को जाती है। इससे लगी जो बिलकुल श्वेत इमारत है वह है स्टेट बैंक आफ इण्डिया, जो पोस्ट आफिस और पहली बैंक के सौन्दर्य से होड़ ले रही है। उससे लगा हुआ है सूचना कार्यालय। यह बीच में चौड़ी सड़क सराफे को जाती है। उससे लगी कई वैरायटी शाप हैं। इनके बीच यह गगनचुम्बी पीली पुरातन शिल्प पर आधारित इमारत टाउन हाल की है जो रीगल टाकीज द्वारा किराए पर ली गई है। इसके पास फिर वैरायटी शाप्स हैं और फिर एक सड़क जो दौलतगंज को जाती है। उससे लगा हुआ गवर्नमेन्ट रीजनल प्रेस एक विशाल क्षेत्र घेरे है और उसके पास की सड़क माधोगंज जाती है। पास ही भव्य इमारत है, जिसके बीच में विशाल घड़ियाल समय की गति की सूचना देता है, मार्कीट है, जिसके अन्दर चुने हुए फल, साग-भाजी और फुटकर पुस्तक-विक्रेताओं की दुकानें हैं। यह बिल्डिंग बाड़े का एक पूरा चौथाई भाग घेरे हैं। फिर एक सड़क के पार गोरखी हैं। राजा-महाराजाओं का आराध्य स्थल। यह है बाड़े का अप्रतिम सौन्दर्य, लगता है जैसे विभिन्न संस्कृतियों का यह संगमस्थल है।

भँवरसिंह के साथ गोमा उतरी तो चारों ओर आँख फाड़-फाड़ कर देखने लगी। आह! यही है ग्वालियर। स्वर्ग से भी अधिक लुभावना। मेरा सपना, मेरी मुराद। अब तो आ गई हूँ, जी भर कर देखूंगी। वह खड़ी-खड़ी चारों ओर घूम गई। उसका मुँह खुला रह गया। मास्टरजी ने देखा तो मुस्करा दिए। वह कितनी भोली लग रही थी। इसी भोलेपन ने ही तो उन्हें ठग लिया।

वे सीधे लॉज में पहुँचे। सामान रखा। व्यवस्थित हुए। कपड़े बदले। आर्डर दिया। चाय आई। मास्टरजी ने चाय बनाई। गोमा तो देखती रही। बस कभी केतली की ओर कभी प्यालों की ओर, कभी मास्टर जी की ओर।

शाम को वे युवक सेवक समाज के कार्यालय में गए। देखा वहाँ कोई

नहीं था। टेक्सी की। मृणाल के घर पहुँचे। मृणाल ने गोमा को देखा, तो छाती से लगा लिया—"इतने दिनों बाद यह मुखड़ा दिखाया है।"

"मैं तो आपके दर्शनों की प्यासी थी।" गोमा ने मुस्कराकर कहा। वह उसके पैर छूने को झुकी कि मृणाल ने उसे उठा लिया। उसकी हथेलियाँ मिलाते हुए कहा—"इस तरह····नमस्ते।"

भंवरसिंह ने कहा—"हम गाँव छोड़ आए हैं, क्यों कि कक्का के लिए हाई कोर्ट में अपील करनी है।"

"हाँ! यह ठीक रहेगा," मृणाल ने कहा, "मैं भी वकालत शुरू करने वाली हूँ।"

"आप····,"गोमा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

"हाँ मैं····क्या मैं वकील नहीं बन सकती। अरे मैं तो अगले महीने आगरा कन्वोकेशन में जा रही हूँ अपनी वकालत की डिग्री लेने। और मैंने यहाँ के प्रसिद्ध वकील श्रीकान्त सरकार की देख-रेख में काम भी किया है?"

"तब तो आप से बहुत मदद मिलेगी," भंवरसिंह ने कहा।

"हाँ, हाँ क्यों नहीं, यह तो अपना ही काम है।" मृणाल बोली।

"यह अच्छा रहेगा" गोमा बोली, "बाप जज, बेटी वकील, रही फरियादी की कमी। वह हम लोग हैं।"

सब हँस पड़े। मृणाल बोली—"पिताजी! कहाँ जाते हैं अब कोर्ट। तबियत ही ठीक नहीं रहती।"

"अरे आपने पहले नहीं बताया, कहाँ हैं वे?" भंवरसिंह ने पूछा।

"ऊपर हैं, चलो मिल लो।"

सब लोग ऊपर गए। बाहरी कमरे में जस्टिस बोस की आराम गाह थी। वे आरामकुर्सी पर बैठे कोई अखबार पढ़ रहे थे। मृणाल ने प्रवेश कर कहा—"पिताजी! देखिए कौन लोग आए हैं।"

"अरे···आओ न····बैठो····बैठो।" जस्टिस बोस मुस्कराकर बोले।

"पिताजी आप जानते हैं इन्हें," मृणाल ने कहा, "ये हैं श्री भंवरसिंह और यह इनकी पत्नी गोमती देवी। इनके विवाह को ही डाकुओं से बचाने के लिए हम लोग सन्तपुरा गए थे।"

"अच्छा····अच्छा····बहुत अच्छा बेटा," जज साहब ने कहा।

"कहिए अब आप की तबियत कैसी है ।" भंवरसिंहजी ने पूछा ।

"ठीक है बेटा, दिन काट रहा हूं ।"

"क्या तकलीफ है दीदी ?" गोमा ने पूछा ।

"दिल का दौरा पड़ता है । डाक्टर ने पूरा आराम करने को कहा है । पर पापा मानते कहाँ हैं ?"

"तेरे कहने पर ही तो चलता हूं, बेटा ! और क्या चाहती है ?"

"आपका चिरजीवन !," मृणाल बोली ।

"वह तो भगवान के अधिकार की चीज है बेटी ! मैं चाहता था बेटी ! तू जल्दी आई. ए. एस. कर लेती, तो मुझे बेफिक्री होती ।"

"बस पिताजी ! लॉ की डिग्री ले आऊँ, फिर उसमें जुटूंगी ।"

"हाँ बेटा....," बोस रुक कर बोले—"अरे इनको चाय का प्रबन्ध तो करो ।"

"वह तो हो गया," मृणाल ने कहा—"चलिए दूसरे कमरे में ।"

दूसरे कमरे में आने पर देखा टेबल पर चाय लगी हुई है । मृणाल ने खुद चाय बनाई । गोमा सिमटी सी सब देखती रही, पीती रही । चलने को हुए, तो मृणाल बोली—"गोमा को खूब सैर कराओ यहाँ की, फोर्ट दिखाकर लाओ इन्हें, जिससे इनका मन लगे ।"

"हाँ ले जाऊंगा सोमवार को, तब तक शहर दिखाता हूँ....दो चार अच्छी साड़ियाँ भी लेनी हैं ।" भंवरसिंह ने कहा ।

'हाँ यह ठीक रहेगा," मृणाल बोली—"वे साड़ी पहन कर हमें भी दिखाना ।"

गोमा लजा गई । दोनों विदा मांग कर चले आए ।

२३

सुबह पुलिस आई तो बोधासिंह को पकड़ कर ले गई। चारों ओर खबर फैल गई कि पुलिस ने एक बड़ा डाकू पकड़ा है। उस डाकू को कस्बे के थाने में रखा गया। गाँव गाँव से जन-समूह उस डाकू को स्वयं देखने के लिए ज्वार की तरह उमड़ा पड़ रहा था। उस नगर का थाना पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों से भर गया। बोधा एक बन्द अंधेरे कमरे में पड़ा था। जनता का शोर बढ़ता जा रहा था। थानेदार ने हुक्म दिया कि पहरे में डाकू को निकालो। सन्तरी सींखचों के सामने पहुँचा। बोधासिंह काँप उठा। कड़कती आवाज में कहा— "उठो!"

बोधासिंह कुछ न समझा। उसने कड़कती आवाज न सुनी थी। वह उस का अर्थ भी न जानता था। वह सोच रहा था कि उसे फिर कहा जायगा कि एक साथ उसकी पीठ पर बूट का प्रहार पड़ा—"उठता है कि नहीं है....साले ....।" और न जाने कितनी गालियाँ।

वह उठा। हाथ और पैर बेड़ियों से जकड़े हुए थे। बाहर देखा लोग, हजारों लोग, असंख्या लोग। सबकी निगाहें उस पर टिकी हैं। सबकी घृणा उस पर सिमट कर आ जमी है। वह सिर झुकाए खड़ा था। फिर शोर हुआ। लोगों को पूरा दिख न रहा था। फिर बूट की ठोकर लगी। एक ऊंचे चबूतरे पर खड़ा किया गया। यही है बोधा। यही है वह, जो गाँव लूटता है, आग लगाता है। यही है हमारी जान का गाहक, यही है हमारे माल का दुश्मन। चारों ओर से निगाहें जैसे उसे भेदे डाल रही थीं। उसका सिर नीचा हो गया। वह आँखें बन्द, सिर झुकाए खड़ा रहा। चाह रहा था, जमीन में समा जाऊं। मिल जाय तो जहर खा लूँ। थोड़ा ये हटें तो अपने सीने में गोली मार लूँ। वह सोच ही रहा था कि एक झापड़ उसके गाल में लगा, "मुँह सीधा नहीं करता है बे। देख ये तेरे जमाई खड़े हैं।" एक सिपाही ने कहा।

उसका मुँह सीधा हो गया। उसने चारों ओर देखा। अपार जन-समूह, जैसे आज ही अपनी बाढ़ में उसे घेर लिया।

बदलू ने कहा—"कैसा पट्ठा जवान है, हवलदार सा लगता है।"

जोखम बोला—"गोली ऐसे चलता है कि तिनके पर ही लगे।"

"अरे अब तो पुलिस के हाथ में आ गया है, दुर्गत बन जाएगी।"

"देखो कैसा सीधा खड़ा है। अलग नहीं मालूम पड़ता। अपने जैसा ही है।"

"और नहीं तो क्या डाकू भी अपनी तरह, आदमी होते हैं।"

"पर इनके दया ममता नहीं होती।" किसी ने कहा।

"वाह कैसे नहीं होती। आज तक किसी औरत जात पर हाथ उठाया हो तो कहो। साधारण आदमी को तो कभी छेड़ा ही नहीं।"

"हाय! ऐसे होनहार आदमी डाकू क्यों बन जाते हैं?"

"मैं बताऊँ क्यों बनते हैं डाकू?" एक चतुर सा व्यक्ति बोला।

"हाँ! हाँ!" कुछ आवाजें आईं। चर्चा में मजा आ रहा था।

डाकू बनते हैं-भूख से या दबाव से। यही बोधा को लो। अच्छा-भला खेती करता था। एक साल सूखा पड़ गया। फसल न हुई। लगान दे न सका। सिपाही पीटते पीटते ले गए और जमींदार ने जेल करा दी। जेल में भला ठहराता यह शेर। सींखचे तोड़ कर जो भागा तो नाहर के पास ही जाकर दम लिया।

"अच्छा!" सबने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

"और नहीं तो क्या? कई पुलिस की मार से डाकू बनते हैं?"

"वह कैसे?"

"वे छोटा-मोटा कसूर करते हैं। पुलिस उनकी देह की छलनी कर देती है। छूट भी जाते हैं तो जीने नहीं देती। रोज हथकड़ी लिए तैयार। कब तक कोई टिके।"

"सच कहते हो भाई।"

"और फिर कई इज्जत के लिए खेल जाते हैं। किसी की माँ-बहन, औरत को कोई बुरी निगाह से देखे, तो आँखों में खून उतर आता है। उसी दम गोली सीने से पार कर दी जाती है। और फिर जग हंसाई, छीछालेदर

और पुलिस के डर से छुटकारा पाने के लिए डाके से दूसरा उपाय क्या है ?"

सब लोग बोधा को देख रहे थे। सूरज चमचमा रहा था। हुक्म हुआ, पूरे शहर में घुमाओ। चार सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया। वे उसे घसीटते से ले चले। पीछे से दो सिपाही उसे जंजीरों से सटाक सटाक पीटते चले। बोधासिंह के जंजीर घन की तरह पड़ती, हड्डी कुलबुला जाती। पर वह उफ न करता। डाकू कायर न कहलाए, बदनाम न हो जाए।

उसे हर चौराहे पर खड़ा किया गया। पिटाई की गई। हर सड़क पर घुमाया गया। शाम तक उसी तरह चलता रहा। उसकी देह पसीने और लहू से भींग गई। पैर छलनी हो गए। पर सिपाहियों का उत्साह कम न हुआ।

फिर रात को ग्यारह-बारह बजे तक पिटाई धुनाई होती रही। वह बे होश हो गया और एक तरफ को लुढ़क गया। सुबह तड़के ही उसे ठोकर लगी। वह उठा। देखा बाहर एक नीली सी बस खड़ी है। उसमें जाली लगी हैं। उसे उसमें बिठा दिया गया। गाड़ी चल दी। दस आदमियों का एक दस्ता मय संगीनों के साथ था। कहीं भाग न जाए। आगे थानेदार जीप में। पीछे एक ट्रक सिपाहियों से भरा हुआ।

रास्ते भर भीड़ मिली। जगह जगह बस रुकी। सबने उसे देखा, जैसे वह एक अजीब आदमी हो। दुपहर को जिला शहर पहुँचे। वहाँ भीड़ पहले ही स्वागत के लिए खड़ी थी। सबने थानेदार को मालाओं से लाद दिया। सिपाहियों को शरबत पिलाया गया। ये डाकू पकड़ कर लाए हैं, हमारे रक्षक हैं। इनकी आरती उतारो।

उसे सशस्त्र पहरे में ट्रक में खड़ा किया गया। पूरे शहर में घुमाया गया। हर चौराहे पर प्रदर्शन हुआ, भाषण हुआ, उसे धिक्कारा गया। फिर रात को करारी पिटाई की गई।

दूसरे दिन डी० एस० पी०, बहुत से थानेदार आगे तीन चार जीपों में, बीच में बोधासिंह बन्द नीली गाड़ी में, पीछे तीन ट्रक गुरखा पल्टन के बीच ग्वालियन की ओर चला।

ग्वालियर में इससे भी अधिक देखने सहने को मिला। उसे परेड ग्राउण्ड पर ऊँचे चबूतरे पर चारों ओर रस्सियों से बांध कर खड़ा किया गया। हजारों, लाखों की भीड़। जिधर देखो सिर ही सिर। बोधा न समझता था कि वह इतना बड़ा है कि इतनी भीड़ उसे देखे। पर उसे क्या पता था कि उससे अधिक पकड़ने वालों का अहम् बहुत बड़ा है जो पूरे राज्य पर छा जाना चाहता है।

रात को जंजीरों, कोड़ों से फिर उसकी आवभगत हुई। आधी रात गए उसका पीछा छूटा। एक कोठरी में वह जिन्दा लाश सा पड़ा रहा, कराहता रहा।

वह कराह रहा था। बाहर खट खट बूँटों की आवाज आ रही थी। सन्तरी संगीन साधे मुस्तैदी से टहल रहा था। और चारों ओर अन्धी भयावहता छाई हुई थी।

वह रेंगता हुआ सरका। सरकते हुए दर्वाजे तक पहुँचा हाथ बढ़ा कर सींखचे को पकड़ा। आज उसके हाथों दम नहीं रहा था। फिर उसने तन-बदन का पूरा जोर लगाया। वह सींखचों के सहारे लटक गया।

संतरी ने कड़क कर पूछा—"क्या है ? भागेगा क्या ? देखता नहीं, तेरा बाप घूमते घूमते अधमरा हो रहा हैं।"

वह कुछ न बोला। सिर्फ एक कराह निकली। संतरी पास आ गया, बोला—"साले खुद मरते हैं और हमें दुख देते हैं।"

उसकी आवाज न निकली। उसने अपनी मुट्ठी निकाली और आगे बढ़ा कर हाथ फैला दिया। संतरी ने देखा तो देखता ही रह गया। उसने चारों ओर देखा कोई न था। वह आगे बढ़ा। देखा, कहीं वह सपना तो नहीं देख रहा है। सौ रुपए का नोट बोधा की काँपती हथेली में कांप रहा था। संतरी की आँखों में चमक दिखाई दी। उसे अपने बच्चों के लिए रेशमी कपड़े, जोरू के लिए साड़ी जेवर बोधा की खुली मुट्ठी में दिखाई दिए। वह लपका। बोधा की गर्म हथेली हाथ में लेते हुए कहा—"बोल क्या चाहता है। भागना चाहे तो ताला खोल दूं।"

"नहीं," उसने कराहा, "भागकर जाऊंगा कहाँ? कहीं भी मुंह दिखाने लायक नहीं रहा। सब देख लिया आँखों से। अब कुछ नहीं रहा।"

"तब फिर?"

"बस! एक छोटी सी अरज है दरोगाजी! यह चिट्ठी किसी तरह नाहर तक पहुंचा दो! बस! और कहना! यह हजारों, लाखों करोड़ों आँखें हम पर लगी हैं नाहर! हम इनके जवाबदार हैं। आज नहीं कल! कल नहीं परसों ......।"

सन्तरी कुछ समझा नहीं। उसने नोट और चिट्ठी ले ली। बोला—"फिक्र न करो। ठिकाने पहुंच जाएगी।"

बोधा ने कुछ न सुना। एक तरफ को लुढ़क गया।

२४

नरेन्द्र जब बस से उतरा तो देखा, वहां आदिवासियों की बहुत बड़ी भीड़ जमा थी। हरेक के हाथ में कुल्हाड़ी, दरांती, फरसा आदि था, और वे भयानक दृष्टि से देख रहे थे। उसने मोटर में पहले ही चर्चा सुन ली थी कि उत्तर की ओर से कोई बड़ा नेता आने वाला है। मगर आदिवासी यह नहीं चाहते कि उनके वर्तमान जीवन और परम्पराओं में कोई विघ्न डाले, उन्हें उनके पुराने रास्ते से हटाये, इसलिए उनका पक्का इरादा है कि उस नेता को बस से उतरते ही खत्म कर दें। पुलिस का बड़ा भारी इन्तजाम है। दंगा होने वाला है।

नरेन्द्र ने सुना तो कांप गया। पर वह पीछे लौटने वाला नहीं था। यह उसके जीवन की कठिनतम परीक्षा थी। वह उतरा, चारों ओर देखा, मुस्कराया। हाथ जोड़े। सबको नमस्कार किया।

लोग समझ रहे थे कि कोई बहुत बड़ा भारी भरकम नेता होगा, जिसके साथ सैकड़ों आदमी होंगे, और वह आते ही बड़ी-बड़ी बातें कहेगा। सबने दखा, यह तो एक छोकरा है। इसने तो बस हाथ ही जोड़े हैं। कैसा भोला-सा मुस्करा रहा है।

एक ने फरसा ऊँचा करके पूछा—"क्या तुम्हीं उत्तर से आए हो, हमें सताने के लिए?"

"नहीं," नरेन्द्र ने कहा, "मैं तो तुम्हारे ही देश का, राज का आदमी हूँ। ग्वालियर से आया हूं। एक छोटा-सा परदेसी। अगर तुम जगह दोगे तो ठहर जाऊँगा।"

"क्या तुम हमारे साथ रहोगे? हमारे साथ मेहनत करोगे?"

'हाँ मैं तुम्हारे साथ नाचूंगा, गाऊँगा।' नरेन्द्र ने मुस्कराकर कहा और अपने बैग में से बांसुरी निकाल ली। बांसुरी को अधरों पर लगाया और चारों ओर एक मधुर रागिनी फैल गई। बोला—"इस तरह।"

"हमारी देवी के सामने भी बजाओगे ?" एक ने पूछा।

"हाँ! क्यों नहीं ?" उसने कहा।

"तब चलो हमारे साथ।" एक बड़े हट्टे-कट्टे आदमी ने उसे उठा लिया और आगे ले चला। भीड़ उसके पीछे चली। सिपाहियों ने देखा तो दांतों तले उँगली दबा ली। सोचा, कहीं यह इस देवी के सामने वध न कर दें। इसलिए पीछे-पीछे हो लिए।

सब लोग देवस्थान पर पहुँचे। देखा घने जंगल के बीच पत्थरों में से काटकर देवी की मूर्ति बनाई गई है। ऊपर से नीचे तक भयावहता जैसे साकार रूप लिए खड़ी हो। चारों ओर रक्त और मांस के लोथड़े। दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध फैल रही थी। नरेन्द्र वहां से हटकर एक ओर बैठ गया और गर्दन झुका ली। सबने पूछा—"क्या है ? क्या है ?"

"........" वह चुप रहा। एक हट्टे-कट्टे व्यक्ति ने कहा—"अरे बजाओ न अपना बाजा। हमारी देवी के सामने ?"

"मैं गन्दी देवी के आगे नहीं बजाऊंगा!"

"तब फिर ?"

"इसे खूब नहलाओ। चारों ओर सफाई करो। एक मील तक रक्त और मांस की बदबू न आए।"

"तब बजाओगे, अपनी वह प्यारी बांसुरी।"

"हां! बजाऊँगा भी और शृंगार भी करूँगा देवी का। तुम देखना, आज देवी का कैसा रूप दीखता है।"

"अच्छा! तब अभी लो," सभी ने कहा। और सब काम में जुट गये। चारों ओर सफाई हुई। देवी को कई बार नहलाया गया। खूब रगड़-रगड़ कर साफ किया गया। पानी की बौछारें फैंकी गईं। सारा देवस्थल धोया गया। देवी को साफ कपड़े से पौंछा गया।

काम निबटा। नरेन्द्र ने कहा—"चलो अपन सब नहा लें।"

वह उनके साथ चला। कुँए पर पहुँचा। उसने बैग से साबुन निकाला। सबने पूछा--"यह क्या है?"

"देखो तो सही," यह कह कर उसने मलना शुरू किया। सबने देखा उस टिकिया में से सफेद-सफेद झाग निकल रहे हैं और एक अजीब किस्म की गन्ध आ रही है। उसने बट्टी उनकी ओर फैंक दी, बोला--"लो, तुम भी लगाओ। सारी देह साफ हो जायेगी।"

सब रगड़-रगड़ कर नहाने लगे। वह नहाया, सामान उठाया। और देवस्थल पर आ गया। देखा वहां कोई न था। उसने अपने बैग में से सामान निकाला। धूप व अगरबत्ती। चारों ओर देखा। कोई न था। वह सोचता रहा कोई आए।

"ऐ! बाजे वाले," उसे सुनाई दिया। उसने मुड़कर देखा, एक सांवली-सी प्रतिमा सफेद दूधिया दांतों से खड़ी-खड़ी मुस्का रही है।

"ऐ बाजे वाले," वह फिर बोली, 'तुम देवी के आगे जब बजाओगे तो मैं नाचूंगी। मुझे तुम्हारा बाजा अच्छा लगा है।"

"हाँ! हाँ! खूब नाचो, जी भर के," उसने कहा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"बेडमी··· ?"

"बड़ा अच्छा नाम है···अच्छा एक काम करोगी ?"

"क्या··· ?"

"थोड़ा सिन्दूर, घी और आग लाओ?"

"अभी लाई।" यह कह कर दौड़ गई। नहा कर लोग आते जा रहे थे। सब अपने को ताजा महसूस कर रहे थे। भीड़ बढ़ती जा रही थी। बेड़मी सामान ले आई थी। नरेन्द्र ने थोड़ा घी और सिन्दूर मिलाया और प्रतिमा पर फेर दिया। प्रतिमा सिन्दूरी रंग में मुस्करा उठी। उसने धूप एक गड्ढे में रखी और आग डाल दी। सुगन्धित धुँआ उठा और चारों ओर फैल गया। उसने अगरबत्तियां जलाईं। वातावरण एक मीठी सुरभि से भर गया। उसने घी के दीप जलाए। चारों ओर उज्ज्वल प्रकाश फैल गया।

उसने आरती उतारी, घण्टी बजाई। उसने लौट कर देखा कि कुछ लोग एक बकरी का बच्चा लिए खड़े हैं और उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उसने पूछा—"यह क्या है?"

"यह देवी की बलि है । इससे देवी प्रसन्न होगी ।"

"अच्छा ठहरो," वह उठा और एक स्त्री की गोद में से बच्चा ले लिया। अपनी गोद में संभालते हुए पूछा—"यह किसने पैदा किया ?"

"देवी ने ।" सब ओर से आवाज आई।

"और यह....?" उसने बकरे की ओर देखकर कहा।

"वह भी देवी ने ।" सबने कहा।

"देखो ! यह कैसा प्यारा प्यारा बच्चा है। माँ का लाड़ला देवी का दुलारा । इसी तरह यह मेमना भी अपनी माँ का लड़ला है, देवी का दुलारा है। देखो आज देवी बहुत प्रसन्न है । अगर तुमने उसके लाड़ले को दुख दिया तो वह दुखी हो जायगी ।"

कोई बोला नहीं। उसने बच्चा माँ की गोद में दे दिया । बकरी का बच्चा गोद में उठा लिया। बकरी का बच्चा उछला और मैं मैं करता भाग गया। सब निस्तब्ध खड़े रहे ।

उसने बाँसुरी निकाली। रागिनी बज उठी। उसने देखा, एक ओर हुई, छुम। और बेडनी थिरकती हुई बीच में थिरकने लगी और भी लड़कियाँ निकल आई और नाचने लगीं । वह बाँसुरी बजाता, रहा बजाता रहा।

चारों ओर सुगन्ध फैल रही थी। भीनी हवा चल रही थी। संगीत नृत्य की तालों पर थिरक रहा था। लोगों ने देखा, झूम उठे ! वे भी उठे। साथ हो लिए। हो हो कर नाचने लगे। आज देवी बहुत प्रसन्न थी, देवी का भेजा हुआ दूत आया है। नाचो, नाचो और ऐसा नाचो तन-मन सब नाच उठे। यह धरा, यह गगन, यह पवन, संगीत और नृत्य की लय में एक सुर हो जाँय।

२५

मृणाल ने धीरे से दर्वाजा थपथपाया। दर्वाजा धीरे से खुला। देखा, सामने रूपा खड़ी है, बोली—"अरी! अब तो दूज का चाँद हो गई है। दिखती भी नहीं।"

रूपा कुछ न बोली। सिर्फ इतना ही कहा—"आओ दीदी....।"

"आई ही हूं.. आज तुझसे लड़ने बोल", मृणाल ने कहा—"जबसे नरेन्द्र गये हैं, तबसे मेरी सुधि किसी ने भी न ली। न तूने ही। बोल क्या तुझे दया भी न आई।"

"दया.. दीदी! दया की भिखारी मैं हूं, जो चारों ओर से ठुकराई जाती हूँ, दुरदुराई जाती हूँ।" यह कह कर रूपा रो पड़ी।

वे कमरे में जा चुकी थीं। मृणाल ने उसे छाती से लगाते हुए कहा—"हैं हैं! यह क्या? तू तो बरस पड़ी। मैं तो मजाक ही कर रही थी।"

"मजाक ही करोगी? भाग्य ने मेरे साथ मजाक ही किया है?"

"अरे आज तुझे हो क्या गया है, कुछ कहेगी भी या मुझे भगाना चाहती है....तो जाऊं।"

"नहीं दीदी....नहीं....इतनी कठोर न बनो। मैं तो इसलिए नहीं मिल पाई थी कि मैं मुंह दिखाने लायक कहाँ रह गई थी। समाज में जबसे लोगों ने मुझे ठुकराया है तबसे मैं न कहीं गई हूं, न बाहर निकली हूँ। बोलो मैं अब इस लायक रह गई हूं कि...."वह रो पड़ी, "उपहास, उपेक्षा और तिरस्कार की वस्तु........।"

"अरे बस....इतनी सी बात", मृणाल बोली, "इससे तुझे क्या? वह तो मैंने एक बार सबको परखा था, देखें कौन माई का लाल आगे आता है....।"

"तुम भी दीदी मुझे समझ न पाई, इसी बात का दुख है । मैं भी एक नारी हूँ । मेरे वक्ष में भी एक नन्हाँ सा, मासूम सा दिल है, उसमें भी कल्पनाएं हैं.........इच्छाएं हैं । पर तुम्हें क्या ? तुम सम्पन्न हो, गरीब की हाय को क्या जानो ?"

मृणाल ने कहा—"मैंने सदा ही तेरा भला सोचा है । मगर जब तक तू कुछ कहे ही न तो मैं कैसे जानूँ....तू क्या चाहती है ? अगर तू मुझे अपना समझती है तो....।"

बीच ही में रूपा ने कहा—"मैं तो तुम्हारी हूँ दीदी... बस तुम्हारी.... अन्यथा न समझो । जो कहोगी वह करूंगी ।"

"तब फिर आज हृदय का जाल खोल दे, और बता क्या है, जो तुझे मथ रहा है ।"

रूपा एक ओर टकटकी लगाए कहा—"मैंने भी किसी को चाहा है । अपने मन में उसकी प्रतिमा संजोई है । पर कहने में डरती हूं कि कहीं स्वप्न भंग न हो जाए । वह आकाश का नक्षत्र है, मैं धूल का कण । बोलो कहाँ पहुँच होगी ? केवल तुम्हारी बाँह पकड़ कर उसके चरण छू सकूं तो धन्य हो जाऊं....।"

"मैं समझ गई ? तू किसके बारे में कह रही है ?"

"कौन....?" रूपा ने आँखे फाड़े पूछा ।

"अरे अपना वही सरीन ।" मृणाल ने कहा

"हाय ! दीदी । तुम तो सब भेद जानती हो ।" रूपा ने हंस कर कहा

"मुझसे छुपकर जाएगी कहाँ ?" मृणाल ने कहा, "अच्छा फिक्र न कर, सब ठीक हो जायगा ?"

"कैसे....?"

"सरीन आजकल मुरैना में है । मैं लॉ की डिग्री लेने आगरे जाऊंगी तो उससे बात कर आऊंगी....।"

"मैं भी चलूंगी आपके साथ ।"

"अच्छा चलना", मृणाल ने कहा, "पर अब तो तैयार हो जा । अपने को चलना है ।"

"कहाँ ?"

"अरे तुझे नहीं मालूम ! आज युवक सेवक समाज ने कवि सम्मेलन का आयोजन किया है, भंवरसिंह के सम्मान में।"

"वही, गोमा वाले भंवरसिंह।"

"हाँ वही ! तू तो बस यही एक भाषा जानती है। चल जल्दी तैयार हो जा····। अरी ताई कहाँ गई।"

"वे कीर्तन में गई हैं," रूपा ने कहा, "मैं अभी आई।"

रूपा बन संवर कर निकली तो मृणाल ने देखा, घटाएं फट चुकी थी, शुभ्र श्वेत चन्द्रमा निकल आया था। बोली—"आज तो तू बड़ी भली लग रही है, जी चाहता है····।"

बीच ही में रूपा ने कहा—"हटो दीदी ! तुम्हें तो हर दम मजाक ही सूझता है।"

दोनों आकर कार में बैठ गईं। ड्राईव करते हुए मृणाल ने कहा—"मालूम है कहाँ ले जा रही हूँ तुझे····?"

"कहाँ····?"

"झरने के पास, नदी किनारे····जहाँ····।"

"हाय दीदी···तम्हें कैसे मालूम····?" रूपा ने घबरा कर पूछा।

"मुझे सब मालूम है·······मुझ से तू क्या-क्या छुपाती है········ यह भी मालूम है।"

"माफ कर दो दीदी, अब गलती न होगी।"

"माफ क्या पगली ? ऐसी गलती रोजाना हों तो कम हैं ? यही तो बस छुपाने की बातें हैं····पर देख संभल कर रहियो····ये मर्द बड़े छलिया होते हैं।"

"मैं तुम्हारे बिना पूछे एक कदम भी न बढ़ाऊँगी····अच्छा पहेली न बुझाओ। बताओ कहाँ चल रही हो····?"

"कवि सम्मेलन में····पहले ही कह दिया····!"

टाउन हाल आ गया था। कार किनारे लगा कर दोनों उतरीं। अन्दर पहुँचीं। हाल खचाखच भरा था। सब से आगे सीट सुरक्षित थी। वे बैठ गईं। पास में देखा। मृणाल बोली—"वाह री गोमा ! तुम तो पहचान में ही नहीं आती····आज तो तुम्हारा ही दिन है···।"

"नमस्ते दीदी''''नमस्ते रूपाजी । आइए''''आइए''''। मैं तो प्रतीक्षा कर रही थी आपने इतनी देर लगा दी ।"

"अरे तुम जिसकी प्रतीक्षा कर रही हो, वह अभी स्टेज पर आता है।" रूपा ने कहा । सब हस पड़ीं ।

कार्यक्रम आरम्भ हुआ । आज का कवि सम्मेलन बहुत बड़े स्तर पर हो रहा था । देश के एक बड़े कवि उसका संचालन कर रहे थे । पहले स्थानीय उगते हुए कवियों ने कविता-पाठ किया । फिर अध्यक्ष उठे, बोले-"अब आपके सामने मैं एक ऐसे कवि को प्रस्तुत करते हुए गर्व अनुभव करता हूँ, जिसने अपने प्रदेश में माँ भारती की सर्वाधिक अर्चना की है । जिसके गीत जीवन की सच्ची परिभाषा हैं और जिस की भाषा जनता की आवाज है । स्वरमाधुर्य से वीणा के तार झंकृत कर देने वाले तरुण युवक में भ्रमर सी अतृप्तता है और गुंजन में मस्त मादकता है । अब मुझे अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं कि वह युवक कवि कौन है । वह है आप का अपना प्रिय कवि भँवरसिंह 'भँवर' ! आइए भँवरजी ।"

गोमा इतनी देर से कुछ समझ न पा रही थी । उसने देखा भँवरसिंह उठे । काली शेरवानी और सफेद ढीले पाजामें में सरल सौम्य रूप । जब वे माइक पर आए तो हाल तालियों की गड़गड़ाहट में डूब गया । गोमा ने देखा । आज फिर देखा कि भँवरसिंह कितनी ऊंचाई पर है । वह तो किसी लायक नहीं । ऐसे बड़े आदमी के लिए तो महान देवी चाहिए । जो पढ़ी हो, लिखी हो, जो उनकी कविता समझ सके, उसकी तारीफ कर सके । वह क्या जाने । वह गा रहे हैं । जनता उछल रही है । रूपा वाह-वाह कर उठती है । मृणाल ताली बजा उठती है । वह कुछ भी नहीं कर पाती । वह तो उनका मीठा-गीत सुन पा रही है, और कुछ नहीं। कब ताली बजानी है, कब वाह-वाह कहना है, उसे क्या मालूम ? यह सारी जनता उनकी एक एक पंक्ति पर मर मिटी जा रही है, पर उससे कुछ नहीं बन पा रहा है ।

मृणाल ने कहा—"बहुत अच्छा''''बहुत अच्छा''''क्या खूब लिखते हैं ।"

रूपा बोली—"सच दीदी''''इतना बढ़िया लिखते हैं, मुझे आज मालूम हुआ । जी चाहता है इनकी हर कविता को बार बार सुनूं ।"

मृणाल ने कहा-"गोमा को देखो ! कैसी गुदगुदा रही है । बोलती तक नहीं ।"

गोमा कुछ कहती कि रूपा बोल पड़ी-"गोमा के तो भाग जग गए दीदी ।"

भँवरसिंह ने कविता समाप्त की। जनता ने आवाज लगाई "फिर होगी... फिर होगी....।"

भँवर को रुक जाना पड़ा। उन्हों ने अपनी नई कविता सुनाई, जो गोमा को प्राप्त करने पर लिखीं थीं। जनता श्रृंगार में डूब गई। गोमा अपना पल्ला दांतों से कुतरने लगी। रूपा सुन कर लाल हो गई। मृणाल ने गोमा की चुटकी ली।

आधी रात तक कार्यक्रम चलता रहा। सब चलने को हुए। रूपा ने कहा, "दीदी! क्यों न भंवरजी और गोमा को अपनी कार में उनके घर छोड़ आएँ।"

"हाँ हाँ क्यों नहीं....," मृणाल बोली, "पर टाइम लगेगा। क्योंकि भंवरसिंह जी को मंच पर से आते देर लगेगी।"

"भले ही लग जाए! हम प्रतीक्षा करें। क्यों गोमा?" रूपा ने कहा।

"हाँ! हाँ!" गोमा कुछ कह न सकी।

वे थोड़ी देर वही चर्चा करती रहीं। इतने में भंवरसिंह आए, बोले- "गोमा....गोमा, बड़ी देर हो गई चलो।"

"चारों तरफ गोमा ही दिख रही है या और कोई भी दिखता है", रूपा ने कहा।

"अरे आप लोग भी रुकी हैं। अच्छा नमस्ते दीदी।"

"चलिए, आपको घर छोड़ आएं।" मृणाल ने कहा।

वे सब कार में आ बैठे। आगे मृणाल और रूपा। पीछे भंवरसिंह और गोमा। भंवरसिंह ने कहा, "आज आपको व्यर्थ कष्ट हुआ, दीदी.... ।"

"मुझे नहीं....मेरी गाड़ी को", मृणाल ने कहा और सब हंस पड़े।

"गोमा कैसी चुप बैठी है?" रूपा ने कहा।

"चकोरी चन्दा के पास पहुंच गई है।" मृणाल ने हंस कर कहा।

'चन्दा चकोर'। जैसे सौ बिच्छुओं ने गोमा को डस लिया। उसे याद आया। मोहन ने भी यही उपमा दी थी। पर क्या वह चन्दा था। आसमान का चन्दा कहीं ऐसा होता है। दुष्ट, नीच, पापी मेरा सब हरण कर गया। उसे स्वारथ ही सूझा। और कोई होता तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर देता। पर मास्टरजी...आकाश के चन्दा ही हैं। शीतल और सुहाने। इतने ऊंचे, इतने नम्र। उसके हृदय ने पुकारा 'गोमा! तू भंवरसिंह के बिलकुल लायक नहीं। तू ही इस

चन्द्रमा के दाग जैसी है। अगर तू न होती तो यह चन्दा और चमकता और सुहाना लगता। पर तू ने इसे भी कलंकित किया है। आज तूने इस का रूप देखा! कितना बड़ा कितना महान।'

वह जाने किन विचारों में खो रही थी कि उसका मकान आ गया। मास्टरजी ने दर्वाजा खोला, और उतर गए। वह भी गुड़िया सी उतरी। रूपां ने कहा—"दीदी! जो चाहता है कि भंवरजी के गीत फिर कभी सुने जाँय।"

मृणाल ने कहा "इन की स्वीकृति ले लो! अपने घर कभी प्रोग्राम रख लेंगे।"

"मुझे तो आपकी आज्ञा चाहिए?" भंवरसिंह ने कहा।

"अच्छा सोचेंगे", मृणाल ने कहा—"नमस्ते।"

"नमस्ते", दोनों ने हाथ जोड़े।

कार स्टार्ट हुई। आगे बढ़ गई। दोनों ने देखा, रूपा अब भी हाथ जोड़े उस ओर देख रही थी।

२६

अखबारों के चन्द टुकड़े

प्रसिद्ध डाकू बोधासिंह गिरफ्तार।

(१)

मुरैना २३ सितम्बर १९५५, आज पुलिस की सशस्त्र टुकड़ी व एस. ए. एफ. जवानों का दस्यु सम्राट् नाहरसिंह से सन्तपुरा में डेढ़ घण्टे तक मुकाबला हुआ।

घटना इस प्रकार बताई जाती है कि नाहर के साले जण्डेल की सन्तपुरा के चमारों से पुरानी रंजिश थी। जिसका बदला लेने के लिए यह डाका डाला गया था। रात के तीसरे पहर गाँव को डाकूदल ने घेर लिया।

ज्योंही पुलिस को खबर लगी। एक दस्ता जवान व पुलिस के सिपाहियों ने गाँव पहुँच कर घेर लिया। दोनों ओर से गोलियों की बौछार होती रही। इस धुँआधार में नाहर और उसका साला जण्डेल भाग गए, मगर पुलिस ने एक मौका हाथ से न जाने दिया। उसने नाहर के दाँए हाथ व दल के उपनेता बोधासिंह को भागते हुए गिरफ्तार कर लिया।

(२) बोधासिंह को मृत्यु-दण्ड

ग्वालियर २१ नवम्बर ५५, आज हाईकोर्ट में सन्तपुरा के प्रसिद्ध डकैत बोधासिंह की पेशी हुई। सरकारी वकील ने उसके विरुद्ध अपराधों व खूनों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की। मुलजिम की तरफ से न कोई वकील था न उसने अपने बचाव के लिए कोई प्रार्थना ही की। अदालत द्वारा उसे मृत्युदण्ड दिया गया।

(३) चम्बल क्षेत्र में भयंकर डाका

इटावा ३ फरवरी १६५६, इटावा, भिण्ड प्रसिद्ध क्षेत्र का कुख्यात डाकू मंगलसिंह पुनः सक्रिय हो गया है। चम्बल के किनारे के एक गाँव में अभी भयंकर डाके के समाचार मिले हैं। सुना जाता हैं कि दिन-दहाड़े लूट होती रही। डाकू-दल कई हजार नकद और जेवर ले गए।

बाद की खबरों से पता लगा हैं कि जब पुलिस वहाँ पहुँची तो डाकू पहुँच से दूर निकल गए थे।

(४) नाहरसिंह द्वारा एक साथ कई डाके

भिण्ड ५ मार्च १६५६—डाकू नाहरसिंह के दल द्वारा अजूरा गाँव दिन-दहाड़े लूटा गया। सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि बोधासिंह की मृत्यु से यह दल क्रोधित हो चुका है। पिछले एक सप्ताह में कई जगह डाके डाले हैं। अजूरा की मुठभेड़ में पुलिस के पांच आदमी काम आए।

(५) जनता डाकू और पुलिस के बीच त्रस्त

अम्बाह ३ जून १६५६—यह क्षेत्र मुरैना और भिण्ड जैसे दुर्दान्त डाकू क्षेत्र के मध्य में स्थित होने के कारण अनेक विषमताओं का सामना कर रहा है। यहाँ के लोग न केवल डाकुओं के अत्याचारों से त्रस्त हैं बल्कि पुलिस के अनुचित दबाव भी सह रहे हैं।

बताया जाता है कि सीसपुर ग्राम में रात ग्यारह बजे एक डाकू गिरोह आकर रुका। वे भारी मात्रा में माल लूट करके लाए थे। गाँव वालों को मालूम पड़ा तो चुपचाप घरों में घुस गए। पटेल को बुलाया गया। हुक्म हुआ भोजन का इन्तजाम करो। फिर क्या था एक एक घर से आटा, घी, शक्कर, आलू, दूध जबर-दस्ती लिया गया। आठ-दस आदमी टहल में लगे रहे। आधी रात तक खाना बनता रहा। दो बजे तक सब ने छक कर खाया, शराब पी। हुक्म हुआ, नाच-गाना हो। पास के गाँव से बेडिनी बुलाई गई। सुबह तक नाचती रही। भारी इनाम मिला। सुबह के झुटपुटे में डाकू दल चला गया।

सुबह लोग अपनी थकान भी न मिटा पाए थे कि पुलिस आ गई। गाँव के आदमियों को पकड़-पकड़कर पीटने लगी। कुछ को गिरफ्तार किया। गाँव वाले

एक साथ डर गए। धमकाया गया 'डाकू क्यों ठहराए गए ? मालूम होता है तुम्हारे कुछ लगते हैं। तुम भी उनसे मिले हो।'

बहुत खुशामद करने पर वे माने। पूरी-खीर से उनकी खातिर हुई। उन्होंने भी शराब पी और गाँव में ऊधम करते रहे। शरीफ घर वाले सांस साधे चुप बैठे रहे। शाम तक यह नाटक खत्म हुआ। चलते समय दो असहाय देहातियों को पकड़ कर ले गए। यही डाकुओं के मुखबिर हैं।

इस तरह से ये गाँव डाकू और पुलिस दोनों से ही परेशान हैं। ज्यों-ज्यों सरकार डाकू पकड़ने के प्रयत्नों का प्रसार कर रही है, इन गाँवों की मुसीबतें दूनी होती जाती हैं।

(६) डाकू उन्मूलन के व्यापक प्रयास

भोपाल ८ अक्टूबर १९५६—मध्यप्रदेश के नव-निर्माण के बाद प्रदेश के भाग्य विधाताओं ने अब और अधिक प्रयत्नों से डाकू समस्या का हल निकालने के प्रयत्न आरम्भ कर दिए हैं।

इसके लिए गृहविभाग में एक उपमंत्री की विशेष रूप से नियुक्ति हुई है तथा भारी बजट स्वीकृत हुआ है। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक परगना हैडक्वार्टर पर डी० एस० पी० के कैम्प रखे जाएंगे। छोटी जगहों पर थाने स्थापित किए जाएंगे और अधिक जवानों की भर्ती होगी।

(७) डी० एस० पी० श्री सरीन के साहसिक कार्य

मुरैना ३ मार्च ५७, डाकू उन्मूलन के ख्यात प्राप्त डी० एस० पी० श्री सरीन से जिले में सुरक्षा और शान्ति के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। सुना जाता है कि बीहड़ों में वे अकेले ही डाकुओं का पीछा करते हैं।

१ मार्च को प्रसिद्ध डाकू बब्बर ने नवासी पुरा में डाका डालना चाहा। उसकी खबर मिलते ही श्री सरीन आधी रात को अपनी जीप लेकर दौड़ पड़े। उनके साथ केवल चार सिपाही ही थे। गाँव में पहुँचते ही मालूम हुआ कि डाकू दल बिना डाका डाले ही भाग खड़ा हुआ। डी० एस० पी० साहब ने उसका पीछा किया। कुछ दूर बाद कोई चिन्ह नहीं मिला। अतः वापस लौटना पड़ा।

श्री सरीन की कारगुजारियों से नए तथ्य सामने आ रहे हैं। डाकुओं के अलावा वे थानेदारों के भी सिर दर्द बने हुए हैं। मौके व मौके वे थानों पर

आकस्मिक छापा मारते हैं। कई थानेदार गैरहाजिर पाए गए। वे सब मौअत्तिल किए जा चुके है। कई थानेदार रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों गिरफ्तार किए हैं। इनके विरुद्ध मुकदमा चल रहा है।

पदमपुर का थानेदार एक डाकू दल को गोलियां बेचते हुए पकड़ा गया। उसे सरीन साहब ने तुरन्त हिरासत में ले लिया।

एक थानेदार ने डाके की झूँठी रिपोर्ट दर्ज की थी। उस पुलिस अधिकारी ने एक दस्युदल से एक मुठभेड़ की झूँठी रिपोर्ट दर्ज की थी। उसकी इनक्वायरी के बाद मौत्तिल किया गया।

इस प्रकार और भी घटनाएँ है, जो श्री सरीन की तत्परता की गवाह हैं। आशा है श्री सरीन अपने प्रयास में सफलता प्राप्त करेंगे।

२७

जब से भँवरसिंह ग्वालियर आए थे। उनका जीवन बहुत व्यस्त हो गया था। उनको अनेक सभा सोसाइटियों, पार्टियों में जाना पड़ता। वे साथ में गोमा को भी ले जाते। वे चाहते थे कि गोमा का जी बहले, वह खुले और पुरानी यादें भूल जाय। मगर वे बराबर देख रहे थे कि गोमा पार्टियों में जाती जरूर थी, पर हर जगह अनमनी बनी रहती। वे उसे बाजार सैर कराने ले जाते, पर हर जगह उनके मित्र उन्हें घेर लेते। अखबार, पत्रिकाओं से भी बराबर उनकी रचनाओं की माँग आ रही थी। वे उसमें अपना अधिक समय देते। क्योंकि वे सत्तपुरा की सरकारी नौकरी छोड़ आए थे। सरकार को क्या पता था कि एक हीरा उसकी खान से निकला जा रहा है। आज भी बहुत-सी प्रतिभाएँ गाँवों में अविकसित दशा में पड़ी हैं, उन्हें कोई अवसर नहीं मिलता, नहीं तो वे सरकार के अधिक काम आ सकते हैं। शहरों में तो केवल ऊँची पहुँच वाले पहुँचते हैं। भँवरसिंह पहुँच या सिफारिश पर विश्वास नहीं करते थे, अतः उन्होंने त्याग पत्र देना ही उचित समझा।

व्यस्त रहते हुए भी उन्हें गोमा का पूरा ध्यान था। वे जो भी कविता लिखते, या छप कर आतीं, उसे सब से पहले सुनाते। मगर गोमा कुछ भी न समझती। उनके मुँह की ओर देखती तो देखती रह जाती। कभी-कभी उसकी बड़ी-बड़ी कटोरे-सी आँखें भर आतीं और वह भँवरसिंह के चरणों में गिरकर खूब रोती। भँवरसिंह उसे छाती से लगा लेते और ढारस देते। वे समझते, यह अपने पिता के वियोग के कारण विह्वल है, और वे अधिक प्रयत्नों में लग जाते कि किसी प्रकार उसके पिता को जल्दी ही बरी करा सकें।

मगर गोमा की जी की बात कोई नहीं जानता। वह अन्दर ही अन्दर

घुमड़ती । धुँआ उठता और वहीं घुट कर रह जाता। अनेक कवि सम्मेलनों, गोष्ठियों, पार्टियों में जाकर उसने भँवरसिंह की ऊँचाई देख ली थी और वह जानती थी कि कितना ही प्रयत्न करे इस ऊँचाई के लायक वह कतई नहीं है। बल्कि उसकी वजह से यह ऊँचाई लजाती है। वह अपने चारों ओर देखती। उसे सब ओर ऊंचाई दीखती । मृणाल, रूपवती और भी न जाने कौन कौन ? वह इनकी चरणों की धूल भी नहीं है । भँवरसिंह के साथ उसका जोड़ नहीं बैठता । इन जैसी ही कोई हो, तब इनका जीवन पूरा हो। मेरी क्या है ? मुझ पर तो दया खाकर इन्होंने मुझे मुसीबत में देखकर मेरी बाँह पकड़ी है। मेरे लिए तो ये भगवान हैं, जिन्होंने मुझ पतिता को उबार दिया है । पर मैं‥‥मैं‥‥किस लायक हूँ‥‥धूल की कंकरी भी नहीं। मैं अपढ़, गँवार, मूर्ख गाँव की लड़की और फिर मेरे पास अपना कुछ नहीं। सब कुछ खो चुकी हूँ। मुझे तो जहर मिलना चाहिए, जिसे पीकर सो जाऊँ और अपने पापों का मुँह ढक दूं । मेरे भगवान तुमने मुझे गले लगाया है, पर मैं तो तेरे चरणों की दासी हूँ। मुझे बस इन चरणों में ही पड़ा रहने दो, और जीवन की बाकी सांसे अपनी छाया में काट लेने दो। बस मुझे कुछ और नहीं चाहिए।

भँवरसिंह ने इतने ही प्रयत्न नहीं किए। वे उसे सिनेमा, नाटक आदि में ले जाते, उसे तरह-तरह की साड़ियाँ खरीदवाते, घर के सजाने की अनेक चीजें ले आते।

एक दिन उसे फूल बाग दिखाने ले गए। मोती महल दिखाया। झाँसी की रानी की छतरी दिखाई । दूसरे दिन बिस्कुट का कारखाना दिखाया। तीसरे दिन बिरला नगर सूती मिल दिखाने ले गए।

आज सुबह से ही भँवरसिहजी तैयार हो गए और बोले—"गोमा! जल्दी तैयार हो जाओ। अभी हमें चलना है।"

"मगर कहाँ‥‥? रोज तो जाते हैं‥‥।" गोमा ने पूछा।

"आज तुम्हें ऐसी चीज दिखाने ले जाऊँगा, जो ग्वालियर की शान है। नाम पीछे बताऊँगा। पहले तैयार हो जाओ।"

गोमा अन्दर चली गई। भँवरसिह गीत गुनगुनाते रहे । थोड़ी देर बाद गोमा सजी सजाई निकली तो बोले—"वाह ! आज तो तुम नई दुलहिन-सी लगती हो।"

गोमा शरमा गई। वे बाहर निकले। बाड़े पर आकर पहुँचे। टैक्सी ली। टैक्सी हवा से बातें करने लगी। गोरी चिट्टी गोमा सफेद वायल की साड़ी में बड़ी भली लग रही थी। भँवरसिंह उसे देखकर कविता की कोई कड़ी सोच रहे थे और वह जाने किन ख्यालों में खो रही थी।

टैक्सी ग्वालियर के पुराने शहर पहुँच गई ठीक किले के दर्वाजे के नीचे। दोनों उतरे। गोमा ने देखा, एक बहुत बड़ा द्वार। पूछा—"हम कहाँ आ गए स्वामी...."

भावों में तैरते हुए भँवरसिंह बोले—"ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर व उनकी प्रेयसी मृगनयनी रानी गूजरी की अमर यादगार ग्वालियर के किले में।"

'ग्वालियर का किला', ग्वालियर का किला' जैसे हजारों घन गोमा की छाती में मार दिये हों। भँवरसिंह आगे बढ़ रहे थे और गोमा मन मन भर पाँव लिए ऊपर को घिसट रही थी। 'हाय! यही ग्वालियर का किला है। यही वह किला है जिसे देखने के लिए मैंने अपना आपा डुबा दिया। यही वह किला है जिसका नाम ले ले कर मोहन ने मुझे लूटा। हाय यह क्या हो रहा है? मैं ज्यों ज्यों अपना दुख भूलना चाहती हूँ, घाव फिर फिर हरे हो जाते हैं। इस किले का एक एक पत्थर मुझे देख कर हंस रहा है। इसका एक एक द्वार मुझे देख कर गुमसुम खड़ा है। देखो चारों ओर कैसी मुर्दनी छा रही है। कैसा जीता जागता बोलता, चहलता पहलता किला मुझ कलंकिनी के पैर पड़ते ही पत्थर हो गया है। इसमें प्रेम की अमर देवी के महल हैं। और मैं........प्रेम के नाम पर देह का सौदा करने वाली............प्रेम को बदनाम करने वाली। उस पाजी मोहन ने कैसे पागल प्रेम का पाठ पढ़ाया था वह तो एक नम्बर का लम्पट था ही पर मुझे क्या हो गया था जो आदमी पहचान न सकी। मैं कुछ भी न कह सकी। उसने मेरा हाथ पकड़ा था, मैं उसके करारा थप्पड़ भी न मार सकी। वह अटारी पर चढ़ आया, मै उसे ढकेल न सकी। वह मेरी देह से खेलता रहा और मैं उसे डस न सकी। डस गई तो अपने घर को ही। बाप को जेल दिखा दी, भाई को जंगल। और ये........हाय इनका तो मोल नहीं चुका सकूँगी इस जन्म में। सब कुछ जान कर माफ कर दिया और अब देखो कितने जतन से मुझे रख रहे हैं, पर क्या मैं इनके इस पवित्र प्रेम की हकदार हूँ?'

भँवरसिंह कह रहे थे, "देखो गोमा, यह मान मंदिर है। इसमें बैठकर

मानसिंह अपने रत्नों के साथ संगीत की अमृतधारा बहाता था। और यह देखो सास बहू का मन्दिर और यह तेली का मन्दिर।"

गोमा बढ़ी जा रही थी, सोच रही थी। 'ये मन्दिर कैसे भले हैं। कितने पवित्र हैं। इनमें पवित्र आत्माएँ वास करती हैं। मैं अपवित्र इनमें क्यों जाऊँ क्यों इन्हें कलंकित करूँ ? ये मुझे कभी क्षमा न करेंगे। मेरे स्वामी भले ही मुझे माफ कर दें पर भगवान मुझे कभी माफ न करेगा।'

भँवरसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया, बोले—"गोमा देखो, चलो अन्दर। यह गूजरी रानी का महल। मानसिंह तोमर की प्रेमिका, जिसे वह गूजरों के गाँव से ब्याह कर लाया था, बड़ी रूपवती थी और बड़ी बहादुर थी। उसने एक अरने भैंसे को सींग पकड़ कर मार दिया। वह इतनी सुन्दर थी, जितनी तुम हो....!"

गोमा को जैसे सौ बिच्छुओं ने छू लिया। मृगनयनी, इतनी सुन्दर, जितनी वह। पर वह बहादुर थीं, और मैं कायर। वह पवित्र, मैं अपवित्र। वह अपने प्रेम के लायक थी और मैं किसी योग्य नहीं।

भंवरसिंह उसे ऊंचे कगार पर ले गए—"यह वह जगह है गोमा, जहाँ से कूद कर रानी की सहेली ने रानी के प्राण बचाने के लिए जान दे दी।"

गोमा का अन्तर चीख उठा, 'जान दे दी। रानी को बचाने के लिए। तब तू किस दिन काम आएगी गोमा। तेरे पति पर जो तू कालिख लगा रही है, उसे हटाने के लिए तू क्या करेगी ?'

वह चीख पड़ना चाहती थी कि उसकी चीख गले की गले में ही रह गई। भँवरसिंह ने देखा गोमा फटी फटी आँखों से सूखे सूखे अधरों से उनकी ओर देख रही हैं। भंवरसिंह ने कहा —"गोमा ......गोमा......शायद तुम्हारा गला सूख रहा है, लाओ, पानी ले आऊं।"

भँवरसिंह मुड़े। गोमा ने पैर पकड़ लिए। उनके चरणों की धूल मांथे से लगाई। मास्टरजी कुछ न समझे। ऐसा गोमा दिन में कई बार करती था, इसलिए भंवरसिंह मुस्कराकर आगे बढ़ गए।

गोमा मुड़ी, कगार पर पहुँची। उसके हृदय में तूफान उठ रहा था, और लगता था जैसे यह तूफान आज शान्त न होगा। उसने दोनों हाथों से अपनी छाती को कस लिया। उसने चारों ओर देखा। उसे मोहन दिखाई दिया जैसे वह जबरदस्ती उसे ढकेल रहा हो। उसने मुड़कर देखा। बन्दूक लिए जण्डेल खड़ा

कह रहा है—"मेरी आत्मा तुझे कभी माफ न करेगी।" उसने उधर देखा उसके बाप चौधरी रामचरण पटेल जेल के सींखचों में बन्द कह रहे हैं—"तूने बुढ़ापे में मेरे मुँह पर कालिख पोती है।" उसने इधर देखा—। भंवरसिंह खड़े मुस्करा रहे हैं।

उसने देखा भंवरसिंह उसे ऊपर खींच रहे हैं और वे तीनों उसे नीचे की ओर ढकेल रहे हैं। अब वह क्या करे। क्या करे वह। वह रो पड़ी—"मुझे माफ कर दो स्वामी ! मुझे माफ कर दो मैं तुम्हारा साथ न दे पाऊंगी। मेरे देवता मुझे माफ कर दो, इस जीवन में मैं तुम्हारे लायक न बन पाई। तुम्हें पाने के लिए मेरे भगवान मुझे दूसरा जन्म लेना होगा। मेरी देह जब तक चिता में तपेगी नहीं, तब तक खरी न होगी। इसलिए हे स्वामी विदा दो····विदा दो हे स्वामी।"

भंवरसिंह को चीख सुनाई दी—"विदा दो स्वामी।" तो वे उल्टे पैरों लौट पड़े। दौड़कर कगार पर पहुँचे तो देखा गोमा किले की दीवार कूद चुकी है और उसकी चीख हवा में गूंजकर रह गई और नीचे-नीचे, बहुत नीचे किले की तलहटी में जा गिरी है।

वे पागल से भागे। दौड़कर दर्वाजे पर पहुँचे। वहाँ से हक्का बक्का होकर किले के नीचे पहुँचे। देखा खून से लथपथ गोमा की लाश पड़ी है। सफेद वायल की साड़ी खून से दागदार हो गई है। उन्होंने जाकर लाश को गोद में उठा लिया। बार बार उसे चूमने लगे—"गोमा ! गोमा ! मेरी गोमा ! यह तुमने क्या किया ? मेरे सपनों में ठोकर मार कर तुमने यह क्या किया ? अब मैं किसके सहारे जिऊंगा ? तुमने यह क्या किया ? मेरा कसूर क्या था, जिसकी सजा तुमने मुझे दी ? बोलो····बोलो मेरी गोमा। अब मैं कहाँ जाऊं ? मैं तेरे बिना नहीं जी सकूँगा। तू तो मेरी कविता थी, मेरी प्राण थी। जब तू ही चली गई तो अब मेरे लिए क्या रह गया है ? गोमा····बोलो गोमा····यह तुमने क्या किया ?"

———

२८

बेडमी उछलती आई बोली—"बाबू ! लो तुम्हारा अखबार ।"

नरेन्द्र ने देखा, यह गोंड युवती उसका कितना ध्यान रखती है । डाक आते ही सर्वप्रथम लाकर देती है । सच अगर यह न होती तो यहाँ कैसे रहता । इस सूने, सूने से देश में । इस बेडमी ने ही सब संभाल लिया है । वही उसके लिए मील भर दूर से पानी लाती है, खाना बनाती है । बिस्तर बिछाती है, घर में उजेला करती है । उसके लिखने पढ़ने का सामान जमाती है और अखबार लाकर देती है ।

अखबारों की प्रमुख पँक्तियाँ पढ़ी—बीधासिंह को मृत्युदण्ड । मुरैना की जनता त्रस्त । उसका हृदय रो पड़ा । जो वह सोचता था वही हो गया । क्यों नहीं किसी को विवेक छू भर गया है । क्यों होता है ऐसा । इस नश्वर, अपार्थिव संसार को तिनके से स्वार्थ के लिए जीवन का संघर्ष । उसकी आँखों में, मुरैना भिण्ड के बीहड़ के गाँव नाच गए । जहाँ की लहलहाती फसलों के बीच खड़ा किसान चारों ओर बन्दूक, गोली, संगीन हथकड़ी की घटाएं देख रहा है और कत्ल, डाके, अपराध मुकदमे उसकी खड़ी फसल में आग लगाए दे रहे हैं ।

उसने गरदन झुका ली । उसकी आँखों से दो गरम गरम बूंदें अखबार पर गिर कर फैल गईं । बेड़मी ने देखा तो छाती पर हाथ रख लिया—"हाय ! बाबू ! रोता है । क्यों रोता है बाबू ? बताओ न बाबू ! तुम्हें मेरी कसम ।"

नरेन्द्र ने उसकी ओर देखा और देखता ही रहा । जैसे कह रहा हो, बेड़मी तेरी जैसी कई कुमारियाँ और भी इस देश में सुहाग के सिंदूर के बजाय खून में नहाती हैं । मुझे मेरी दुनिया बुलाती है, बेड़मी । मुझे जाने दो ।

बेड़मी ने देखा, न बाबू कुछ बोलता है न सुनता है । वह दौड़ी दौड़ी

गई और अपने कबीले के लोगों को बुला लाई—"अरे रे ! दौड़ो, बाबू रोता है···· अपना बाबू·········उसकी आँखों में आँसू ।"

सब गोंड युवक युवतियाँ घिर आए । नरेन्द्र को चारों तरफ से घेर लिया, बोले—"यह क्या,—क्या बात है बाबू·········हमें बताओ तो·········किसी ने तुम्हें छेड़ा है । हम अभी खून कर दें ।"

नरेन्द्र ने देखा, गोंड युवक-युवतियाँ उसकी ओर देख रहे हैं । उनकी मुंदी आँखों में एक प्रश्न है, उनके मोटे मोटे ओठों में एक भाषा है ।

वह उठा । सबको गले लगाया । बोला—"कुछ भी तो नहीं मेरे भाई । यह तो जीवन की रिमझिम है । कभी अंधेरा, कभी उजाला । अंधेरे से घबराना थोड़े ही है । हमें आगे ही बढ़ना है । रुकना नहीं ।"

गोंड़ नौजवान उसकी ओर देखते रहे । वे न समझे कि क्या बात है । नरेन्द्र बोला—"चलो ! अपन आज का काम करें ।"

'स्कूल का समय हो गया है बाबू ।" रेशमा बोला ।

'हाँ ! चलो ।"

नरेन्द्र एक चौड़े पेड़ के नीचे आ गया । वहाँ मिट्टी का एक ऊँचा चबूतरा बनाया हुआ था । जो कुर्सी का काम देता था । सब गोंड युवक युवतियाँ भूमि पर कतार बाँधे बैठ गए । नरेन्द्र ने सबके पास जाकर पूछा—"कहो, कल का पाठ याद हो गया न ।"

"हाँ ! हाँ ! सुनाएँ·····", चारों तरफ से आवाज आई ।

"तुम सुनाओ कोलम····।"

कोलम खड़ा हो गया, पढ़ने लगा—"महात्मा गान्धी ने हमें यही बताया कि हम अपनी भावनाओं पर विजय प्राप्त करें । किसी का जी न दुखाएँ····सबका भला करें ।"

'सबका भला' नरेन्द्र का हृदय धूधू कर उठा । कैसे हो सबका भला । कोलम पढ़ता रहा । वह बैठ गया । नरेन्द्र ने कहा—"आज का पाठ पढ़ें"—हमारा देश ।"

'हमारा देश ! भारतवर्ष', काश्मीर से कन्याकुमारी तक हमारा प्यारा देश है, जिसकी हम सब सन्तान हैं । सब भाई भाई हैं ।'

नरेन्द्र ने सोचा—सब भाई भाई हैं, तो फिर ये सब लड़ते क्यों हैं ? भाई भाई से लड़ता है, एक दूसरे को लूटता है, खून करता है ?

टाइम हुआ। घण्टा बजा। कताई का घण्टा आया। सबके पास जाकर देखा। "अरे तुमने सूत नहीं काता, आज पूरा कात कर उठना। और तुम''''यह कुछ मोटा है ''''बारीक कातोगे तो तुम्हारा कुर्ता भी बढ़िया बनेगा।"

दिन भर नरेन्द्र लगा रहा। तीसरे पहर खेतों में गया। वहाँ देखा। क्यारियाँ ठीक बनी हैं। पानी दिया जा चुका है। बीज बोए जा चुके हैं। किसी दिन इन क्यारियों में बड़े बड़े गोभी के फूल लगेंगे। प्यारे प्यारे फूल। जिनकी सौंधी गन्ध से ये मस्त हो जायेंगे और जानेंगे कि मांस-मदिरा के सिवा और भी बहुत सी चीजें हैं खाने को।

शाम को वह गाँवों में घूमा। देखा रग्घू मुँह फुलाए बैठा है, बोला—"अरे अभी गुस्सा शान्त नहीं हुआ। तुम दो दिन मौन व्रत रखो। सब ठीक हो जायगा।"

"अरे इसको क्या हो गया है ?" नरेन्द्र ने पूछा।

माँ ने फफकते हुए कहा—"खेलने में पेड़ से गिर पड़ा बाबू !"

"ओह ! लाओ मुझे दो, मैं मरहम पट्टी कर दूँ।" उसने बच्चा गोद में ले लिया। काला काला घिनौना बच्चा। छाती से लगा लिया। साफ गर्म पानी से घाव धोया। अपने थैले में से दवा निकाली। उसके लगायी। साफ सफेद पट्टी भली प्रकार बाँध दी। बच्चा मुस्कराने लगा। माँ खिल उठी, जैसे दौलत मिल गई हो।

वहाँ से उठा। फनकू दादा के यहाँ गया। सिर झुकाए बैठे थे। बोला—"अरे यह क्या ! आज चौपाल पर न चलोगे दादा ?"

"क्या जाऊँ बाबू ! तेगमा घर से भाग गया है। कहता था ! मील में नौकरी करूँगा। अपनी जात में नौकरी कौन करता है बाबू। नौकरी तो गुलामी होती है।"

"कौन कहता है दादा ! नौकरी, तो अपने पसीने की कमाई होती है। यहाँ रहकर वह क्या करता। चोरी करता, खून करता। अब काम सीखेगा, पैसे लाएगा।"

"मगर न जाने कितनी दूर है। कैसा है मेरा लाल ?"

"उसकी चिन्ता न करो। लाओ चिट्ठी लिख दूँ। वहाँ पहुँच जायगी।"

नरेन्द्र ने पोस्ट कार्ड निकाला। लिखा, पढ़कर सुनाया । दादा उछल पड़े, बोले—"यह कितने रुपए की है। वहाँ पहुँच जायगी ?"

'चार पाँच दिन में पहुँच जायगी । यह छः नए पैसे का कार्ड है दादा। इन छः नये पैसों में सारे देश में किसी से बात कर सकते हैं दादा।"

"जुग जुग जीयो बेटा।"

वहाँ से लौटा । रात को प्रौढ़ पाठशाला लगाई। किसानों को खेती के गुर बताए। औरतों को घर का सलीका बताया।

साढ़े दस बजे वहाँ से उठा। सीधा अपनी झोंपड़ी में गया। देखा बेडमी बिस्तर कर रही है। उसने पसीना पोंछा। कपड़े उतारे। खाट पर बैठ गया। बेडमी पानी ले आई। नरेन्द्र ने हाथ पैर धोए। मोटी मोटी रोटी खाईं। बिस्तर पर लेट गया।

"बाबू! तुम दिन-रात लगा रहता। इतनी मेहनत क्यों करता? थक जायगा।" बेडमी बोली।

वह कुछ नहीं बोला, अधमुंदी पलकों से निहारता रहा। बेडमी उसके बालों में हाथ फैरती रही । कोई गोंड़ गीत गुनगुना रही थी, जिसके बोल इस प्रकार थे–

'बैला चलिन राई घाट, करौंधा बैला छोटे छोटे रे।'

नरेन्द्र एकटक देख रहा है, गीत का अर्थ समझने की कोशिश कर रहा है—'ओ छोटे छोटे बैल ऊँचा घाट किस प्रकार पार करोगे।'

बेडमी गा रही थी—'डोंगर में आगे लगै जरथै पतेरा
सुन सुन के हीरा मोर जरथे करेजा'

और नरेन्द्र सोच रहा था, कैसी है यह निरीह बाला। ताँबे का सा रंग, लोहे सा शरीर, फूल सा हृदय। कौन है यह। जन्म-जन्मान्तरों से जानी-पहचानी सी। कहीं मृणाल ही तो नहीं है, जो परछाईं बन मेरे साथ भटक रही है। बोलो बेडमी! तुम कौन हो? कौन हो तुम····?

२६

चाँदनी रात है। वायु शान्त है, वातावरण स्तब्ध है। चम्बल अपनी उत्ताल तरंगों में किनारों को समेटे ले रही है। इस नीरवता में जब तब लहरों के टकराने की गर्जना सुनाई पड़ जाती है और कोई कोई ऊँची लहर उस पुल को स्पर्श कर जाने की लालसा कर उठती है। यह पुल जो मुरैना और आगरा के बीच धौलपुर के पास चम्बल की असीमताओं को बाँधे दो क्षेत्रों के हृदय जुड़ाने के लिए संकल्पबद्ध है, जिस पर दिन भर आवागमन का कोलाहल सजीवता उत्पन्न करता है, इस समय विरहिणी की सेज सा सूना सूना पड़ा है। दूर, बहुत दूर, किनारे पर कोई घुटनों में मुँह दिए कोई युवक बैठा है, शायद वह अपने में ही व्यथित हो। जिसके हृदय में ज्वार उठ रहा हो, उसे नदी की ज्वार क्या दिखाई दे। उसने मुँह ऊपर उठाया। उनींदी आँखों में खोया संसार नाच रहा था। वह सिसक पड़ना चाहता था, मगर उसकी तड़पन उसके कण्ठ में ही घनीभूत होकर जड़ रह गई थी।

वह देखता रहा। विशाल, पूर्ण चन्द्र, अनगिनत तारे। वह देखता रहा, नदी के अल्हड़ यौवन की उठती हुई लहर, जो किनारों को अपने में समेट लेना चाहती थी। वह देखता रहा, चारों दिशाएँ, जो जहाँ की तहाँ खड़ी थीं। वह देखता रहा, देखता रहा शून्य सा।

अकस्मात दिखाई दिया। पुल के दूसरे किनारे पर परछाईं मात्र दूर एक झांई जैसी आकृति। श्वेत विराम चिन्ह सा। उसने देखा, परछाई स्पष्ट होती जा रही है। हवा में उठता हुआ आँचल उसे दिखाई दिया। उसने बढ़ती हुई प्रतिमा को देखा कि वह पुल के ऊँचे किनारों पर चढ़ गई है और वातावरण में स्पष्ट दिखाई दे रही है, वायु में झूलती सी उसकी कोमल काया। उसने देखा,

वह भयभीत हो गया। वह क्या होने जा रहा है। क्या वह जीवन भर यहीं देखता रहेगा। वह उठा और दौड़ा कि किसी प्रकार उन पागल इरादों को रोक ले। उससे पहले कि वह वहाँ पहुँचे, उसने एक कलेजे को चीर जाने वाली चीख पानी और आकाश के बीच सुनी और दूसरे ही क्षण नीचे पानी के बुलबुलों का घेरा बड़ा हो गया और लहरें अपने बीच किसी बड़ी वस्तु को पा नाचने लगीं।

युवक को सोचने, समझने और निर्णय करते देर न लगी। वह उसी क्षण, जैसा खड़ा था वैसा ही बाहें फैलाती हुई लहरों में कूद पड़ा। पानी के थपेड़ों में हाथ पाँव मारने लगा। वह तैरता रहा। दूर एक काली सी वस्तु उसे दिखाई दे रही थी। वह उसी ओर बढ़ रहा था। वह बढ़ता ही रहा, बढ़ता ही रहा।

तैरते-तैरते उसे लम्बे काले बाल हाथ में आ गए। वह उन्हीं के सहारे बढ़ा और एक स्थूल शरीर को पा लिया। उसने उसे अपने कन्धे का सहारा दिया और एक हाथ में पानी को पीछे धकेलने लगा। वह बीच मंझधार में भँवरों से लड़ रहा था और किनारा दूर बहुत दूर दिखाई दे रहा था। वह जूझता रहा और बढ़ता रहा। वह हाथ चलाता रहा, पैर पीटता रहा। अब किनारा थोड़ी दूर रह गया था। मगर उसके सारे अंग शिथिल हो चुके थे। लगता था जैसे वह एक हाथ भी आगे न बढ़ सकेगा। उसने फिर साहस किया। अपने अन्दर की पूरी शक्ति समेटी और किनारे को पकड़ लेने की प्रबल चेष्टा की। उसकी श्वास फूल रही थी। छाती धौंकनी सी चल रही थी और पैर मन-मन भर के हो गए थे। अब वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता था। उसने देखा किनारा दो हाथ पर ही रह गया है उसने पूरा जोर लगाया और अपने कन्धे पर की लाश को ढकेल कर दूर रेत में फेंक दिया और स्वयं अचेत होकर वहीं पड़ा रह गया। लहरें उसके चरण धोती रहीं।

रात के तीसरे पहर उसकी चेतना लौटी। थकान से चूर अंगों को समेटता उठा वह और देखा उसकी मेहनत किनारे के रेत पर बिखरी पड़ी है। उसे ख्याल आया। उसने शरीर को औंधा किया और उसके अन्दर का सारा पानी निकाला। अब शरीर हल्का हल्का सा हो गया था। वह उसे उठा कर पुल के

नीचे ले गया, जहाँ उसका सामान पड़ा था। उसने एक मोटे कपड़े से सारे शरीर को पोंछा, साफ किया। उसने उसे बनावटी साँसें दीं और प्रतीक्षा करने लगा।

अकस्मात् उसे चीख सुनाई दी। उसने संभाला। सुना—"छोड़ दो मुझे, छोड़ दो मुझे। मर जाने दो। मुझे जीने का अधिकार ही क्या है ?"

उसे प्रसन्नता हुई। प्राण लौट आए। वह उसकी हथेली सहलाता रहा। उसने देखा कि शरीर में चेतना उभरती आ रही है। उसने करवट लिया, इधर-उधर देखा, उठने की कोशिश की। युवक ने सहारा दिया। उसे सुनाई दिया—"कौन हो तुम ? मैं कहाँ हूँ ?"

"आप नदी में डूब गई थीं……।"

"क्यों बचाया मुझे……मुझे क्यों बचाया ? बोलो, मुझे मर क्यों नहीं जाने दिया ? मुझे डूब क्यों नहीं जाने दिया ? मैं डूबने तो आई ही थी।"

"आप बिल्कुल भीग चुकी हैं। उधर जाकर कपड़े बदल लीजिए। मेरी मर्दानी धोती और सफेद कुर्ता वहाँ रखा है।"

"ओह……," उसने अपनी ओर देखा। वह अपने में सिमट गई। धीरे से उठी। पुल के कोने में पहुँच कर कपड़े बदले और आ गई, बोली—"और तुम तुम भी तो भीग गए हो। तुम क्या पहनोगे ?"

"मैं ठीक हूँ……आप आराम करें।"

"आराम……अब इस जीवन में आराम कहाँ है। सदा-सदा के लिए आराम खोजने चली थी, वह तुमने छीन लिया। मेरे उद्देश्य में बाधा खड़ी करने वाले तुम कौन हो…… ?"

"…………"

"बोलते क्यों नहीं ? ……यह भयावह रात……यह सुनसान……मैं अकेली…… कैसे समय कटेगा ?"

"समय कटेगा, अपने मन की व्यथा सुना कर। अगर आप मुझ पर विश्वास कर सकें तो……।"

बीच ही में वह बोली—"विश्वास नहीं करूँगी अपने जीवन दाता का तो किस का करूँगी। पर जब-जब मैंने विश्वास किया है, मैं पछताई हूँ।"

"तब फिर मैं क्या कहूँ……जैसे आप समझें।"

"अरे बुरा न मानो, मैं सच ही कह रही थी, मुझे विश्वासघात ही मिला है। पर तुम्हें उससे क्या ? तुम तो अपनी कहो……।"

"मैं मेरे पास तो अपनी कुछ भी नहीं है कहने को।"

"बड़े भोले हो तुम····यहाँ तो ज्वार उठ रहा है।"

"जभी तो कहता हूँ कि मन की व्यथा को बाहर निकाल फेंको। अपना दुख कह लोगी तो यह ज्वार खत्म हो जाएगा।"

"तुम मानोगे नहीं····इस जीवन में दुख ही दुख देखा है मैंने। यह सब आग कुरेदवा कर एक नया दुख क्यों देते हो मुझे ?"

"अच्छा नहीं दूँगा दुख····चला जाता हूँ यहाँ से।" वह चलने को उद्यत हुआ।

"है, हैं, मुझे अकेली छोड़ कर जाओगे।"

"क्या करूँ मुझ से तुम्हारा दुख नहीं देखा जाता, तुमसे कहा नहीं जाता।"

"अच्छा कहती हूँ, पर वायदा करो···।"

"क्या··?"

"मेरी कहानी सुन लेने पर मेरा नाम तो न पूछोगे ?"

"नहीं पूछूंगा····वायदा करता हूँ।"

"तब सुनो।"

पुल के नीचे रेत में ऊँचाई की ओर खम्भें का सहारा लिए वह बैठी थी और यह किनारे पर लहरें गिनता सा। उसने कहना शुरू किया—"जनम की अभागी हूँ मैं। पैदा हुई तो माँ विधवा हो गई। जवान हुई। फेरे पड़े। सुहाग-रात भी न देखी कि मेरा सुहाग छिन गया। माँ मुझे बचाती छुपाती पालती रही कि एक सहेली मिल गई। बहुत बड़े घर की रोशनी। उसने सहारा दिया और दुनियां के बीच में लाकर खड़ा कर दिया मुझे। मैंने सब देखा, जाना, पहचाना। उसी सहेली के यहाँ एक पुलिस अफसर से परिचय हुआ। वह मुझे भा गया। उसकी आँखों में मैंने अपने लिए एक चाह देखी। एक दुर्घटना में उस अफसर ने मेरी जान भी बचाई और इज्जत भी। एक दिन वह अपनी कार में ले गया, दूर-दूर जहाँ जंगल था, झरना था, नदी थी। वहाँ उसने मुझ से प्रणय दान माँगा। मैं निहाल हो गई।····सुनते हो····?"

"हूँ····फिर क्या हुआ।"

"मैंने अपनी सहेली से कहा। उसने सब कुछ करने का बीड़ा उठाया। परसों ही वह मेरे साथ मुरैना आई। मुरैना में पुलिस अपसर के यहां गए। मैं

बाहर बैठी रही। मेरी सखी और वे अन्दर बातें करते रहे। बातें हो रहीं थीं और मेरे कलेजे में छुरियां चल रही थीं।"

"क्यों···क्या बात हुई ?"

"अरे इतना भी नहीं समझते। उसने साफ इंकार कर दिया।" मेरी सखी से बोला—'मैं तो तुम से शादी करना चाहता हूँ···केवल तुम से ?'

मेरी सखी ने कहा—"तब फिर तुमने उसके साथ प्रणय का नाता क्यों जोड़ा था। क्या उजेली रात में प्यार की कसमें इसलिए खाई थी कि उसका जीवन अन्धकार में ढकेल दो। क्या कभी पूरे न करने के लिए ही वे वायदे किए थे।"

"तब फिर उसने क्या कहा ?"

"वह बोला—'सच मानो ! उसके लिए मेरे हृदय में प्यार जगा था पर मैं सदा ही तुम्हारी पूजा करता आया हूँ। और फिर मैं तुम्हारी आज्ञा कभी न टालता। तुम जानती हो, वह विधवा है···और विधवा से मैं शादी नहीं कर सकता।"

"अच्छा ! यह कहा उसने ?"

"हां ! मुझे तो जैसे सौ सांपों ने डस लिया। जी हुआ, पूछती—'पहले नहीं मालूम था मैं कौन हूँ ? क्या हूँ ? आज के नौजवान बिना सोचे समझे आगे बढ़ते ही क्यों हैं ? निर्मोही···तूने प्यार को बदनाम कर दिया।"

"ऊँ·······फिर·······?"

"फिर क्या ? मैं उसका मुँह बिना देखे ही उठ आई। मेरी सहेली भी लौट जाने को कह कर आगरा चली गई। पर मैं लौट कर जाती कहाँ ? सोचा, इतनी हतभागी हूँ···तो चम्बल ही मुझे शरण देगी। पर वहाँ भी तुमने मुझे शान्ति न मिलने दी। अब मैं कहाँ जाऊँ, बोलो।"

"तुम चिन्ता न करो ! मेरे साथ ग्वालियर चलो। रूपा ! मैं सब ठीक कर दूँगा।"

वह सहमी, एक साथ उठ खड़ी हुई। उसके कन्धे झकझोरती हुई बोली, "अरे ! तुम तो मुझे पहचानते हो। कौन हो तुम···?"

चाँदनी की ओर मुँह करके वह बोला—'मुझे नहीं पहचानती। मैं हूँ भँवर···।"

"ओह ! आप भँवरसिहजी····यहाँ कैसे····इस तरह क्यों···· ?"

"सोच रहा था····इसी तरह जिन्दगी काट दूँगा, पर विधाता को मंजूर नहीं । गोमा ने किले पर से कूद कर जान देदी । मैं किसके लिए जिऊँ ?"

"ऐसा मत सोचो, भँवरसिह जी ! आप दूसरों को जीवन देने वाले हैं । दूसरों को राह पर लाने वाले खुद गलती कैसे करेंगे···· ?"

"मैं क्या करूँ रूपाजी····मेरी तो दुनिया ही लुट गई । जैसे तैसे एक घरोंदा बनाया था, वह भी टूट गया ।"

"आप धीरज न खोएं । विधाता को न जाने क्या मंजूर हो । अब यही देखिए । क्या सोच कर चली थी, क्या हो गया । चम्बल के किनारे दो टूटे हुए दिल आकर मिल गए । आपने मुझे जीवन दिया··· ।"

"और आप ने मुझे फिर से दुनिया में वापस चलने को मजबूर किया ।"

"भँवरजी" रूपा ने पास खिसक कर कहा—"हम दोनों एक ही नाव के यात्री हैं । एक ही दुख से दुखी । क्यों न समझौता कर लें ।"

"कैसा समझौता···मैं समझा नहीं रूपाजी···· ।"

"यही आपको सहारे की आवश्यकता है और मेरे लिए यह बड़े सौभाग्य की बात होगी, अगर आप········ ।"

"नहीं···नहीं रूपाजी ! यहीं आप भूल करती हैं । सरीन की तरह आप भी प्यार का मर्म नहीं जानती । प्यार जीवन में एक ही व्यक्ति से केवल एक बार ही किया जाता है । तुमने जिसे एक बार चाह लिया, वही तुम्हारे प्रणय का अधिकारी है । जो सपना देख लिया, वह पूरा होना ही चाहिए ।"

"सपने कभी पूरे होते हैं भँवरजी ।"

"तब फिर वे देखे ही क्यों जाते हैं ? मैंने तुम्हें बचाया है तुम्हें, तुम्हारा जीवन, तुम्हारी दुनिया वापस देने के लिए, न कि खुद पा जाने के लिए । अगर ऐसा हुआ तो यह सब से बड़ी आत्मप्रवंचना होगी, जिसके लिए मैं स्वयं अपने को क्षमा न कर सकूँगा ।"

"तब मुझे भाग्य के थपेड़े खाने के लिए फिर अकेली छोड़ दोगे ।"

"नहीं ! मैं वायदा करता हूँ कि जब तक तुम्हें अपनी मंजिल तक न पहुँचा दूँ, मैं शान्ति से नहीं बैठूँगा ।"

"तब तो मैंने आपको फिर परेशानी में ही डाला ।"

"परेशानी में नहीं रूपा ! तुमने मुझे जगा दिया। मेरे अन्दर वैराग्य घर कर गया था, अब कुछ करने की चेतना जागी है। हम निराशाओं से थक नहीं जाँए, उन पर विजय प्राप्त करें, यही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।"

"तब फिर क्या करें ?"

"उठो ! अपन दोनों ही ग्वालियर चलें और अपनी अपनी मंजिल पर पहुँचने की कोशिश करें।"

"और···· ?"

"और तुम अपनी माँ की सूनी गोद को खुशियों से भरो। मैं पुत्र और पुत्री के वियोग से पीड़ित ठाकुर की रिहाई का प्रयत्न करता हूँ। अच्छा रहे, यदि मृणाल देवी के आने से पूर्व हम दोनों अपने अपने स्थानों पर पहुँच सकें।"

"आपने मुझे जीवन दिया, और सही मार्ग दर्शन भी। मैं आपकी चिर ऋणी रहूँगी।"

"मैं कुछ नहीं करता। सदा ही कर्तव्य निभाता आया हूँ। चाहता हूँ जीवन भर इस पथ से डिगूँ नहीं·······। सुबह होने को है, चलें स्टेशन पर एक्सप्रेस आने को है·······।"

"चलिए·······चलें।"

३०

आगरा कैंट पर पंजाब मेल रुका। सैकण्ड क्लास में से मृणाल उतरी। इसी समय मथुरा से जनता एक्सप्रेस आ चुकी थी। इसलिए गेट पर भीड़ अधिक थी। मृणाल सैकण्ड क्लास लेडीज़ वेटिंग-रूम में जाने के लिए बढ़ी। सोचा वहाँ थोड़ा व्यवस्थित हो लूँ, फिर होटल गोवर्धन में कमरा लेगी और कल यूनीवर्सिटी से डिग्री प्राप्त करेगी। वह दर्वाजा खोल कर अन्दर प्रवेश करना चाहती थी कि गेट पर कुछ शोर सुनाई दिया। कुली से सामान रखवा कर उस ओर को बढ़ गई। देखा रेलवे के कर्मचारी, पुलिस कांस्टेबिल और कुछ लफंगे एक असहाय लड़की को छेड़ रहे हैं। उसके अन्तर में ज्वाला दहक उठी। वह टिकट चेकर के पास पहुँची और पूछा—"क्या आप बताने का कष्ट करेंगे कि इस निरीह युवती को आपने क्यों रोक रखा है?"

"जी, इसके पास टिकट नहीं हैं, अभी जनता से उतारा है।"

"कहीं से भागी हुई मालूम होती है।" सिपाही बोला।

एक उजड्ड सा आदमी बोला—"आप किस किस की फिक्र करेंगी मेम-साहब! यहाँ तो रोजाना ही ऐसी कितनी बहानेबाज आती हैं।"

मृणाल ने देखा, साँवली सी लड़की पलकें झुकाए बैठी है। उसने गौर से देखा, हाय''''यह क्या? उसने जल्दी से पर्स खोला, हड़बड़ा कर पूछा—"कितना चार्ज लेना है आपको।"

"दिल्ली से चार्ज होगा''''''। दस रुपये सत्तर नए पैसे।"

"लीजिए यह''''", उसने पैसे देते हुए कहा, "इसका पीछा छोड़िये।"

चैकर टिकट काटने लगा। मृणाल ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"चलो मेरे साथ''''।"

वह पलकें झुकाए उसके पीछे हो ली । वेटिंग रूम में जाकर मृणाल बोली—"यह लो कपड़े और गुसलघर में नहा धो कर, बाल संवार कर जल्दी तैयार हो जा । चलना है।"

लड़की ने सिर उठा कर देखा, उसकी इज्जत बचाने वाली और एहसानों से लाद देने वाली यह देवी कौन है ? उसने देखा तो मुंह खुला का खुला रह गया—"ओह ··दीदी ·आप।"

"मैं तो तुझे पहली नजर में ही पहचान गई थी।"

"दीदी····" जैसे वह रो पड़ना चाहती हो।

"अच्छा पहले कपड़े बदल, फिर बात होगी"

डायना गुसलघर में गर्दन झुकाए चली गई। मृणाल ने डिनर का ऑर्डर दिया और खुद भी बन संवर कर बैठ गई। डायना निकली तो रूप बदल चुका था। काली कलूटी लड़की की जगह अब साँवली सलोनी डायना, फटे मैले कपड़ों के बजाय शुभ्र श्वेत वस्त्रों में भली लग रही थी। मृणाल ने कहा—"बैठो····।"

वह बैठ गई। दोनों ने खाना आरम्भ किया। मृणाल ने देखा कि डायना खाने पर टूट सी पड़ी है, जैसे वह कई दिन से भूखी हो। मृणाल ने परम सन्तोष की साँस ली।

खाने के बाद सामान संभाला। मृणाल ने टेक्सी बुलाई। और सीधी होटल गोवर्धन पहुँची। बैरा कमरे में सामान रख आया। मृणाल डायना का हाथ पकड़े कार में से उतरी। सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर वाले कमरे में पहुँची। दर्वाजा हटाया ही था कि डायना उसके कन्धे से झूल ही गई। मृणाल संभाले सभाले कि डायना गश खाकर गिर पड़ी। ··

उसे कोच पर लिटाया। मृणाल दौड़कर मैनेजर के पास गई। पास के एक नामी डाक्टर को फोन किया। मृणाल एक साथ घबड़ा गई हाय यह क्या हुआ। पाँच मिनट बाद डाक्टर और नर्स दोनों आए। भली प्रकार डायना को देखा। आपस में धीमें धीमें बातें हुई। डाक्टर ने कहा—"मृणाल देवी ! आपकी सहेली को पाँच महीने का गर्भ है।" यह कह कर वे चले गए।

'पाँच महीने का गर्भ !' मृणाल को लग रहा था कि यह आकाश एक साथ बरस पड़ेगा। यह क्या किया डायना तूने ? डायना सचेत हो गई थी, कराहती हुई बोली—"दीदी····मुझे माफ कर दो दीदी····मुझे माफ कर दो।"

मृणाल कुछ बोली नहीं । उसकी तरफ देखती रही । डायना के अधर थर थर काँपते रहे, पलक छल छल भीगते रहे । मृणाल ने किवाड़ें बन्द कर दीं, बोली—"डायना ! तूने नारी जाति को कलंकित किया है । सच सच बता क्या तेरी भूख का यही अन्तिम उपाय था ?"

"नहीं····नहीं··दीदी । मुझे गलत न समझो । मैं सब सच सच बताती हूँ । सब कह कर ही इस पाप का प्रायश्चित होगा।"

मृणाल की आँखों में प्रश्नचिन्ह नाच रहा था ।

डायना ने कहा—"आप जानती थीं दीदी कि मुझे कलाकार बनने की कैसी अन्धी धुन थी । मैं चाहती थी कि किसी तरह मैं प्रकाश में आऊँ ।"

"सक्सैना से आप भली प्रकार परिचित हैं । उसने मुझे बिश्वास दलाया था कि मुझे बम्बई में निश्चित रूप से फिल्मों में काम दिलवा देगा । मैं औरत जात, एक सहारा चाहिए था । घर से पाँच हजार रुपये लेकर उसके साथ हो ली ।"

'शुरू शुरू में उसने मुझे बड़े आदर के साथ रखा । सैकण्ड क्लास का टिकट लिया । हर समय मेरे आराम की पूछता था । मैं सोचती, साथी कोई बुरा नहीं है ।'

'बम्बई पहुँच कर एक होटल में डेरा डाला । उसने मुझसे कहा—"लाओ कुछ रुपये दे दो । मैं तुम्हारे बारे में बातचीत तय कर आऊँ ।"

मैंने उसे रुपये दिए । वह सुबह का गया गया रात को बारह बजे लौटा । उसने नया सूट खरीद लिया था । हाथ में नई घड़ी । बड़ा अच्छा लग रहा था । आते ही बोला—"बोलो डालिंग, मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ ?"

मेरा मन कह रहा था, जरूर यह मेरा नियुक्ति पत्र ले आया है । मैंने उसकी जेबों में हाथ डाला तो निकली—इंगलिश बीअर । शराब को मैं बुरी चीज नही मानती । उसने बोतल खोली । खुद पी, मुझे पिलाई मैंने पूछा—"डियर ! वह चौपड़ा साहब का क्या हुआ ?"

"धत्त रे की ! वह आज ही टीम लेकर आउट डोर शूटिंग के लिए एलोरा चले गए हैं ।"

"तब फिर····?"

"कोई फिक्र न करो । कल गोपीकृष्ण से बात करूँगा ।"

इसी प्रकार वह रोजाना रुपये लेकर जाता और नए नए बहाने लेकर आता । एक दिन मैंने फटकारा—"सक्सैना तुमको शर्म नहीं आती । तुम मुझे

दिलासा देकर लाए हो। मैंने तुम्हें अपना सब कुछ दे दिया। और···और मुझे कहते शर्म आती है···कि....?"

"क्या···क्या········?" वह मेरा मुँह देखता रहा।

"इस पाप को छिपाने के लिए हमें आज ही शादी कर लेनी चाहिए ।"

उसने कहा—"अरे सच········वाह स्वीटो। तुमने पहले क्यों नहीं कहा। मैं आज ही प्रबन्ध किए देता हूँ, जिससे अपन मजिस्ट्रेट के सामने सदा सदा के लिए एक हो जावे। "अरे हाँ···बोलो, मुकर्जी के पिक्चर में काम करोगी ?"

"मिलेगा तो क्यों नहीं करूँगी।"

"वे जरा सख्त काम लेने वाले हैं और तुम्हारे ये नाजुक दिन आ रहे हैं। पर खैर कोई बात नहीं, मैं उनसे सब ठीक कर लूँगा। लाओ कुछ रुपए दो········तुम्हारे लिए एक सुरीली सी साड़ी लानी है ।"

मैंने रुपए निकाल कर दिए, बोली—"वायदा करो कि आज ही तुम दो बड़े काम करोगे। एक तो मजिस्ट्रेट के यहाँ सिविल मैरेज का प्रबन्ध और दूसरे मुकर्जी साहब से बातें।"

"ओह ! यस···बाई आल मीन्स·· माई डार्लिंग, टाटा········।" वह हाथ हिलाता हुआ चला गया। मैं देखती रही···अपलक। रात तक मैं उसकी प्रतीक्षा करती रही। थक कर सो गई। वह दूसरे दिन भी नहीं आया, तीसरे दिन भी नहीं। हताश होकर मैं खुद टैक्सी लेकर सारे शहर में घूमती फिरी। पुलिस में रिपोर्ट कराई। कोई पता न चला। सब जगह केवल मेरा मजाक उड़ाया जाता, उसके सिवा कोई मेरी मदद न करता।'

"हारी थकी होटल लौटी। वहाँ मेरा सामान नीलाम किया जा चुका था, और मेरी जेब में चुकाने के लिए पाई भी नहीं थी। मैंने सोचा, मैं खुद काम ढूँढूँगी। यह मुँह लेकर क्या वापस जाऊँ।"

'मैं सारे स्टुओज के चक्कर काटती रही। वहाँ मुझे एकस्ट्राओं के लिए भी कोई न पूछता था। मन में पछता रही थी। अन्दर पाप पनप रहा था। सोचा, जहर खा लूँ। पर मुझे वह भी नहीं मिला। अब मेरे पास कपड़े नहीं, खाना नहीं, पैसा नहीं था। मैं भूखों मरने लगी। सोचा, पापा के चरणों में सर रख दूँगी। वे माफ कर देंगे तो जी लूँगी, नहीं तो कहीं डूब कर मर जाऊँगी।'

'यह सोच कर मैं बम्बई सेण्ट्रल से एक गाड़ी में बैठ गई। बैठ गई क्या एक कोने में छुप गई। बाद में मालूम हुआ कि यह गाड़ी तो दिल्ली जाती है। अब क्या हो। भरतपुर आते आते मुझे टीटी ने पकड़ लिया। मैंने उसकी मिन्नतें कीं और कहा कि मथुरा पर मैं अवश्य उतर जाऊंगी। वह मान गया, और मथुरा पर आकर उसने उतार दिया। मथुरा से ग्वालियर जा रही थी कि यहां बीच में उतार दिया। आप आ गईं दीदी, वरना मेरा न जाने क्या बनता ? बस दीदी! इतनी सी मेरी कहानी है। अब आप कहें सो करूं।''

मृणाल चुप बैठी रही। पलकें झुकाए, माथे पर हाथ धरे। डायना उसको पढ़ लेने की कोशिश कर रही थी। मृणाल यह कहती हुई उठी—''डायना! यह तूने अच्छा नहीं किया।'' और बाथरूम में घुस गई। वहाँ घन्टों फव्वारे के नीचे बैठी रही और दहकती अंगार सी अपनी आँखों को तर करती रही। बहुत देर बाद निकली। जी कुछ हल्का हो चुका था। बाहर आकर देखा, डायना गुमसुम बैठी है। सोचा, कैसी अच्छी भली लड़की है, कम्बख्त को न जाने क्या सूझा! बोली —''मैं यूनिवर्सिटी जा रही हूँ। कन्वोकेशन है। डिग्री लेकर शाम तक आ जाऊंगी तुम यहीं रहना। और देख····कहीं जाना मत। समझी।''

डायना ने मुँह उठाया। पलकें उसकी भींग रही थीं। बोली—''अब भी नासमझी करूँगी क्या दीदी। तुम जो कहोगी, वही करूँगी। एक पल इधर उधर नहीं।''

मृणाल चली गई। डायना घुलती रही। हाय! दीदी ने मुझे माफ नहीं किया। शायद पापा भी माफ न करें। और यह दुनियाँ वाले····ये तो किसी को माफ नहीं करते। तब चलूं····यमुना की ठंडी तलहटी में सो जाऊं। या किले पर से कूद कर जान दे दूँ। दुपहर का खाना आया, उसने छूआ तक नहीं। उसके दर्द उठ रहा था, एक टीस कसक रही थी। पर वह जैसी बैठी थी, वैसी ही बैठी रही। न हिली न डुली।

शाम को मृणाल आई। देखा डायना तो पीली पड़ी जा रही है। उसने मुँह उठाया। देखा आँखें भीख सी माँग रही हैं। अधर कुछ कहना चाह रहे हैं। वह कुछ कहे कि एक ठण्डी सांस ले पेट पर हाथ रख कर बैठ गई। मृणाल भी घबरा गई। नीचे गई। फिर फोन किया। डाक्टर आया। देखा।

अकेले में ले जाकर मृणाल से बोला—"इनके पेन उठ रहा है। हो सकता है ब्लीडिंग शुरू हो जाय। आप इन्हें फौरन अस्पताल ले जाँय।"

मृणाल को कुछ सूझ न रहा था। झट टैक्सी लेकर डायना को अस्पताल लेकर पहुँची। भर्ती कराया। मृणाल ने देखा, डायना बुरी तरह कराह रही है, बेलाग चीख रही है। मृणाल ने ऐसी कराह, ऐसी चीखें, पहले कभी नहीं सुनी हैं। वह लेडी डाक्टर को बुला लाई।

लेडी डक्टर ने देखा, बोली—"ब्लीडिंग शुरू हो गया है।........अबोर्शन नहीं रुक पायगा।" फिर नर्स को कहा—"देखो इन्हें वही मिक्चर लाकर दो.... ताकि जल्दी ही तकलीफ से छुटकारा मिल जाय।" यह कह कर डाक्टरनी चली गई।

मृणाल बैठी रही। सोचा, तो चौंक पड़ी। दौड़ी—"नहीं....नहीं मेडम! यह नहीं होगा। किसी तरह बच्चे को बचा लो डाक्टर, किसी तरह उस को बचा लो।"

वह डाक्टरनी को कहती रही। नर्स शीशी में मिक्चर रख आई थी और चार चार घण्टे बाद पीने की ताकीद कर आई थी। पर वहाँ था कौन? डायना बिस्तर पर तड़फड़ा रही थी। रक्त लगातार बह रहा था। दर्द बराबर उठ रहा था। पीड़ाएँ गहरी होती जा रही थीं। उसने करवट ली, फिर बदली। देखा पास के स्टूल पर एक शीशी रखी है। उसने शीशी उठाई। मुँह खोला और मुँह से लगा ली। जितना पी सकी, पी गई। बाकी उसके मुँह, गले और छाती पर फैल गई।

मृणाल लौट कर आई, तो चीख मार कर रो पड़ी। हाय! डायना ने तो सब दवा पी ली। वह बच्चे की सलामती की प्रार्थना करके आई थी। उसने तैश में आकर डायना का मुँह अपनी ओर कर लिया, न बोली—"तूने फिर मनमानी की....मैं तो चाहती थी........।"

बीच ही में कराहती हुई डायना बोली—"क्या होगा दीदी। उस पाप की निशानी को बचाने से क्या फायदा? कम से कम लोगों के आगे जाने लायक मुँह तो रहेगा। सब बेकार है दीदी...सब बेकार....।"

रात को दस बज रहे थे। डायना न जाने क्या क्या बके जा रही थी, बीच में कलेजा चीर जाने वाली कराहट लेती, तड़पती और उछल कर रह जाती।

वह आफिस में गई। सर्जन को फोन किया—"सर! किसी भी कीमत पर आप थोड़ी देर के लिए अस्पताल आने का कष्ट करें। प्लीज ....थोड़ी देर।"

पाँच मिनट बाद सर्जन की कार आई। दो डाक्टर और नर्सें थीं। आकर देखा। डायना तड़फ रही थी। मृणाल फफक फफक कर रो रही थी। सर्जन बोले —"मृणाल देवी! चिन्ता करने से कुछ नहीं होगा। ब्लड बहुत जा चुका है। अबोर्शन अब नहीं रुक सकता।"

"पर डाक्टर....मुझसे इसकी बेचैनी नहीं देखी जाती।"

"ठीक है। उसके लिए मैं आपको दवा देता हूँ। देखिए ये आठ गोलियाँ हैं। अभी केवल दो दीजिए। उससे इन्हें नींद आ जाएगी। अगर न आये तो दो घण्टे बाद और दीजिए। ख्याल रहे, दो से ज्यादा न दें।" कह कर सर्जन चले गए।

मृणाल ने डायना को गले में हाथ डाल कर उठाया। गोली खिलाईं, पानी पिलाया। पसीना पोंछा और अपने घुटने पर उसका सिर रख लिया। डायना की तड़फ बन्द नहीं हुई थी। वह दूने वेग से चिल्ला रही थी। मृणाल की आँखों में भी घटाएं छा रहीं थीं।

वह सोच रही थी—"डायना ने यह क्या किया। अच्छे भले घर की लड़की है। अपने बाप के घर से रुपया चुराया। दूर शहर में भागी और सब तरह से बर्बाद हुई। अब ऐसी लड़की का कौन मुँह देखना चाहेगा। बाप फटकारेगा, समाज दुत्कारेगा। साथी व्यंग्य कसेंगे, जो जीवन भर कचोटता रहेगा। ऐसी जिन्दगी से क्या लाभ। सबकी निगाह से गिर कर भी जीना कोई जीना है।"

डायना की पीरें जोर पकड़ रही थीं। वह एक क्षण को भी स्थिर नहीं रह पा रही थी। उसके मुंह से चीखें निकल रही थीं। उसका कलेजा फटा जा रहा था।

मृणाल सोच रही थी। यह भी कोई नारी है। इसने नारीत्व को कलंकित कर दिया। इसने कौमार्य को सौदे की चीज समझ लिया। इसने अस्मत की इज्जत नहीं जानी। क्या हक है इसे जीने का।

डायना को नींद नहीं आया रही थी। उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। उसकी आँखें निकली पड़ रही थीं और कराह तो जैसे काटे डाल रही थी। तड़फन उसे तोड़े डाल रही थी। अब मृणाल क्या करे। आज की रात बड़ी भयावनी रात है। डायना ने इसे और भयावह बना दिया है। नारी जाति के माथे का कलंक। युवतियों को, पढ़ी-लिखी युवतियों को बदनाम कर देने वाली वासना की अन्धी यह डायना।

डायना हाथ-पैर पीट रही थी। सारे पलंग को मथे डाल रही थी। इतनी पीड़ा, इतनी तड़फन। इतनी चीख, इतनी कराह। अब क्या हो, मृणाल कैसे···क्या···करे।

वह उठी। बाकी छह गोलियाँ उठाईं। एक साथ डायना के मुंह में डाल दीं। गिलास मुंह से लगा दिया, जैसे कह रही हो—"डायना ! मुझे माफ करना·············इसके सिवा मेरे पास कोई चारा न था···········अच्छा अलविदा डायना। अपनी इस नामुराद सहेली को माफ करती जाना। अगले जनम में मिलूंगी। तब अपनी भूल सुधार लेना·······अच्छा······अब चिर विदा·······एक बार फिर माफी माँगती हूँ।"

डायना थोड़ी देर कुड़मुड़ाई, फिर गहरी नींद में सो गई। मृणाल कुर्सी पर सिर रखे फफक फफक कर रोती रही रात भर।

३१

ठाकुर रामचरणसिंह पटेल ने गोमा के बारे में सुना तो छाती पीट ली। अब इस दुनियाँ में उनका क्या रह गया। उनके पहले जनम क्या कर्म थे कि बेटा खून करके फरार हो गया, बेटी ने गिरकर जान दे दी। कैसा हरा-भरा चमन था। भरा-पूरा घर था। खेत था, खलिहान था। बेटा था, बेटी थी। पर अब तो सब कुछ खतम हो गया। क्या कभी वे फिर ऐसे दिन देखेंगे। अपनी जिन्दगी में तो नहीं। तब फिर क्या जण्डेल के भाग्य में ऐसे दिन देखने को मिलेंगे। पर कैसे ? अगर वह इसी तरह फरार रहा, डाके डालता रहा, खून करता रहा, तब कैसे लौटेगा जण्डेल। वे भी जेल में सड़ते रहेंगे, वह जंगलों में भटकता रहेगा।

वे अंधियारी कोठरी में इधर से उधर कमर के पीछे हाथ डाले घूमते रहे। अन्दर धुँआ उठ रहा था, बाहर आग जल रही थी कैसे इज्जतदार आदमी थे। गाँव के पटेल थे, मुखिया थे। अगली पंचायत के चुनाव में उनका सरपंच चुना जाना निश्चित था। उन्होंने सदा सबका भला ही किया। कब किसका बुरा चेता, जो ये दिन देखने को मिले।

वे एक कोने बैठ गए, घुटनों में सिर दिए। बैठे रहे, बैठे रहे। उनकी आँखों से आँसू झरते रहे। उनकी छाती गीली हो गई। पलकें भींग गईं। कोरे बरसाती नाले सी उमड़ी पड़ रही थीं। उनका सिर भारी हो रहा था कि पीछे से खटका सुनाई दिया। देखा दर्वाजा खोला जा रहा है। दो सिपाही अन्दर आए, बोले—"छोटे साहब ! आए हैं। अदब से बात करना।"

ठाकुर आँखें फाड़े देखते रहे। खट-खट बूटों की आवाज हुई। एक भारी भरकम, नौजवान शरीर, खाकी वर्दी और हैट में सजा हुआ। पूछा—"रामचरण-सिंह तुम्हारा ही नाम है ?"

"जी सरकार....।"

"जण्डेल तुम्हारा ही लड़का है, जो सन्तपुरा से फरार है।"

"......" ठाकुर ने गर्दन झुका ली।

सरीन ने कहा—"तुम गाँव के इतने बड़े आदमी, और तुम्हारा लड़का डाका डालता फिरे। कितनी शर्म की बात है?"

ठाकुर रोते रहे। सरीन ने कहा—"हम नहीं चाहते कि बुढ़ापे में आप तकलीफ पाएं। हमें तुम्हारा बहुत ख्याल है। मगर कानून के आगे हम कुछ नहीं कर सकते।"

"जी..." ठाकुर हिचकी लेते रहे।

"अगर तुम चाहो तो तुम छूट सकते हो" सरीन ने कहा, "अपना घर, अपना खेत सँभाल सकते हो। तुम्हें तुम्हारी दुनियाँ वापस मिल सकती है।"

"कैसे सरकार" उन्होंने पूछा।

"तुम्हारा बेटा जण्डेल पुलिस के आगे हाजिर हो जाय..."

"अगर वह हाजिर न हो तो....?"

"तब तुम्हें नजरबन्द रखना पड़ेगा।"

"यह अच्छा कानून है। गलती बेटा करे, जेल बाप काटे। बोलिए सरकार मुझे किस बात की सजा मिल रही है। इसलिए कि मैं जण्डेल का बाप हूँ। क्या बाप होना भी गुनाह है?"

"जरूर गुनाह है। बोलो अगर माँ-बाप ही बच्चों में अच्छे संस्कार डालें तो बच्चे नेक और समझदार निकल सकते हैं।"

"मेरा बेटा भी नेक और समझदार था साहब! अब भी अगर उसे माफ कर दिया जाय तो वह बड़ा भला आदमी बनेगा। मुझे विश्वास है।"

"कानून अन्धा होता है ठाकुर! वह किसी को माफ नहीं करता। उसे तो जुर्म की सजा देनी है। जब तक वह हाजिर नहीं होता, तब तक तुम्हें यह सजा भुगतनी होगी। अगर तुम सच्चे ठाकुर हो तो अपनेपन की लाज रखो।"

"मैं क्या करूँ...?"

"मैं कहूँ, वह करोगे? वायदा करते हो?"

"क्या करना होगा मुझे?"

"इस कागज पर हस्ताक्षर! इसमें जण्डेल को खत लिखा है कि "मैं सख्त

बीमार हूँ, अगर मरते समय मुँह देखना चाहो तो चले आओ जण्डेल—तुम्हारा पिता–रामचरणसिंह ।" सरीन ने कहा, "बोलो क्या कहते हो ?"

सुन कर ठाकुर ने ठहाका लगाया—"वाह सरकार ! बुढ़ापे में झूठ भी बुलवाओगे । अभी लड़कपन है आपका । आप क्या जानों बाप क्या होता है, बेटे का दर्द क्या होता है । आप चाहते हैं खुद अपने बेटे की जान का गाहक बनूँ । मैं उसके गले में फाँसी का फन्दा पहनाऊँ । मैं अपनी आँखें अपने हाथों से फोड़ लूँ । बोलो ··सरकार····क्यों····किसलिए····?"

"सरकार तुम्हें भारी इनाम देगी ।"

"मैं लानत भेजता हूँ, ऐसे इनाम पर । चन्द चांदी के टुकड़ों पर ठाकुर को खरीदना चाहते हैं ? मैं तौमर हूँ, तौमर कभी किसी के सामने नहीं झुकते ।"

"मेरा यह मतलब नहीं था, ठाकुर ! अगर तुम किसी तरह जण्डेल को हाजिर कर सकते, तो देश का बड़ा उपकार करते । तुम्हें भी यश मिलता और जण्डेल के साथ भी दया बरती जाती ।"

"तब फिर आप मुझसे यों कहते । मैं अकेला भरकों में घुसकर खुद अपने हाथों से जण्डेल के हाथों में जंजीर डालकर ले आता । मगर···मालूम है, इस काम की कीमत क्या होगी ?"

"सरकार हर कीमत चुकाने को तैयार है ठाकुर ।"

"तब फिर आप लिखकर दीजिए कि जण्डेल माफ कर दिया जायगा । उसके आगे की जिन्दगी का मैं जिम्मा लेता हूं कि वह एक शरीफ आदमी की जिन्दगी बिताएगा ।"

"मैं ऐसा नहीं कर सकता । मेरे अधिकार बहुत सीमित हैं ! माफी तो राष्ट्रपति ही दे सकते हैं ।···· अच्छा मैं चलता हूँ । अगर चाहो तो मेरी बात पर फिर विचार कर सकते हो । मुझे खबर कर देना ।"

ठाकुर चुपचाप खड़े रहे । हाथ जोड़े । सरीन मुड़ा । खट-खट करता बाहर हो गया । सन्तरी ने सैल्यूट किया । दरवाजा लगाया और ताला कस दिया ।

ठाकुर बैठ गए । टुकुर-टुकुर देखते रहे । दीवार को जो खुरदरे पत्थरों की बनी थी जिस पर धूल और कालिमा छाई थी । उसी धूल और कालिमा में उन्हें एक चमकती लकीर दिखाई दी । मानों लिख रहा हो 'माफी तो राष्ट्रपति दे सकते हैं ।' उन्होंने रोशनदान की ओर देखा, ऊपर से प्रकाश आ रहा था मानों कह रहा

हो, 'माफी तो राष्ट्रपति दे सकते हैं।' खिड़की में से हवा आ रही थी मानों आवाज आ रहीं हो, 'माफी तो राष्ट्रपति दे सकते हैं।' उन्होंने अन्तर में झांका, वहाँ भी यही सन्देश सुनाई दिया।

तब क्या मेरे जण्डेल को माफी मिल सकती है। क्यों नहीं? पर यह कैसे हो? राष्ट्रपति तक मेरी पहुँच कैसे हो? मैं अगर बाहर भी होता तो कुछ करता। अपना खेत-क्यार बेचता, दिल्ली जाता। उनके चरणों में सिर रख देता तब भी क्या न पसीजते। मैं कहता—"मैं अपनी सफेदी की कसम खाकर कहता हूँ, मेरा जण्डेल बेकसूर है। उसने मोहन को घर में से भागते हुए देखा, राजपूत बच्चा, कानून क्या जाने। गोली चला दी। मैं होता तो उसे वहीं पकड़ लेता। मगर वह तो पुलिस से डर कर भाग गया। आज भी अगर उसे डर न रहे तो वापस आ सकता है। अगर कोई उसे विश्वास दिला दे तो वह अब भी आदमी बन सकता है। हाय! क्या प्यारा नौजवान पट्ठा है। अकेला सब काम समेट लेता था। खेत का, खलियान का। सदा सब से ज्यादा फसल उगा कर दी। कैसे बचे वह। कोई मेरा सब कुछ ले ले। पर उसे बचा दे।"

ठाकुर उठ बैठे। अंधेरी कोठरी में चक्कर लगाते रहे। आकर सींखचों से टिक गए। सींखचों को मजबूती से पकड़ लिया। उन पर सिर रख दिया और फफक फफक कर रो पड़े। सन्तरी ने देखा तो पास चला आया। बोला—"कैदी, जी छोटा क्यों करते हो? जेल तो एक सराय है। कुछ दिन बाद तुम भी चले जाओगे।"

ठाकुर बोले—"सन्तरी जी, सराय तो यह दुनियाँ ही है, यहाँ भी अधिक थोड़े ही टिकूंगा।"

"अरे रे! ऐसा क्यों सोचते हो? सुख-दुख तो लगा ही रहता है। अब मुझी को देखो यहाँ चक्कर काट रहा हूं, घर पर मेरा बेटा बीमार है।" कहते-कहते सन्तरी की आँखें गीली हो गईं।

"भगवान! उसकी उमर दूनी करे।" ठाकुर ने कहा। सन्तरी आँसू पोंछता चला गया। फिर पहरा देने लगा। ठाकुर ने सोचा, देखो बेटे की हाय यह होती है। बेचारे का कलेजा मुँह को आ रहा है। मेरा बेटा भी न जाने कहां होगा, कैसे होगा? कहीं बुखार न आ रहा हो? हाय! वह दुख को दुख नहीं समझता। मेरी उमर उसे लग जाय। जैसा भी है, वैसा बना रहे।

सन्तरी चक्कर काटते काटते पास आया, बोला—"ठाकुर लेट रहो। खड़े-खड़े थक जाओगे।"

"ठीक कहते हो सन्तरी जी" ठाकुर ने कहा, "पर अब मैं बैठकर करूंगा भी क्या ? अब मै जिऊं भी तो किसके लिए । अब मेरा कौन है....?"

बीच में सन्तरी बोला—"जी छोटा न करो। जिसका कोई नहीं होता, उसका भगवान होता है।"

सन्तरी फिर अपनी जगह पर आ बैठा। ठाकुर टहलते रहे। इधर से उधर, उधर से इधर। उन्होंने दर्वाजे की ओर देखा, सूना पड़ा था जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो।

थोड़ी देर में सन्तरी दौड़ा आया। चेहरा उसका खिला हुआ था। बोला—"ठाकुर ! तुमसे कोई मिलने आ रहे हैं।"

ठाकुर कुछ सोचें कि उनके मुँह से एक साथ निकल पड़ा—"बेटा भँवर.......इतने दिन बाद दर्शन दिए।"

भंवरसिंह नजदीक आ गए, बोले—"कक्का ! मैं तो वापस आ गया हूं आपके दर्शन करने। वर्ना मैं तो राजघाट पर चम्बल के किनारे चला गया था, इस दुनिया का मोह छोड़ कर।"

"क्यों बेटा ! इतनी जल्दी घबरा गए। मुझे देखो। बुढ़ापे में क्या दिन देखने पड़ रहे हैं। जण्डेल भी नहीं, गोमा भी नहीं, जिसे देखकर ही छाती ठण्डी करूँ।"

"गोमा तो कक्का ! मुझे सूना कर गई.......अब मैं कैसे जिऊँगा ?"

"बेटा ! तुम मेरा कहा मानो, दूसरा ब्याह कर लो।"

"ब्याह ! क्या कहते हो कक्का ! ब्याह तो अगले जन्म में करूँगा, गोमा से ही। इस जन्म की साध अधूरी रह गई है।"

"हाय ! कैसे लायक दामाद मिले हैं। ऐसा ही लायक मेरा जण्डेल था।"

"जण्डेल तो बहुत होनहार था कक्का।" भंवरसिंह ने कहा

ठाकुर ने कहा—"अगर जण्डेल हाजिर हो जाय तो क्या हो बेटा ?"

"जण्डेल पर पुलिस मुकदमा चलाएगी। सबूत मिलने पर सजा होगी। फाँसी भी हो सकती है।"

"नहीं, नहीं.......ऐसा मैं अपनी आँखों से नहीं देख सकता। क्या अब मेरा वही जण्डेल नहीं बन सकता। क्या उसे माफी नहीं मिल सकती ?"

"यह सब सपनों की बातें हैं कक्का ?"

"सपने की बात नहीं, छोटे साहब कह रहे थे कि राष्ट्रपति माफ कर सकते हैं !"

"हाँ राष्ट्रपति चाहें तो माफ कर सकते हैं।"

"तब उन तक मेरी अरज पहुंचाओ न ?"

"बड़ा मुश्किल है कक्का....।"

"नहीं, नहीं। हिम्मत न हारो। मेरे लिए इतना तो करो। मेरी अरजी राष्ट्रपति तक पहुँचा दो। वे तो देवता आदमी हैं। कुछ न कुछ सोचेंगे।"

"क्या लिखाओगे अर्जी में।"

"लिखना ! महाराज ! मेरे बेटे को इस बार माफी दो। अगर उस पर दया दिखाई तो वह देश की बहुत सेवा करेगा। अगर चाहो तो लाम पर भेज दो, वहाँ पर वह रजपूती जौहर दिखाएगा और अगर अपने गाँव में रहे तो सबसे बढ़िया फसल उगाएगा। वह तो हीरा है। उसे एक बार परख कर तो देखो।"

"मैं कोशिश करूँगा, कक्का !"

"कोशिश नहीं बेटा ! कल की डाक से ही रजिस्ट्री कर देना। नीचे मेरा नाम डालना। लिखना अगर जिन्दा रहा तो कभी दर्शन करने आऊँगा।"

"ठीक है..........।" भंवरसिंह ने कहा।

"समय पूरा हो गया है" सन्तरी ने कहा। भंवरसिंह सचेत हो गए। बोले—"अच्छा कक्का, जयगोपालजी की ! चलता हूँ।"

"जयगोपालजी की बेटा, यह काम जरूर करना।" ठाकुर ने कहा।

भंवरसिंह चले गए। ठाकुर देखते रहे। उनकी आँखों में आशा नाच रही थी।

३२

आज बड़ी मतवाली रात थी। शाम से सर्रर सर्रर हवा चल रही थी आँचल को उड़ाए डाल रही थी। ज्यों ज्यों रात काली होती गई, हवा में भी तेजी आती गई और अंधड़ का रूप ले लिया। पर्वत के ऊँचे टीलों पर जंगलों के पेड़ झूम रहे थे और संघर्ष कर एक नयी आवाज उत्पन्न कर रहे थे, जैसे वायु के साथ स्वर संगम कर रहे हों। वातावरण में हल्की सी नशीली ठण्ड थी और शरीर को छूती थी।

यह अंधड़, यह तूफान प्रलय ढाने के लिए क्या कम था कि घड़घड़ाते मेघ उमड़ आए। काले काले हाथियों का दल जैसे अपनी सूँडों में से पानी बिखेरता हो, वैसे ही ये मेघ दैत्य बरस पड़े। पानी मूसलाधार पड़ने लगा। हवा तेज चल रही थी। कभी इस दिशा में, कभी उस दिशा में। पानी की बौछार कभी तिरछी, कभी आड़ी, कभी सीधी मार कर रही थी। पर्वत के ढाल पर और ऊँचे पेड़ों पर वर्षा की अजीब सी आवाज हो रही थी।

पानी बरस रहा था और धड़ड़ धड़ड़ बहा जा रहा था। घाटी गहर गहर कर रही थी और पहाड़ी नाला ढड़र ढड़र कर उमड़ता अपनी सीमाएँ तोड़ रहा था। ऊँचे, टेढ़े कगार सब कुछ सह रहे थे, न सहने पर खिसक रहे थे और हवा और बौछार की मार से ढुलक रहे थे और ढढ़प ढढ़प की भयानक आवाज कर रहे थे।

मेघ उमड़ते थे, गरजते थे, टकराते थे, जैसे दो भैंसे लड़ रहे हों। उनके टकराने से एक भयावनी आवाज हो रही थी और जब तब बिजली कौंध जाती थी, मानों कह रही हो, हमारे संहार-नृत्य इस उजाले में देख लो।

कड़क, कड़क, किड़ड़, दूर बहुत तेज बिजली चमकी, और एक क्षण को चारों ओर प्रकाश बिखेर दिया। उस क्षणिक प्रकाश में एक ऊंचे पथरीले टीले पर सफेद वस्तु दिखाई दी। मालूम होता था जैसे मन की घुटन साकार रूप लेकर शुभ्र वस्त्र पहने बैठ गई हो।

नरेन्द्र बैठा रहा, बैठा रहा। अपने घुटनों में सिर दिए, अपनी बाहों से मुंह छिपाए। अकेला, नितान्त अकेला, गुमसुम बैठा है। उसने दृष्टि उठाई, जैसे सृजन और प्रलय को अपने नयनों में समो लेना चाहता हो। चारों ओर अंधड़ ही अंधड़। घटाएं ही घटाएं। पानी ही पानी। सामने, दूर, बहुत दूर क्षितिज पानी से लबालब भरा है, जब तब कौंधती बिजली में कांच की सतह सा दीख पड़ता है, लगता है जैसे यह कांच की सतह उठ रही है, फैल रही है।

घटाएं और गहरी होती गईं। रात और काली हो गई। धड़ड़ धड़ड़। किड़िक किड़िक। जैसे दोनो में प्रतिद्वन्द्विता छाई हो। पानी मूसलधार पड़ने लगा। वायु के झोंके इन बौछारों को और पैनी बना रहे थे जो कभी दाँए, बाँए तीर सी लग रही थी।

नरेन्द्र तो बैठा है। सारी दुनिया से दूर, अपने से दूर। अनजान अज्ञात और अलिप्त। जैसे वह भी इस जड़ सृष्टि का एक अंग ही हो। ऊपर से धड़ धड़ड़ करता नाला अपनी बाँहें फैलाता आ रहा है, जैसे अगले ही क्षण अपनी गोद में ले लेगा।

दढ़ाप, दढ़ाप। आवाज हुई। एक बड़ा पत्थर लुढ़का। लुढ़कता रहा नीचे की ओर। बढ़ता रहा। बिजली कौंधी। नरेन्द्र बैठा है, जैसे अपने से ही रूठ कर। पत्थर आ रहा है। चला आ रहा है। ढिढ़क ढिढ़क। आवाज नजदीक आती जा रही है। नरेन्द्र बैठा है बेखबर। हाय! अब क्या हो। पत्थर रुका नहीं। नरेन्द्र उठा नहीं।

अगले ही क्षण पत्थर नरेन्द्र को चपेटता हुआ आगे बढ़ता कि नरेन्द्र को एक साथ खींच लिया गया। मजबूत हाथों से घसीटा जा रहा था। उसे कुछ नहीं मालूम। वह तो संज्ञाशून्य हो रहा था। घिसटता रहा, घिसटता रहा।

तूफान जैसे एक साथ शान्त हो गया। उसके बाल कोई पोंछ रहा है। चेहरे का पानी धीमे धीमे हटाया जा रहा है। उसकी चेतना लौटी। उसे

लगा, जैसे वह किसी मृदुल वस्तु का स्पर्श पा रहा है। दूसरे ही क्षण मालूम हुआ कि वह किसी के गुदगुदाए अंगों में कसा हुआ है। उसके अंग अंग किसी मादकता में डूबे जा रहे हैं। उसकी नस नस में बिजली दौड़ी जा रही है। उसने भी बाहें फैला कर भर लिया। गुदगुदाए अंगों को भरपूर कस लिया। उसके कसाव में यौवन का तूफान नाच रहा था। देखा, बेड़मी उसके गले में बाहें डाले उसकी छाती में समाती जा रही है और देख रही है, एकटक, अपलक। उसने देखा, उन आँखों में एक आवाज थी, एक निमंत्रण था। वह झुक गया। उसके अधर बेड़मी के मदमाते अधरों पर झुक चुके थे। यह जीवन भर की प्यास, यह कभी न बुझने वाली प्यास। आज वह इस प्यास में डूब जाएगा, सदा के लिए। इस प्यास को पी जाएगा। अपने इन जलते अधरों, और धड़कती छाती को शीतलता में डुबो देगा। अपने इस चिर एकाकीपन को मादकता में समा देगा।

उसकी गर्म सांसें, बेड़मी की मदमाती सांसों को छू लेना चाहती थीं कि उसे सुनाई दिया, "नरेन्द्र····नरेन्द्र····तुम कहाँ हो मेरे नरेन्द्र····नरेन्द्र। देखो····यह मैं यह हूँ···· । नरेन्द्र····यह क्या है ?" उसके अन्दर से आवाज आई। वह बिदक कर दूर खड़ा हो गया। उसने देखा उसका हृदय जोरों से धड़क रहा है, सारा शरीर पसीने से तरबतर है। उसने पसीना पौंछा, सिर उठाया। देखा बेड़मी शर्म से लाल हुई जा रही थी। उसने चाहा कि वह बेड़मी के सामने जमीन में गड़ जाय, उसमें समा जाय। मन हुआ, अपने किए पर पछतावा करे। देखा, बेड़मी अब भी मुस्करा रही है। ओह ! कैसा निश्छल समर्पण है।

बेड़मी आगे बढ़ी। नरेन्द्र का हाथ पकड़ा और एक ओर को चल दी। वह कठपुतली सा उसके पीछे-पीछे हो लिया। बोली—"चलो ! देखो ! बाहर बरखा की अगवानी हो रही है। हम भी शामिल हों।"

वह कुछ बोला नहीं। एकटक निहारता रहा। कदम-कदम चलता रहा। अब उसे आवाज सुनाई दे रही थी। दूर ढप-ढप और हो-हो-हो का शोर सुनाई दे रहा था। आवाज नजदीक आती जा रही थी।

जाकर देखा। एक बहुत बड़े मैदान में मशालें जल रही है। गोंड़ युवक-युवतियाँ, नया शृंगार किए ढोल की ताल पर थिरक रहे हैं।

युवतियाँ लाल नीले घाघरे पहने, जिनमें गोल, तिकोने, चौकोर कांच के टुकड़े जड़े हैं। कसी कसी हिरमिची कुर्ती जिन पर रंगबिरंगी गोट और चमकीले

बन्द। बाल खींच कर बांधे हुए। मोम से चिपकाए हुए, जिन पर चाँदी और गिलट के जेवर झूम रहे हैं। गले में हंसली हुमेल। कमर में कोंधनी। पैरों में लोहे के पेंजना, हाथों में रंगीन लाख की चूड़ियाँ, चाँदी की अंगूठियाँ। जूड़े में नुकीली कील खोंसी हुई। मुंह पर गुदाने और नयनों में मोटा-मोटा कजरा।

युवक केवल कमर पर मोटे कपड़े, कम्बल जैसा नीचा नीचा जांघिया सा पाजामा। छाती के आर पार चौड़ी पट्टियाँ, कौड़ियों और मूंगाओं से जड़ी हुई। देह ताँबे सी मांसल। हाथों में झुमरू, पैरों में घुंघरू।

मांदर पर थाप पड़ी। बोली धिन्न। टिपकी ने आवाज की किट किट। ढोल बोला ढप। तालियों की आवाज हुई एक साथ, थड़ाप। ढोल बजता रहा, मादर धुनकता रहा, टिपकी किड़कती रहीं। तालियां बजती रहीं। पैर उठते रहे, पैंजन बजते रहे। संगीत बजता रहा, गीत चलता रहा।

युवक युवतियाँ, बांहों में बांह डाले मांदर की ताल पर थिरकते रहे। एक गौंड़ युवक बढ़ा। बेड़मी का हाथ पकड़ा और गोल में ले गया। बेड़मी नरेन्द्र पर नजरें गड़ाए खिचती चली गई। और थिरकन में मस्त हिरनी सी झूमती रही, गाती रही।

"करिया सियाही कागद लिखना या
तलफ गै चोला कब मिलना रे।"

नरेन्द्र ने देखा बेड़मी नाच रही है और एक टकटक उसकी ओर देख रही है। मानों गीत की भाषा में कह रही हो।

'हम लोग लिखना न जानने के कारण स्याही से कागज पर अपने दिल का हाल लिख कर एक दूसरे के पास नहीं भेज सकते, मन मिलने के लिए तड़प-तड़प उठता है। न जाने कब मिलन होगा।'

नरेन्द्र खड़ा रहा, देखता रहा। सोचता रहा 'कौन है यह''''कौन है यह, जो जीवन में समाती जा रही है''''कौन है यह, जनम-जनम की जानी-पहचानी-सी''''''''''''।'

३३

बाहर घुर्र-घुर्र की आवाज सुनाई दी। खिड़की खोल कर देखा। कार थी। वह दर्वाजे तक दौड़ी। शायद भँवरसिंहजी डाक्टर को लिवा लाए हैं। दर्वाजे पर थाप सुनाई पड़ी। उसने झट द्वार खोल दिए। कठपुतली सी खड़ी रह गई, मुँह से निकला—"ओह''''आप।"

"हाँ मैं! अभी मुरैना से चला आ रहा हूँ।"

"कहो, खैर तो है''''''।"

"सब ठीक ही है''''रात को ही महुआ की ओर जाना पड़ा। एक डाकू से मुठभेड़ हो गई। कुछ सामान हाथ लगा। डाकू निकल भागा।"

"ओह! तुम्हारा जीवन भी कैसा है सरीन! दिन-रात इनकाउण्टर, गोली, खून।"

"मैं भी यही सोच रहा था कि मेरा जीवन भी कोई जीवन है। मेरे घावों को कोई सहलाने वाला नहीं है। न मुझे बढ़ावा देने वाला ही। अकेला'''' फिर अकेला''''ओह मैं तो भूल ही गया''''पिताजी कहाँ हैं!"

"ऊपर हैं। चलो मिल लो। तबियत कुछ अधिक खराब है।"

"ओह! तब तुमने पहले क्यों नहीं कहा?"

सरीन एक साथ उठ खड़ा हुआ। दौड़ कर सीढ़ियां चढ़ने लगा। ऊपर जाकर दर्वाजे को धक्का दिया। देखा, सामने बोस बाबू अस्तव्यस्त पड़े हैं। चेहरा उनका मुर्झाया हुआ है। आँखें काली पड़ती सी। होठों पर पपड़ी जमी हुई। पास जाकर स्टूल पर बैठ गया। बोस बाबू ने आँखें खोलीं। मृणाल आ पहुँची थी। बोस ने सरीन को देखा तो उनका चेहरा खिल गया। बोले—"आ गए तुम! कब से इंतजार कर रहा था।"

"अब आप बेफिक्र रहें ! मैं सब ठीक कर लूंगा।"

"मुझे तुम पर पूरा भरोसा है। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं। जीवन में एक ही साध अधूरी रह गई। मुझे बेटा न मिला था, वह तुम मिल गए। तुम कौन अपने बेटे से कम हो।" बोस बाबू ने आँखें फाड़े कहा।

सरीन कुछ कहता कि मृणाल ने कहा—"पिताजी, डाक्टर ने आपको आराम करने को कहा है, आप···· ।"

बीच ही में बोस बाबू बोले—"आराम ही आराम है। तू फिक्र क्यों करती है। मुझे तेरी पूरी-पूरी चिन्ता है। और अब सरीन आ ही गया है। अब मेरा बोझ हल्का हो गया।

बेटा मृणाल ! मैंने तुझे पाला-पोसा तो क्या इतना भी न कर पाऊँ कि स्वयं अपने हाथों अपनी लाड़ली के हाथ पीले कर जाऊं···· ।"

बीच में ही मृणाल चीख पड़ी—"पिताजी···· ।"

बोस रुके नहीं, बोले—"क्यों है न सरीन। कब से मन में इस शुभ अवसर की बाट जोहता रहा हूँ। बोलो न बेटा, क्या तुम मेरी इस अन्तिम साध को पूरा करोगे ।"

सरीन ने सिर झुका कर कहा—"मैं आपकी हर आज्ञा मानने के लिए तैयार हूँ।"

बोस बाबू रुक-रुक कर बोले—"तब आज ही·······अभी···मृणाल का विवाह···तुम्हारे साथ···· ।"

बीच ही में मृणाल चीख उठी—"पिताजी, मैं विवाह नहीं करूंगी।"

बोस बाबू की आँखें खुली की खुली रह गयीं। पूछा—"क्यों बेटा ! क्या मेरी साध अधूरी रह जायगी।"

"पिताजी आप स्वस्थ हो लें, तब इस पर विचार करेंगे।"

"मेरे पास समय अधिक नहीं है बेटा !" बोस बाबू बोले, "मैं आज ही यह निर्णय करना चाहता हूँ।"

"आज यह निर्णय नहीं हो सकता।"

"क्यों······· ?"

"क्योंकि मैं अभी विवाह के लिए तैयार नहीं हूँ और अगर भविष्य में विवाह करूंगी भी तो······· ।"

"नरेन्द्र के साथ," सरीन ने कहा। एक साथ उठ खड़े होकर बोला—"बाबूजी ! मेरा अपमान हुआ है। मैं यहां एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। जहां एक साधारण आदमी के मुकाबिले में मुझे तौहीन किया जाय। मैं तो आपके दर्शन करने चला आया था, वर्ना····अच्छा नमस्कार।" और एक साथ बाहर चला गया।

बोस बाबू रोकते रहे, "ठहरो, ठहरो तो सरीन बेटा।"

मगर सरीन रुका नहीं। लौटा नहीं। बोस बाबू पलंग पर बैठ गए। मृणाल ने कहा, "आप लेट जाइए पिताजी, आपको आराम की सख्त जरूरत है।"

"बहुत आराम दे दिया है तूने बेटी, अब और अधिक क्या होगा।" बोस बाबू ने विस्फारित नेत्रों से कहा—"मैंने तुझे इसी दिन के लिए पाला था कि बड़ी होकर तू मेरे मुंह पर कालिख लगाए। इसीलिए तुझे ऊंची शिक्षा दिलाई कि तू अपने पिता की भावनाओं पर चोट करे। तुझे इतनी आजादी इसीलिए बख्शी कि तू मनमानी करे।"

मृणाल रो पड़ी—"पिताजी········।"

बोस कहते गए—"बोल ! उच्चस्तर के सुसंस्कृत के लोग अपनी संतान को स्वच्छन्द वातावरण इसलिए प्रदान करते हैं कि उनकी सन्तान बड़ी होकर उनके अधिकारों को ही छीन लें।"

मृणाल सिसकती रही—"पिताजी·······शान्त रहिए।"

बोस ने कहा—"बोल, क्या अधिकार था तुझे यह निर्णय करने का और मुझे इस तरह अपमानित करने का। तूने इस कुल की गरिमा की अच्छी रक्षा की है बेटी ! उस दर दर के भिखारी छोकरे को तू जीवन दे बैठी है।"

मृणाल ने कहा, "पिताजी ! आप नरेन्द्र बाबू के बारे में नहीं जानते।"

बोस बोले—"मैं तो कुछ भी नहीं जानता। मैं सब जानता हूँ। तू उसके साथ डाकुओं के बीच गई। फिर सन्तपुरा गई। वह युवक सेवक समाज क्या है ? मेरी आँखों में धूल झौंकने के लिए एक नाटक ही तो है।"

मृणाल बिलखती रही—"नहीं, नहीं········नहीं।"

बोस चीख उठे—"दूर हो जा मेरी आँखों के आगे से। मैं तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहता।···तू····तू।"

उनकी आवाज गले में ही अटक गई । मृणाल ने उन्हें लिटाने की कोशिश की । उन्होंने उसे झिटक दिया । और एक साथ लुढ़क पड़े । मृणाल ने ग्लूकोज का पानी उनके गले में डाला । वे आँखें फाड़े उसकी ओर देखते रहे । मृणाल सिसकती रही । उनके गले में पानी उतर न रहा था, बाहर फैल जाता था ।

मृणाल दौड़ी दौड़ी नीचे आई । फोन उठाया । नम्बर मिलाया. डाक्टर को फोन करने वाली ही थी किवाड़ एक साथ खुले और भंवरसिंह तथा डाक्टर ने एक साथ प्रवेश किया । मृणाल फफक कर रो पड़ी—"डाक्टर ! पिताजी.......।"

"क्या हुआ उन्हें ?" डाक्टर ने पूछा ।

"आप ऊपर चलें ।"

सब ऊपर पहुँचे । बोस बेचैन तड़प रहे थे । डाक्टर ने देखा । एक साथ गम्भीर हो गया । सिरिंज तैयार की । ग्लूकोज चढ़ाया । धीरे धीरे उनके शरीर में प्रवेश करना आरम्भ किया । मगर बोस बाबू का शरीर काला पड़ता जा रहा था और बेचैनी कम न हो रही थी । बीच ही में उन्हें हिचकी आई और उनका सिर एक ओर को लुढ़क गया ।

मृणाल एक साथ चीख पड़ी—"पिताजी.......।"

सब कुछ समाप्त हो गया । डाक्टर निराश, हताश मुँह देखता चला गया । भँवरसिंह ने कहा—"नरेन्द्र बाबू को तार कर दूँ ।"

भीगी पलकें उठाकर मृणाल बोली—"ट्रंक करो उन्हें अभी ।"

"ठीक है" कहकर वे एक साथ चले गए ।

"पिताजी ...." मृणाल चीखती रही, लाश से चिपटती रही। बिलखती रही—"पिताजी मुझे माफ कर दो । इतना बड़ा दण्ड दिया, इसके लायक कहाँ थी.......पिताजी ।"

घर के नौकर चाकरों ने आकर उसे संभाला । भँवरसिंह ने सब व्यवस्था की । दिन भर इधर-उधर दौड़ते रहे । नरेन्द्र का आना असम्भव था । अतः दाह-संस्कार शाम को किया गया । आग की लपटें धू धू कर रही थीं । मृणाल की गीली आँखें उन लपटों में झुलसी जा रही थीं और उनमें अपने भविष्य की रेखाएं ढूँढ रही थीं ।

३४

"आपको छोटे साहब ने याद किया है।" चपरासी ने कहा।

"कौन छोटे साहब ! क्या काम है ?" भंवरसिंह ने विस्मय में पड़ कर पूछा। सामने दर्वाजे पर पुलिस का सिपाही खड़ा है। वे समझ नहीं पाए बात क्या है। कुर्ता पहना और उसके साथ हो लिए। सिपाही उन्हें बड़ी कोतवाली ले गया। वहाँ चारों ओर एक घुटा घुटा सा वातावरण था। वे इस कोतवाली में पहले भी एक बार आए थे ठाकुर कक्का से मिलने। पर आज क्यों बुलाया गया ? पुलिस जब किसी को खुद बुलाए तो कुछ मतलब होता है और फिर उन्हें तो पुलिस के एक बड़े अफसर ने बुलाया है।

उन्हें बाहर प्रतीक्षागृह में बिठा दिया गया। वहाँ और कोई न था। काली काली ऊंची ऊंची बेंचें थीं और क्षेत्र से सम्बन्धित अनेक चित्र टंगे थे। वे गर्दन झुकाए अपने में खोते रहे। विचारों में डूबते उतराते रहे। क्या नई मुसीबत खड़ी हो गई। पिछले दिनों वे बराबर अनहोनी घटनाओं में से गुजर रहे हैं। पहले गोमा ने कूद कर जान दे दी। फिर रूपा को मरते मरते बचाया और फिर बोस का हार्ट फेल हो गया। उनका दिल धड़कने लगा, कि कहीं इन अनहोनी दुर्घटनाओं का दौर अभी खतम न हुआ हो और यह भी उस क्रम की एक नई कड़ी हो। पर वे क्या करें। जो भी परिस्थितियाँ आती जाँएगी, उनका सामना करते रहेंगे।

"आप उधर चलें।" एक दूसरे सिपाही ने आकर कहा।

वे चौंक पड़े। मुंह उठाया। सामने खड़ा सिपाही इशारा कर रहा था। वे उस इशारे पर चल दिए। ऊपरी मंजिल पर भीतर और भीतर एक

बड़ा कमरा। द्वार पर एक मोटी चिक पड़ी है। सिपाही ने चिक उठाई। उन्होंने अन्दर प्रवेश किया।

"आपका ही नाम भंवरसिंह है।"

"जी·······।"

"बैठिए·······।"

वे बैठ गए। वह पुलिस अफसर उठा। ऊपर रेक में से एक बड़ी अलमारी में से फाइल उठाई। उसमें उलझते हुए पूछा—"डाकुओं से आपका क्या सम्बन्ध है?"

"कुछ भी तो नहीं?"

"जण्डेलसिंह से भी नहीं।"

"जी! रिश्ते में वह मेरा साला लगता है।"

"मुझे लगता है आप उसके वकील भी हैं।"

"क्या मतलब?"

"मतलब देखिए·······यह क्या है?" उन्होंने अखबार की एक कटिंग उनके सामने फैला दी।

भंवरसिंह ने हिचकी लेते हुए कहा—"जी·······जी·······यह तो ठाकुर रामचरणसिंह की अपील है, जिससे उनकी आवाज राष्ट्रपति तक पहुँच सके।"

"हूँ" उसने गम्भीरता से भंवरसिंह की ओर देखा, "क्या इसका सम्बन्ध जण्डेलसिंह से नहीं? क्या इसे आपने छपने नहीं दिया?"

"जी····।" उनका छोटा सा उत्तर था।

"मैं पूछता हूं, अखबार में देने से पहले इसके कानूनी मुद्दे पर तो गौर कर लिया होता। पुलिस से इसकी स्वीकृति तो ले ली होती।"

"जी·······।"

"क्या आप समझते हैं कि इस तरह की अपीलों से अपराध की गुरुता में कोई कमी आ सकती है। न्याय की तुला को क्या आप मनमाना घुमा सकते हैं। राष्ट्रपति देश के सर्वोच्च शासक हैं? क्या वे आप लोगों की तरह भावनाओं में बह सकते हैं?"

"·········"

"तब फिर हम लोगों का महत्व भी क्या रहा ? हम दिन-रात अपनी जान की बाजी लड़ा कर डाकुओं और खूनियों को पकड़ें और राष्ट्रपति उन्हें माफ कर दें। तब तो देश में डाके डालना, खून करना एक खेल हो जाय। तुम आशा करते हो, राष्ट्रपति ऐसा होने देंगे।"

भंवरसिंह बोले—"राष्ट्रपति इस अपील पर क्या निर्णन देंगे, यह मुझे पता नहीं। मगर मैं यह कह सकता हूँ, कि यह एक नया प्रयोग है, जो बिगड़ी हुई परिस्थितियों में देश के काम आ सकता है। मैं समझता हूँ इससे पुलिस की गरिमा पर कोई चोट नहीं पहुँचती। पुलिस का हर प्रयत्न प्रशंसनीय है। हमारा ध्येय तो एक ही है, देश में शान्ति रखना। अगर वह शान्ति गोली के बजाय सौहार्द, प्रेम, दया, क्षमा से प्राप्त की जा सके तो कोई महंगी नहीं है।

"तो तुम्हारी राय में पुलिस चूड़ियाँ पहन कर बैठ जाय। और डाकू, सड़कों और गलियों में कीर्तन करते फिरें। तुम जानते हो सरकार इस काम पर कितना रुपया खर्च कर रही है।"

"वही तो मैं कह रहा हूँ। यह रुपया योजनाओं की पूर्ति में खर्च किया जा सकता है और इन डाकुओं को भाईचारे से खत्म किया जा सकता है।"

"क्या इस प्रकार ये डाकू खत्म हो जावेंगे।"

"निश्चय ही इनका डाकू तत्व खत्म हो जावेगा। ये रह जावेंगे केवल मानव। जो देश के नवनिर्माण में योग दे सकेंगे।"

"आप इस क्षेत्र को बख्शिए इस फिलासफी से। मालूम होता है तुम नरेन्द्र श्रीवास्तव के ही भाईबन्द हो।"

"भाईबन्द ही क्या साथी और अनुचर दोनों ही....। मगर क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ।" भँवरसिंह ने कहा।

"मुझे सरीन कहते हैं। भिण्ड मुरैना के डाकू उन्मूलन का दायित्व मुझे सौंपा गया है।"

"ओह ! आप ही हैं सरीन बाबू !....आज दर्शन हुए।"

"क्यों क्या बात है....?" सरीन ने आश्चर्य से पूछा।

"जी....वही सरीन जो बोस बाबू के हार्टफेल होने के दो घण्टे पहले ही सारा अपनत्व छोड़ कर चले गए। जिनके आप दामाद बनना चाहते थे, उनको इस दशा में छोड़ कर.... ।"

"मुझे उसका बहुत अफसोस है भँवरसिंहजी ...सच पूछिए तो मृणाल का व्यवहार ही इतना रूखा था कि मुझे वहाँ से चला जाना पड़ा....।"

"और आपका व्यवहार क्या बहुत कम रूखा था कि एक खिलती कली को आत्महत्या करने पर मजबूर होना पड़ा।"

"तुम्हारा मतलब रूपा से है....कहाँ है वह ?"

"आपको उससे मतलब....वह तो विधवा कन्या है। उससे विवाह करने का ठेका तो बस समाजसुधारकों ने लिया है। और अगर आपको हक है तो केवल उसके साथ रंगरेलियाँ मनाने का।"

"भँवरसिंह ! तुम मुझे गलत समझ रहे हो।"

भँवरसिंह ने तेज स्वर में कहा—"आप अन्तिम समय तक निर्णय करने में कमजोर हैं। आप पिछले दिन ही मृणाल से प्रणय-याचना करने गए थे। एक को आत्महत्या करने पर मजबूर किया, दूसरी के पिता की जान ले ली।"

"नहीं....नहीं....मैंने कुछ नहीं किया। परिस्थितियाँ अपने आप में इतनी प्रबल थीं कि मैं केवल कठपुतली मात्र रह गया। तुम नहीं जानते कि बोस बाबू से मेरे सम्बन्ध बहुत पुराने थे, पर मैं मृणाल का हृदय नहीं जीत पाया। रूपा ने मुझे आकर्षित किया अवश्य, पर उसका वैधव्य मेरे मार्ग में आ गया। और फिर मुरैना में उसका प्रस्ताव लेकर मृणाल स्वयं आई। मृणाल के सामने मैं और कह ही क्या सकता था।"

"आप नहीं जानते थे कि आपकी यह शतरंजी चाल किसी की जान ले लेगी। आपने भारतीय नारी का हृदय नहीं परखा। वे केवल एक को ही चाहती हैं, उसी के लिए जान दे देती हैं। चाहे वह मृणाल हो, चाहे रूपा ?"

"रूपा कहाँ है....मैं उससे क्षमा माँग लूँगा। सुना था उसने राजघाट के पुल से गिर कर जान दे दी.... ।"

"जान दे दी तो आप क्षमा किससे मांगेंगे ? अगर आप क्षमा मांगना ही चाहें तो उसकी माँ के पास जा सकते हैं....वहां वह भी जीवित है।"

"रूपा जीवित है....यह तुमने पहले क्यों नहीं कहा ? किसने उसे चम्बल की लहरों में से खींचा। किसने उसे नया जीवन दिया, बोलो.... ।"

"........अब मैं अपने बारे में क्या कहूँ ?"

"ओह भँवरसिंह, तुमने एक बड़ा काम किया। तुम्हें सरकार की ओर से इनाम मिल सकता है।"

"सरकार''''प्रत्येक कार्य इनाम के लालच में नहीं किया जाता। मानवता का भी कुछ तकाजा है। मुझे तो खुशी इस बात की है कि आपके हृदय में पश्चात्ताप का ज्वार उमड़ा।"

"तुम ठीक कहते हो भँवरसिंह''''मैं चाहता हूँ, वह मुझे क्षमा कर दे। क्षमा सारे कलुष को धो देगी।"

"क्षमा में बड़ी शक्ति है। वह बिछुड़ों को मिलाती है, बिगड़ों को राह पर लाती है। डाकुओं की क्षमा भी इसी प्रकार की क्षमा है। अगर डाकू अपने कृत्य पर पश्चात्ताप कर उठें तो उन्हें क्षमादान मिलना चाहिए।"

सरीन मेज पर सिर रखे फफकने लगा, बोला—"मैं बहुत मजबूर हूँ भंवरसिंह''''मैं इस विषय में कुछ नहीं कर सकता''''मैं तो एक छोटा सा सिपाही हूँ, जो अपनी ड्यूटी पर अड़ा हूँ। मैं तो इतनी बड़ी मशीन का छोटा सा पुर्जा हूं।"

"अच्छा चलूं साहब''''आज मैंने आपका बहुत समय लिया।"

"भंवरसिंह! मैं रूपा को मुंह दिखाने लायक नहीं हूँ। एक एहसान मुझ पर करो। तुम मेरे लिए क्षमा मांग लेना।"

"यह तो प्रायश्चित का एक अंग पूरा होगा''''असली महत्वपूर्ण अंग तो''''''''।"

"उस पर फिर विचार करूंगा। इस वक्त बहुत परेशान हूँ। ठाकुर के बारे में जितना मुझसे हो सकेगा, करूंगा।"

"धन्यवाद! नमस्ते।" कह कर भंवरसिंह चले आए।

३५

पेड़ के तने से लिपटी वह खड़ी है। आंसू जड़ को सींच रहे हैं। नरेन्द्र ने उसका कन्धा हिलाया—"बेड़मी····बेड़मी····देखो, मैं जा रहा हूँ····।"

"यह तो मुझे मालूम है···।" बेड़मी रो पड़ी।

"बेड़मी तुम रोओ नहीं, तुम्हें नहीं मालूम मेरा जाना कितना जरूरी है।"

"मुझे कुछ नहीं मालूम····मुझे कुछ नहीं मालूम। अकेला छोड़ दो मुझे ····जहाँ जाना हो, चले जाओ····मैं क्या कहती हूं····।" बेड़मी बिलख पड़ी।

नरेन्द्र ने उसके आँसू पोंछे—"हिश पगली, रोती है। और फिर मैं तो जल्दी ही लौट आऊँगा।"

"परदेशी कभी लौटे हैं" बेड़मी ने बेचैन होकर कहा—"यह तुम मुझे समझा रहे हो। तुम कभी न लौटोगे····कभी नहीं।"

"मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहता हूँ बेडमी, मैं अवश्य आऊँगा। मगर इस वक्त मेरा जाना जरूरी है। वहाँ तुम्हारी तरह एक मासूम लड़की मुसीबत में है। बोलो क्या तुम चाहती हो कि मैं किसी की मदद न करूँ।"

"········" बेड़मी गुमसुम उसे देखती रही।

"और तुम तो बहुत अच्छी लड़की हो, सबका भला चाहने वाली। अच्छा···अब मुस्कराकर विदा दो मुझे।"

बेड़मी के काले मोटे अधरों पर एक मुस्कराहट फैल गई, उसके मुँह से निकला—"बाबू! जहाँ जाओ सुखी रहो।"

नरेन्द्र मुड़ा। अपने झोंपड़े में गया। सामान संभालने लगा। आज उसकी मंजिल उसे पुकार रही है। उसका अधूरा काम उसे याद कर रहा है। वह जायगा, उसमें लगेगा। उसे पूरा करेगा। पीछे से खटका हुआ। देखा दर्वाजा खोल कर बेड़मी आई है। नरेन्द्र के मुँह से निकला—"ओह! तुम···आओ न।"

"बाबू ! मेरी छोटी सी भेंट मंजूर करोगे" बेड़मी ने कहा और कौड़ियों और मूँगों की माला उसकी ओर बढ़ा दी। नरेन्द्र ने माला को प्यार से देखा, चूमा और आँखों से लगा लिया, बोला—"बेड़मी, जीवन भर संभाल कर रखूंगा इसे, अमूल्य खजाने की तरह। और अभी तो मुझे तुम से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। उन आशाओं को पूरा करने के लिए जल्दी ही लौटूंगा।"

उसने सामान उठाया। बाहर निकला। देखा सभी गोंड युवक-युवतियाँ, वृद्ध, बच्चे वहां खड़े हैं, फफक रहे हैं। बहुतों ने मालाओं से उसे ढँक दिया। वह सबसे गले मिला। बड़ों से आशीष माँगा। बच्चों को गोद में उठाया और चल दिया स्टैण्ड की ओर।

स्टैण्ड पर वह सबसे फिर गले मिला और बस में चढ़ गया! उसने देखा, सब बिलख रहे हैं। बेड़मी गुम-सुम खड़ी है। बस स्टार्ट हुई। चल दी। बेड़मी चीखी, दौड़ी—"बाबू!" मगर सबने पकड़ लिया। नरेन्द्र देखता रहा। अपनी गीली आँखें पोंछता रहा।

रायपुर से उसने ट्रेन बदली। ट्रेन द्रुत गति से आगे बढ़ रही थी, पर नरेन्द्र के विचार उससे दूने वेग से आगे बढ़ रहे थे। उसे लग रहा था, यह दूरियाँ सिमट कर समा जाँय और वह जल्दी ही ग्वालियर पहुँच जाय। उसे लगता, वह हवा के पंखों पर उड़ कर वहाँ पहुँच जाय। जहाँ उसका कोई इन्तजार कर रहा है। उसने खिड़की में से बाहर झाँका, अन्धकार पीछे सरकता जा रहा था। कभी तो यह अन्धकार खत्म होगा। सुनहली सुबह आएगी।

वह देखता रहा, देखता रहा, सोचता रहा। कैसे होगी मृणाल। अकेली जूझ रही होगी परिस्थितियों मे। इस दुख को सह पा नहीं रही होगी। हाय! यह आकस्मिक दुख का असह्य भार। कौन होगा उसके पास। समाज के लोग। पता नहीं दुख में साथ देने वाले कौन-कौन होंगे। इतनी भावुक और कोमल मृणाल को अकेले ही यह सब देखने को मिला।

वह ही उसे अकेली छोड़ कर चला आया था। वह कितनी बिलखती रही थी। पर वह करता भी क्या? मजबूरियाँ उसे टिकने नहीं दे रहीं थीं और उसका आना हो नहीं सकता था। अगर वह चली आती तो बोस बाबू की देखभाल कौन करता। वह तो केवल भावुकता मात्र थी। अगर बीच ही में ऐसा हो जाता तो·······।

गाड़ी बड़े स्टेशन पार करती अंधेरे को चीरती आगे बढ़ी जा रही थी, और मंजिल पास आती जा रही थी । भोपाल आया । गाड़ी बदली । भोपाल से मेल में सवार हुआ । और अपने गंतव्य के सपने संजोता रहा ।

दिन के बारह बजे पहुँचा । सीधा मृणाल के यहाँ गया । द्वार सूना सा पड़ा था । जहाँ पहले मृणाल की किलकारियाँ गूंजती थीं, अब स्थिर मौन छाया हुआ था । अन्दर बढ़ा चला गया । देखा नीचे कोई नहीं है । वह सपाटे से सीढ़ियाँ चढ़ गया । ऊपर कमरे पर धीरे थपथपाया, "मृणाल ! मृणाल !···मैं आ गया हूँ ।"

"·······" कोई उत्तर नहीं । उसने धक्का दिया । किवाड़ खुल गए । अन्दर कदम रखा । देखा मृणाल पलंग पर अस्तव्यस्त बैठी है । बिखरे रूखे बाल, सिमटा मैला ब्लाउज, काली साड़ी । देह निढ़ाल, चेहरा मलाल । दाहिना हाथ माथे पर, बाँया पलग की पाटी पर । निगाह एकटक बोस बाबू के बड़े तैल-चित्र पर ।

"मृणाल···मृणाल···मैं आ गया मृणाल·······।"

"······" कोई आवाज नहीं । उसने जाकर उसका कन्धा छुआ "मृणाल ! इधर देखो ! तुम्हें क्या हो गया है ? मैं इतनी दूर से चला आ रहा हूँ, तुम्हारे लिए, केवल तुम्हारे लिए ।"

"··· ··" मृणाल कुछ न बोली, एकटक देखती रही । नरेन्द्र घबराया । क्या करे । कोई दिखाई न देता था । वह बढ़ा । मृणाल को सहारा दिया । मृणाल हल्की पंख सी उठ आई । उसे आगे बढ़ाया । तस्वीर के निकट ले गया । बोला—"देखो यह तुम्हारे पिता हैं । कितना प्यार करते थे तुम्हें । तुम्हारा प्यार लेकर ही चले गए । अब इनकी आँखों में देखो, कितना प्यार झलक रहा है तुम्हारे लिए । लगता है जैसे तुम्हें गोद में लेने के लिए मचल रहे हों ।

ऐसे पिता को खोकर कौन बेटी बैठी रहेगी । कौन ऐसी होगी जो उनके वियोग में दो आंसू न बहाए । तुम्हें तो छलक पड़ना चाहिए मृणाल ! क्या तुम्हारे आँसुओं का समुद्र सूख गया । रोओ मृणाल, इतना रोओ कि तुम्हारे पिता की आत्मा उस प्यार के सागर में डूब जाय । अपने मन की घुटन और उमस इस दरिया के सहारे बहा डालो नहीं तो मृणाल तुम्हारे पिता की आत्मा तुम्हें कभी माफ न करेगी ।"

"पिताजी····" मृणाल जैसे एक साथ चीख पड़ी और फफक-फफक कर रोने लगी । वह संभल न सकी । नरेन्द्र ने उसे छाती से लगा लिया । उसके आँसू पोंछता रहा । उसके बालों में उंगली फेरता रहा । मृणाल रोती रही, रोती रही । जब तक थक न गई, वह रोती रही ।

नरेन्द्र ने उसके आँसू पोंछे । ढारस दी । बोला—"मृणाल अच्छा हुआ ! तुमने अपने मन की तड़प रोकर मिटा ली । मैं तो तुम्हें देखकर डर गया था । अधिक चिन्ता न करो । तुम्हारे पिता ने सदा ही तुम्हें प्रसन्न रखा । आज भी वे तुम्हें प्रसन्न देखना चाहते हैं । अब यह कीमती मोती यों न लुटाओ । मेरी ओर देखो । मैं कितनी दूर से दौड़ा आ रहा हूँ····तब क्या मुझे····।"

बीच ही में मृणाल के अधर हिले—"नरेन्द्र···अब मत जाना कहीं ·········बहुत थक गई हूँ ।"

"कहीं नहीं जाऊँगा·········तुम्हें छोड़कर । चलो वहाँ कुर्सी पर बैठो । अच्छी तरह । कैसा हुलिया बना रखा है ।" वह उसे ले गया । अलमारी में से साड़ी निकाली, उसे दी । मृणाल गुसलघर में गई । हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदल कर निकली । इतने में नरेन्द्र ने नौकर को बुला कर कमरा साफ करवा दिया था । मृणाल आई तो जी उसका हल्का हो गया था । दोनों आरामकुर्सी पर बैठे ।

"कब आए नरेन्द्र" फटी फटी आँखों से मृणाल ने कहा ।

"अभी अभी चला ही आ रहा हूँ ।" नरेन्द्र ने कहा—"कल सुबह का चला हूँ, बिना खाए, पिए, तुम्हारी आस लिए दौड़ा आ रहा हूँ····।"

"अरे ! पहले क्यों नहीं कहा," मृणाल ने घण्टी बजाई । नौकर को नरेन्द्र के लिए खाना लाने के लिए कहा । नौकर खाना रख गया । मृणाल ने कहा—"पहले भोजन कर लो, बाद में बातें होंगी ।"

"और तुम···?"

"····· ········"

"तब ठीक है ! तुम न खाओगी, तो मैं भी ऐसे ही लौट जाऊंगा । तुम्हारे घर आया हूं, इतनी दूर से । भूखा ही रहूंगा ।"

मृणाल उठी । निवाला उठाया । नरेन्द्र के मुंह में दे दिया । नरेन्द्र ने देखा, एक अस्फुट सी मुस्कराहट । बोली—"इतने रूठोगे, तो कैसे रहूंगी मैं

..............अब तो अकेली न छोड़ जाओगे...........फिर क्या करूंगी इस जीवन का।"

नरेन्द्र ने खाया, उसे खिलाया। बोला—"तुम चिन्ता क्यों करती हो? यह जीवन अपने लिए नहीं है। उठो! देखो हमारा देश, हमारा समाज हमें पुकार रहा है। मेरे साथ कदम बढ़ाओ। मंजिल हमारी बाट देख रही है।"

वह उठी, बोली—"अब तुम आ गए हो...........तो सब करूंगी। पिछले दिनों तो कोई नहीं था...........भंवरसिंहजी ने दिन-रात दौड़धूप की... बहुत मदद की उन्होंने। नहीं, तो.......।"

"कहाँ हैं भंवरसिंह.......?" नरेन्द्र बोला।

"हाजिर हुआ मंत्री महोदय," भंवरसिंहजी ने एकाएक प्रवेश कर कहा—"डाक्टर साहब को लेने गया था। पर अब क्या जरूरत है असली डाक्टर तो आ ही गए। आइए डाक्टर साहब...........मिलिए इनसे। ये हैं श्री नरेन्द्र बाबू.......।"

"बड़ी खुशी हुई मिलकर" डाक्टर ने कहा।

"डाक्टर साहब! आपके मरीज को खूब रुलाया है मैंने। और एक गलती की है। थोड़ा सा खाना भी खिला दिया है।" नरेन्द्र ने हँस कर कहा।

"आपने ठीक किया, इन्हें इसकी ही आवश्यकता थी" डाक्टर ने कहा— "अब इन्हें दिल-बहलाव की बहुत जरूरत है।"

"इस ओर से आप बेफिक्र रहें" रूपा ने प्रवेश कर कहा—"अब मृणाल दीदी बिल्कुल ठीक हो जाएँगी।"

"अरे रूपा तुम.......?" नरेन्द्र ने आश्चर्य में पूछा।

"हाँ मैं क्यों नहीं?" रूपा ने कहा और कमरा हँसी से भर गया।

३६

घने-घने जंगल । बियाबान, ऊँचे नीचे भरके । चला जा रहा है । जिन भरकों की ओर दृष्टि जाते ही थरथराती हैं, उन्हीं में आज फिर घुसा चला जा रहा है । जहाँ हर समय गोली और बन्दूक की रामायण गाई जाती है, वहीं एक-चित्त हो चला जा रहा है । न भीतर का भय, न बाहर की चिन्ता । आज तो वह जायगा ही । कब तक रुकेगा । यह आग जो इतने दिनों से उसके हृदय में लगी है, कब तक सुलगती रहेगी । कभी तो बुझेगी । उसने बहुत बाट देखी । लोहे से लोहा बजाने, गोली पर गोली उड़ाने वाले सैकड़ों हैं । पर इससे कभी कुछ हुआ है ? आग और भड़की है, तूफान और मचला है । मगर वह इस तूफान के बीच में रास्ता बनाएगा और यह दुर्दशा अधिक दिन नहीं होने देगा ।

उसके कदम तेजी से आगे बढ़ रहे हैं । आगे, और आगे । कभी न थकने के लिए । उसकी आँखों में एक सपना नाच रहा है । यह ऊँचे-नीचे भरके समतल हो रहे हैं । बियाबान जंगल में मानवता थिरक रही है । इन अछूते, अनचाहे बीहड़ क्षेत्रों के स्थान पर चौड़े चौड़े खेत दिखाई दे रहे हैं । इन खेतों में सुनहली फसल नाच रही है । मनुष्य मनुष्य से गले मिल रहा है । दिशाएँ झूम-झूम जा रही हैं ।

वह बढ़ रहा है, पीछे न लौटने के लिए । आज तो पहुँच ही जायगा, मंजिल पर । वहीं अड़ा रहेगा । जब तक कि रास्ता स्वयं उसकी ओर न मुड़ जाय । आज इतना आत्मबल लेकर निकला है, कि आशाओं ने उसका मन मजबूत कर दिया है ।

एक साथ खटका हुआ । कोई आ रहा है । पुलिस का आदमी तो नहीं, कोई आदमी तो नहीं । गोली चलाओ । नहीं, अभी नहीं । ठहरो, देखो । अन्धे उफान में यों अनर्थ न कर बैठो । आ रहा है, इसी ओर । आने दो ।

"नाहर............" घाटियों में आवाज गूंज गई—"कहाँ हो ? एक दिन तुम मुझे उठा कर लाए थे, आज मैं खुद आ गया हूँ............बोलो नाहर तुम कहाँ हो ?"

"ओह ! नरेन्द्र बाबू !........आइये मैं यहाँ हूँ।" नाहर ने कहा और दो-तीन आदमी दौड़ा दिए, जो नरेन्द्र को ढालों पर से बचा कर ले आए। नाहर चरणों में गिर पड़ा, पर नरेन्द्र ने उठाकर छाती से लगा लिया।

"कब आए नरेन्द्र बाबू" नाहर ने पूछा, "मुझे खबर भी न दी।"

"खबर क्या नाहर ! आज मैं स्वयं ही आ गया।"

"आप मेरे सिर आँखों पर, मृणाल देवी कहाँ है........वे नहीं आईं।"

"नहीं, मैं अकेला ही आया हूँ....तुम से कुछ जरूरी बात करनी है।"

"करो न भैया........मैं तो तुम्हारी बातों का प्यासा ही हूं।" नाहर ने कहा—"पहले इधर बैठो तो सही, मुझे कुछ खातिर तो करने दो।"

"पहली खातिर से ही दबा हूँ। नाहर मुझे थोड़ा समय दो। अपना कीमती समय। जबकि तुम, मन के सारे झरोखे खोल कर मेरी बात सुन सको।"

"आप कहिए तो नरेन्द्र बाबू ! इतने अधीर क्यों हैं ? क्या किसी ने आपसे कुछ कहा है। अगर किसी ने टेढ़ी निगाह से देखा हो तो उसकी आँखें निकाल कर आपके सामने हाजिर करूँ....।"

नरेन्द्र बोला—"मेरे मन की निगाह ने ही मुझे कहा है। मेरे मन में एक तूफान नाच रहा है, जो मुझे तुम्हारे पास ले आया है। अब तुम थोड़ी देर के लिए डाकू नाहर नहीं, एक साधारण मनुष्य 'नाहरसिंह' बन जाओ, ताकि मैं जो बात तुम्हें कहूँ, वह तुम्हारे गले उतर सके।"

नाहर ने बन्दूक फैंक दी। रायफल की माला गले में से उतार दी। बोला—"और कहिए नरेन्द्र बाबू ! हृदय चीर कर दिखाऊँ कि उसमें आपके लिए कितनी श्रद्धा है ?"

"नहीं मुझे विश्वास है........और वही विश्वास मुझे यहाँ खींच कर लाया है। तुम मेरे अपने हो नाहर ! मुझे तुम पर पूरा भरोसा है।"

"तब आज्ञा दीजिए....मेरे मन का बोझा हल्का कीजिए।"

"तब सुनो नाहर ! मैं तुम्हें लेने आया हूँ। अपने साथ ले जाऊँगा।"

"पर कहाँ, क्यों····?"

"वहाँ, जहाँ एक दिन पहुँचना ही है। आज नहीं तो कल। इसलिए कि मैं अधिक दिनों तक तुम्हें यों भटकते, जनता को परेशान होते और पुलिस को जंगल छानते नहीं देख सकता। अब तो बस एक ही उपाय है ········।"

"क्या········?" नाहर ने आँखें फाड़ कर पूछा।

"आत्मसमर्पण ····स्वयं चल कर पुलिस में कैद हो जाओ।"

"········"

"चुप क्यों हो नाहर! बोलो क्या तुम्हें मेरा प्रस्ताव मंजूर नहीं···।"

"नहीं नरेन्द्र बाबू! आप कहें तो मैं खुशी खुशी अपने गले में फाँसी का होना फन्दा डलवा लूं। मगर इससे होगा क्या? क्या मेरे हाजिर होने से पुलिस की ज्यादतियाँ कम हो जाएँगी। क्या और डाकू पैदा न होंगे?"

"यह तो प्रयोग मात्र है नाहर! जिस पर किसी न किसी का बलिदान पड़ेगा। तुम्हें अन्तःकरण शुद्ध करने का अवसर मिलेगा। दूसरे साथियों को सोचने समझने का मौका मिलेगा। हो सकता है तुम्हारे इस त्याग से सभी इस अहिंसा के मार्ग को अपना लें और···पुलिस····।"

बीच ही में नाहर बोला—"पुलिस हमें कहीं का न छोड़ेगी········कोड़ों, बूटों की मार से हमारे शरीर को छलनी कर देगी····हमें इतना अपमानित करेगी कि हम जहर खा लेना चाहेंगे और खा न सकेंगे। इतना घोर अन्याय सह कर हमें मिलेगी फांसी, बोधासिंह की याद अभी ताजी है। कैसी दुर्गत की थी। पुलिस कभी किसी को छोड़ती है नरेन्द्र बाबू?"

नरेन्द्र ने कहा—"इसका जिम्मा मेरे ऊपर। नाहर! सभी आदमी एक से नहीं होते। सबके हृदय में प्रेम और दया के भाव भरे हैं, केवल उन्हें प्राप्त करने का गुण आना चाहिए। यह दुनिया इन्हीं गुणों के आधार पर चल रही है।"

नाहर बोला—"नरेन्द्र बाबू! आपने इस दुनिया को अन्दर से नहीं देखा है। जानते हो उस फकीरचन्द को। नाम तो है फकीरचन्द पर है लखपति। लाखों रुपये इधर-उधर करता है। कितना चूसता है जनता को। सूद पर ब्याज देता है तो खाल खींच लेता है। सौ का माल, डेढ़ सौ में बेचता है। रुपये को

पेट में से निकाल लेता है। कोई कुछ नहीं कहता। रिश्वत से मुँह जो भर देता है। जी चाहता है............उसे दर दर का भिखारी बना दूँ।"

"आत्मा की शान्ति तुम्हें तब भी न मिलेगी। यह तो जभी मिलेगी, जब तुम एक प्रतिष्ठित नागरिक की भाँति जीवन बिताओ। एक दूसरे को गले लगाओ........।"

"यह तो मैं भी चाहता हूँ नरेन्द्र बाबू! पर मुझे जीने कौन देगा? और अब इस दुनियां में वापस जाकर करूँ भी क्या? यह दुनिया बहुत गन्दी है। सफेद कपड़े पहनने वाले अन्दर से बहुत काले हैं। ये काला बाजार करते हैं, नकली सोना बेचते हैं, मिलावट करते हैं। असली डाकू तो ये हैं नरेन्द्र बाबू! ऊपर दिखने वाले ये शरीफ कितनों का घर बर्बाद कर चुके हैं। इनसे तो हम अच्छे हैं....।"

बीच ही में नरेन्द्र बोला—"तुम तो बहुत अच्छे हो। लाखों में अच्छे। इन लोगों को मार्ग पर लाने के लिए हमें दुनिया में, समाज में वापस जाना पड़ेगा। समाज में अच्छे आदमी बढ़ेंगे तो खराब आदमी अपने आप कम न होंगे?"

"ये अपने आप कम न होंगे नरेन्द्र बाबू! इनको तो बस एक ही उपाय है....इन्हें गोली से....।"

"सब कुछ तुम्हीं कर लोगे या ईश्वर पर भी कुछ छोड़ोगे।"

"ईश्वर........ईश्वर तो मेरा सब कुछ है। उसने सदा मेरी आन रखी है।"

"वही आन तो रखने के लिए कह रहा हूं। तुम्हें इस आन को निभाना होगा। तुम राजपूत हो, और राजपूत आन से कभी नहीं हटता। तुम्हारी आन से भी ऊपर एक और भी बड़ी आन है, देश की आन। इस देश की आन के लिए राजपूतों ने प्राण निछावर किए हैं, राणा प्रताप ने अपना सब होम कर दिया। मानसिंह तौमर ने क्या कुछ नहीं किया। बोलो नाहर........क्या तुम इस देश के बेटे नहीं हो। इस मिट्टी को उठाओ। तुम्हें माँ की याद आ जाएगी। कब तक इसे यों गोलियों से भूनते रहोगे। यह माँ की छाती कब तक छलनी करते रहोगे नाहर। तुम डाकू की तरह नहीं, एक आदमी की तरह सोचो।"

"नरेन्द्र बाबू...." नाहर रो पड़ा—"मुझे माफ कर दो।"

"माफ तो तुम्हें तुम्हारी आत्मा करेगी। सोचो नाहर। तुम लोगों के त्याग से इस देश की काया पलट हो जाएगी। ये ऊँचे-नीचे भरके समतल हो जाएंगे। इन जगहों में नहरों, नालों का जाल बिछ जायगा। दूर तक हरे हरे सुनहले खेतों में बालियाँ ठुमक रही होंगी और तुम्हारे भाई मिलन के गीत गा रहे होंगे। बोलो क्या तुम चाहते हो, ऐसा कभी न हो''''बोलो नाहर।"

नाहर बिलखने लगा। बोला—"तुम मेरे सोने सा देश मुझे वापस दे दो। मुझे जहाँ चाहे ले चलो। मैं ना न करूंगा। मेरी बोटी बोटी उड़ जाय, पर मेरा यह इलाका सरसब्ज रहे। यह देश हमारी वजह से बहुत बदनाम हो चुका है। इस कलंक से बचा लो नरेन्द्र बाबू ! आपने मेरे मन का सारा कलुष धो दिया। अब मुझे क्या करना है, कहो।"

"मैं बताता हूँ नाहर ! चलें''''और सबको जागरण का सन्देश दें।"

सबने देखा। आश्चर्यचकित रह गए। नरेन्द्र और नाहर के मुँह से एक साथ निकला—"मृणाल ! तुम यहाँ''''और रूपा तुम भी ?"

"हाँ ! मैं तुम सबको लेने आई हूं। अपने स्वतन्त्र देश की स्वतन्त्र वायु में विचरण करने का सन्देश देने। उठो, देश के लिए अपना जीवन दान दो। चलो मेरे साथ, जागरण का शंख फूँकें। जण्डेल, हीरा, भोला, मंगल''''सबको अपने साथ लें।"

"जण्डेल को तो मैं ले आया हूँ" भँवरसिंह ने यकायक प्रवेश किया, बोले—"इन पर मेरा कर्ज था, आज इन्होंने उतार दिया। अब नाहर और जण्डेल दो बड़े बहादुर अपने साथ हैं।"

"तब बहादुरी से आगे बढ़ें" नरेन्द्र ने कहा—"क्यों न सबको साथ ले लें।"

"हाँ अभी, आज ही ''''।" रूपा बोली।

"हाँ चलें''''।" सबने कहा।

नरेन्द्र, मृणाल, भँवरसिंह, रूपा, नाहर और जण्डेल चल पड़े। और सब इनके पीछे-पीछे चले। चल पड़े उस दिशा की ओर जहाँ उनके साथियों के जमाव थे, जहाँ अलग-अलग गैंग पड़े भविष्य की योजना बना रहे थे। कितना, किसे, कब, कहाँ लूटना है, बर्बाद करना हैं ? कहाँ का दीपक बुझाना है, कहाँ अंधेरा

करना है? नाहर को देखा तो उठ खड़े हुए। दो गुटों के सरदारों ने हाथ मिलाया। अपनी भाषा में बातें हुईं। नरेन्द्र से परिचय हुआ। नरेन्द्र ने ऊँच-नीच समझाया। कहा—"वहाँ बीच में नीम के बड़े पेड़ के नीचे हम सब इकट्ठे हों। वहीं चर्चा करेंगे।"

झुण्ड के झुण्ड नीम के पेड़ के नीचे जमा होने लगे। उस बियाबान में मंगल वेला आई थी। सब निश्चिन्त थे। आज का दिन त्यौहार बन गया था। सबने साथ-साथ अन्तिम बार भोजन करने की योजना बनाई। बीच में उपलों का अलाव दहक रहा था। उस पर बड़े तपेले में दाल उबल रही थी। पास ही मृणाल और रूपा आटा गूँध रही थी। लोग आटे की गोल बाटी बना-बनाकर रख रहे थे। कुछ आटे में दूध, घी, आदि मिलाकर उसे भुरभुरा करके गोल-गोल बड़े गोले बना कर सेंक रहे थे। कुछ सिके गोलों को कूट रहे थे। उस ओर कुछ आदमी खीर बनाने में जुटे थे। नरेन्द्र और भँवरसिंह मेवा काट रहे थे। जण्डेल बड़े-बड़े पत्ते तोड़कर ला रहा था। नाहर पत्तों को मिलाकर पत्तल बना रहा था, दोने बना रहा था।

दोपहर बाद तक तैयारी खत्म हुई। दाल, बाटी, चूरमा, खीर और सीरा तैयार हुआ। सब एक गोलाकार में लाइन लगा कर बैठे। मृणाल और रूपा ने सबको परोसा। सब ने साथ-साथ खाया। सब मना कर रहे थे। मृणाल जिद कर रही थी। सरदारों की आँखें भर आईं। आह! ऐसा दिन जीवन में आज देखने को मिला। जीवन भर भागते रहे, दौड़ते रहे, भटकते रहे। किसी दिन खाया, किसी दिन नहीं। कहीं बैठकर खा लिया, कहीं खड़े-खड़े। कब उन्होंने बैठ कर खाया। उनके भी माँ हैं, बहन हैं। आज साध पूरी हो गई। बहनों के हाथ से खा लिया। जीवन भर की भूख मिट गई।

तीसरे पहर तक सब खाते रहे। चहकते रहे। सबको खिला-पिलाकर मृणाल और रूपा ने खाया। जगह साफ की, बर्तन सँभाले। सब का हृदय गद्गद हो आया। इतने बड़े घराने की बेटी, आज हमारे बीच हमारे घर की लड़की की तरह काम में जुटी हैं। नरेन्द्र और भँवरसिंह ने त्रिपाल बिछाया। नरेन्द्र बोला—"नाहरसिंह मंगल दद्दा, हीरा कक्का, भोला ठाकुर, बब्बर भाई सब आ जाओ इधर यहाँ। देखो इस नीम के नीचे छाँव कितनी घनी है, कितनी शीतल है। आओ इस छाँव का आनन्द लो। कितनी मस्त मधुर और शीतल छाँव है यह जीवन भर की तपन, थकान मिट जायगी यहाँ आकर।"

मृणाल ने कहा—"आज हमारे भाग जाग गए, जो हमारे बिछुड़े भाई हमें फिर मिल गए।"

रूपा ने कहा—"आज तो दीवाली है दीदी।"

मंगलसिंह ने कहा—"दीवाली ही है जो हम पापियों के हृदय में ज्योति जागी बहन। और भाग तो हमारे जागे हैं जो नरेन्द्र जैसे राह दिखाने वाले हमें मिले। वर्ना हम तो जीवन भर इसी आग में भुनते रहते।"

भँवरसिंह ने कहा—"केवल आप ही नहीं दद्दा, हम भी इस आग से झुलस रहे थे। आज जाकर देखो, बहुत से दुधमुँहे बच्चे गोली की आवाज के सपने में चीख पड़ते हैं। बहुत सी विधवाएँ अब चक्की पीस कर अपना पेट पाल रही हैं। फले-फूले घर सतुए खाकर गुजारा कर रहे हैं।"

हीरा बोला—"ये पाप हमारे कारन ही हुए हैं। अब और मत लजाओ मास्टर। हमारे पुराने कर्म ही ऐसे थे, जो इस जनम में हमारे हाथ से यह हुआ।"

भोला बोला—"अब तो यह बिगड़ा जनम सुधर जाय। इस जनम में कितना ही दुख मिले, अगला तो सुधरेगा।"

जण्डेल ने कहा—"अरे इसी जनम में जो बोएंगे, ईख पेरेंगे।

मंगलसिंह ने कहा—"भगवान जाने।"

नाहर बोला—"ऐसे हताश क्यों होते हो भैया। जब तक नरेन्द्र बाबू हमारे ऊपर हैं, हमें कोई चिन्ता नहीं है।"

मृणाल बोली—"और हम दोनों को भूल ही गये नाहर!"

नाहर ने कहा—"तुम्हें तो जनम-जनम में न भूलूंगा। मैं तो भगवान से यही चाहता हूँ कि अगले जनम में तुम्हारा नौकर बनूँ, जीवन भर सेवा करता रहूँ।"

रूपा बोली—"मेवा भी मिलेगा।"

नाहर ने कहा—"मेवा की चाह नहीं है। तुम सबके चरनों को धोकर पी लूँ, तो तर जाऊँ।"

भँवरसिंह बोले—"तुम तो हमारे भाई हो। हमारे सगे-सम्बन्धी हो। तुम तो हमारे दिल में समा गए हो।"

रात तक बातें होती रहीं। फिर संगीत का प्रोग्राम बना । सबने अलाप अलाप कर गाया । जगडेल ने होरी गाई। नाहर ने बहरतबील। मंगल भोला ने आरती सुनाई। मृणाल और रूपा ने मीरा के पद गाए। भँवरसिंह ने अपनी कविता सुनाई। बब्बर और हीरा ने आल्हा गाया।

आधी रात बीते सब इधर-उधर पड़ रहे। खुली चाँदनी में, नीले आकाश तले, गुदगुदी जमीन पर। जैसे सब अपनी माँ की गोद में सोए हों।

सुबह तड़के उठे। तैयार हुए। आगे-आगे नरेन्द्र मृणाल, रूपा। पीछे सब लोग। सबसे पीछे भँवरसिंह कीर्तन गाते, ताली बजाते जा रहे थे। लग रहा था जैसे यात्री तीरथ करने जा रहे हैं, गंगा नहाने। वही स्वर, वही ढंग, वही अन्दाज।

रात की स्याही फटती जा रही थी। सुबह की सुनहली किरन उगती आ रही थी।

३७

तिल रखने को भी जगह नहीं। आज हाईकोर्ट में इतनी भीड़ है कि व्यवस्था नहीं हो पा रही है। गाँव-गाँव से, शहर-शहर से लोग चले आ रहे हैं। शहर के लोग अपना काम-काज छोड़कर, दूसरे वकील अपना मुकदमा छोड़ कर आ गए हैं आज इस सेशन कोर्ट में। आज हाईकोर्ट में डाकू नाहरसिंह का केस है।

अदालत का कमरा खचाखच भरा है। पब्लिक प्रोसीक्यूटर, वकील, एडवोकेट से बेंचें भरी पड़ी हैं। वातावरण में भारी व्यस्तता है। दूर जाली में नाहर बेड़ियों हथकड़ियों में जकड़ा खड़ा है। सब लोग उसे आश्चर्य से देख रहे हैं। जंगल का राजा आज सींखचों में कैद है। नाहर खड़ा है, सिर झुकाए, हाथ बाँधे। जैसे कह रहा हो, देखने वालो, अब और न मुझे लज्जित करो। तुम्हारी एक-एक दृष्टि सौ तीरों जैसी मुझे छेदती है। भगवान के लिए मुझे सांस लेने दो, नहीं तो अपने हाथों अपना गला घोंट लूँगा।

अचानक आवाज हुई 'साइलेंस।' जज साहब आ रहे हैं। सब लोग शांत हो गए। पिछले गेट से जज साहब पधारे। सब एक साथ खड़े हो गए। जज साहब ने आसन ग्रहण किया। सब अपनी-अपनी जगह पर बैठ गए। हाल में शान्त व गम्भीर वातावरण छा गया। बिजली के पंखे सर्र-सर्र चल रहे थे और जज साहब के न्यायासन के ऊपर लिखे 'सत्यमेव जयते' की घोषणा कर रहे थे। न्याय की तुला अपने काँटे पर अचर स्थिर थी। ऊपर बापू का मुस्कराता मुख सबको आशीर्वाद दे रहा था।

तहरीर पेश हुई। 'मुकदमा नम्बर तीन सौ तिरानवे। सरकार बनाम श्री नाहरसिंह वल्द श्री हिम्मतसिंह साकिन रजूपुरा, जिला मुरैना, दफा नं० ३०२,

३६१, १२४, ३६५ बाबत कत्ल, डाके, बगावत, अपहरण हजूर आला की सेवा में पेश है ।'

कागजात पेश किए गए। जज ने एक सरसरी निगाह डाली। हुक्म हुआ— "मुल्जिम पेश किया जावे।"

दूर जाली के सींखचों में आवाज हुई। सिपाहियों ने ताला खोला। चार सिपाही आगे, बीच में नाहर, पीछे चार सिपाही। साथ में डी. एस. पी., दो थानेदार। धीरे-धीरे कदम मिलाते आगे बढ़े। कठघरे के पास आकर सिपाही रुके। हथकड़ी खोली। नाहर को कठघरे के अन्दर किया और इधर-उधर मुस्तैदी के साथ खड़े हो गए।

जज ने ऊपर से नीचे तक देखा। नाहर सिर झुकाए, हाथ जोड़े खड़ा था। बाल बिखरे हुए, हजामत बढ़ी हुई। कपड़े मैले, फटे हुए। जज साहब मुस्करा दिए, बोले—"तुम्हीं हो नाहर···विश्वास नहीं होता।"

"मैं ही हूँ सरकार" नाहर ने पलकें झुकाए कहा—"मुझे दुख है कि मैं असली नाहर को जंगलों में दफन कर आया।"

जज हँसे, बोले—"अच्छा, ठीक है। इस मुकदमे की फरियादी सरकार है अतः सरकारी वकील मुकदमे की तपसील पेश करें।"

सरकारी वकील खड़े हुए, बोले—"योर आनर! आपकी आज्ञा से मैं मुल्जिम की लाइफ हिस्ट्री बयान करना चाहता हूँ। क्योंकि उसकी जिन्दगी खुद एक अपराध है।

'नाहरसिंह जिसे पुलिस रिकार्ड्स के अनुसार पूरी तरह पहचान लिया गया है, ग्राम रजूपुरा जिला मुरैना का अदना-सा काश्तकार था। खेत की मेंड़ के मामले में उसने गाँव के मुखिया सेठ श्री दयाराम की मारपीट की और पुलिस की हिरासत में आया। केस तय भी न हुआ था कि मुल्जिम रात में जेल कि खिड़की तोड़ कर फरार हो गया। पुलिस ने उसे न्याय के आगे हाजिर करने के लिए कोशिश की तो पाँच सिपाही गोली से मार दिए गए और उनके हथियार जब्त कर लिए गए।'

तब से आज तक मुल्जिम ने अनेकों अपराध किए हैं, जिनमें से मुख्य ये हैं—

'(१) ग्राम रजूपुरा, श्यामपुर, उचेटी, मौकमा, सरोतिया, सन्तपुरा में दिन-दहाड़े डाके। जिनमें कुल लागत तीन करोड़ पैंतीस लाख का माल लूटा गया।

(२) श्री सेठ सूरजमल, हजारीलाल, दीनदयाल और अम्बालाल का अपहरण किया गया जिन्हें बीस व तीस हजार की रकमें लेकर छोड़ा गया।

(३) मुल्जिम की गोली से अब तक चालीस सिपाही, दो सेठ, पाँच चमार, तीन कारीगर और दो मुखबिर जान से मारे डाले गए।

इसके अलावा हजूर, मुल्जिम ने बहुत-सी खेती का नुकसान किया। सड़कों को तोड़ा और थाने जलाए। साथ ही प्रदेश की शान्ति को भंग किया।

'अपराधों की तीव्रता को ध्यान में रख कर ही राज्य सरकार ने मुल्जिम को जिन्दा पकड़ लाने पर बीस हजार का नकद इनाम घोषित किया है। मुल्जिम सरकारी लिस्ट में डेकोएट 'ए' के नाम से दर्ज है।''

सरकारी वकील ने आवेश में कहा—''योर आनर! मुल्जिम पर एक नहीं, कई अपराधों की जवाबदारी है। इस तरह का मुल्जिम जो जिन्दगी भर सरकार और पुलिस की आँखों में धूल झोंकता रहा, दिन व दिन कानून की गिरफ्त से दूर भागता रहा, क्यों न इसे कड़ी से कड़ी सजा का मुस्तहक माना जाय?'

'मेरा निवेदन है योर आनर! सरकार के प्रति बगावत करने के अपराध में इसे तीन साल की सख्त कैद और जुर्माना का दण्ड मिलना चाहिए।'

'इस व्यक्ति ने केवल बगावत ही नहीं की, बल्कि सुख-चैन से जीवन बिताने वाले इज्जतदार लोगों को उठा ले जाने में इसने कोई कसर नहीं रखी। दफा नं० ३६२ और ३६५ के अनुसार यह सात साल की सजा का मुस्तहक है।'

'जो बड़े-बड़े भयंकर डाके डाले हैं उनको मद्देनजर रखा जाय और जनता की जन-धन की हानि का अन्दाजा लगाया जाय तो यह ३६१वीं दफा के तहत इसे दस साल की सख्त कैद मिलनी चाहिए।'

'हजूर इसके अपराधों की कोई गिनती नहीं है। सब मिला कर इसे कम से कम बीस साल की सख्त सजा और भारी जुर्माने से दण्डित किया जावे।'

'योर आनर! ऊपर जो अपराध मैंने गिनाए हैं, वे उन गम्भीर अपराधों के आगे नगण्य हैं, जो मैं अभी बयान करने जा रहा हूँ। हजूर! इस आदमी के हाथ न जाने कितने लोगों के खून से रंगे हुए हैं। न जाने कितने निरपराध लोग

इसकी गोली के शिकार हुए हैं। उन लोगों में अच्छे घराने के लोग, साधारण नागरिक, सरकारी आदमी और सिपाही हैं, जिनकी जानों का बदला इस एक आदमी की जान से नहीं चुकाया जा सकता। हजूर, मैं कहूँगा कि इसे आज कारावास में काले पानी की सजा मिलनी चाहिए।'

'बल्कि योर आनर! उन बिलखते बच्चों, फफकती माँओं और ठण्डी सांसें लेतीं विधवाओं के आँसुओं की ओर गौर करें तो मालूम होगा कि यह आदमी कितना भयानक, कितना क्रूर और कितना संगदिल था, जिसने इंसान की जान व माल के साथ खिलवाड़ किया। इसे जो भी सजा दी जावे वह कम है। दफा नं० ३०२ चीख-चीख कर कह रही है सरकार! इसके लिए एक ही सजा है। वह है सजाए मौत।'

"योर आनर! मैं अपील करूँगा कि मुल्जिम को सजाए मौत दी जाय।"

सरकारी वकील का मुँह लाल पड गया। मुट्ठियाँ भिच गईं। गला फाड़ कर बोले—"सजाए मौत! योर आनर! सजाए मौत ही एक सजा है इस मुल्जिम के लिए।"

सारा हाल मुर्दनी खामशी से ढंक गया। सबके सिर नीचे थे। सबकी छाती धड़-धड़ कर रही थी और हाल में आवाज गूंज रही थी—"सजाए मौत····सजाए मौत।"

जज साहब ने सिर उठाया। नाहर की ओर आकृष्ट होकर कहा—"मुल्जिम नाहरसिंह! तुम पर जो इल्जामात लगाए गए हैं, क्या वे सही हैं?'

नाहर चुप रहा। जज ने फिर कहा—"बोलो मुल्जिम! खामोश क्यों हो? क्या तुम इन इल्जामों को इकरार करते हो?"

नाहर के अधर हिले। सब उस ओर टकटकी लगाए देख रहे थे। नाहर ने कहा—"हजूर! मैं क्या कहूँ! वकील साहब ने सब कह दिया है। मेरे कहने के लिए अब बचा ही क्या है?"

अदालत ने मुस्कराकर पूछा—"क्या तुम्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है। अगर तुम कुछ कहना चाहो तो अदालत उसकी इजाजत देती है।"

नाहर ने गर्दन हिला कर कहा—"नहीं सरकार! मेरे पास कहने को कुछ नहीं है। वकील साहब ने ठीक कहा है कि मेरी जिन्दगी खुद एक अपराध है। मुझे तो दण्ड ही चाहिए।"

सरकारी वकील ने कहा—"योर आनर ! मुल्जिम ने अपने कसूर का इकबाल कर लिया है। अब बहस के लिए कुछ नहीं बचा। अतः सरकार....इसकी तमाम गलतियों की सजा इसे मिलनी ही चाहिए।"

जज ने नाहर की ओर देख कर कहा—"तुम कुछ नहीं कहना चाहते ? क्या तुम्हारा कोई वकील है.......?"

"जी नहीं.... ।" नाहर ने धीमे से कहा।

सरकारी वकील ने कहा—"अब सजा सुनाई जाय, मुकदमा यहीं खत्म होता है।

"ठहरिए ! मुकदमा यहीं खत्म नहीं होता, योर आनर ! मैं हूँ नाहर की वकील।"

"तुम.... !" जज साहब के मुँह से निकला।

सबने आश्चर्य से देखा, मृणाल काला चोगा पहने अदालत के सामने हाजिर हो गई। उसने कहा—"हाँ....मैं....नाहरसिंह की तरफ से सफाई पेश करने की इजाजत चाहती हूँ।"

उसने अपने प्रमाणपत्र पेश किए। जज साहब कुछ कहें कि सरकारी वकील उठे, बोले—"योर आनर ! मुल्जिम ने अपना इल्जाम कबूल कर लिया है, अब सफाई के लिए रह ही क्या गया है ? फैसला सुनाने के वक्त इजाजत नहीं दी जा सकती।"

जज ने कहा—"सफाई पेश करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। आज अदालत का वक्त पूरा हो चुका है। सफाई अगली तारीख पर पेश की जाए। आज अदालत बर्खास्त की जाती है।"

३८

मृणाल ने फाइल उठाई, बोली—"योर आनर ! कहानी यहाँ से शुरू होती है।"

अदालत का हाल आज दुगुनी भीड़ से खचाखच भरा था। सबकी निगाहें मृणाल पर टिकी थीं। मृणाल सफेद साड़ी, काले चोगे में लिपटी बादलों में चन्द्रमा-सी दिखाई पड़ रही थी, जिसकी शीतल किरणें विदग्ध हृदयों को संतृप्त कर देती हैं। जस्टिस मेहरोत्रा उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रहे हैं। कठघरे में नाहर शान्त सिर झुकाए खड़ा है।

मृणाल ने कहा—"माई लार्ड ! नाहर एक गरीब किसान था। जिसके खेत का हिस्सा सेठ दयाराम द्वारा दबा लिया गया। नाहर ने इसकी खबर, पटवारी, कानूनगो को दी। मगर उसके पास देने के लिए पैसे न थे, इसलिए उसकी कौन सुनता। मजबूर होकर उसे जबर्दस्ती अपनी जमीन पर कब्जा करना पड़ा। इस बारे में मैं सेठ दयाराम के बयान पेश करना चाहती हूँ।"

"सेठ दयाराम हाजिर किये जावें।" अदालत ने हुक्म दिया।

सेठ दयाराम आए। दूसरे कठघरे में खड़े हुए। गीता की शपथ दिलाई गई। मृणाल ने पूछा—"नाहरसिंह के साथ तुम्हारी क्या वारदात हुई थी।"

"नाहर ने मारपीट की थी।"

"मगर आखिर क्यों·········?"

"नाहर ने मेरी जमीन दाब ली थी। मेरे कहने पर मारपीट पर उतारू हो गया।"

"उतारू हो गया, मारा तो नहीं·········।"

"मारा था, लाठी से।"

"हजूर ! गवाह के बयान पर ध्यान दिया जावे । गवाह के अनुसार जमीन भी कब्जे में थी व मारने पर आमादा हुआ । दूसरे बयान में उतारू होने की बात की है । फिर मारने की । मि लार्ड, गवाह के बयान बेबुनियाद हैं ।"

"बहस जारी रहे ।"

"तब सेठ दयाराम तुमने क्या किया ?"

"पुलिस में रिपोर्ट की ।"

"डाकटरी सार्टिफिकेट पेश किया था ।"

"जी नहीं........।"

"हजूर मुलाहिजा हो । मामूली सी बात को पुलिस ने केस बना लिया और नाहरसिंह डाकू होने पर मजबूर किया गया ।"

सरकारी वकील ने कहा—"मि लार्ड ! यह पुराना किस्सा है । उसे क्यों उखाड़ा जा रहा है । इसका केस से कोई ताल्लुक नहीं ।"

मृणाल ने कहा—"हजूर ! यह इस सारे केस की बुनियाद है । अब मैं नाहरसिंह से प्रश्न पूछना चाहती हूँ । सेठ दयाराम आप जा सकते हैं ।"

"इजाजत है ।"

"नाहरसिंह ! तुम्हारे साथ पुलिस ने क्या सलूक किया ।"

"सरकार ! यह पूछो, क्या नहीं किया । मारते मारते रात तक अधमरा कर दिया । दूसरे दिन भी पिटाई हुई । रात को मैं कराह रहा था । मैंने दूसरे सेठ दयाराम को रुपए देते हुए खुद देखा था । थानेदार साहब कह रहे थे-"फिक्र न करो सेठ ! जिन्दा वापस नहीं जायगा ।"

तीसरे दिन पुलिस ने रिमाण्ड लिया । मुझे रास्ते भर पीटा । मैंने समझ लिया । मेरी मौत इन सींखचों से बाहर न निकलने देगी । मैंने रात को रोशन-दान की मजबूत छड़ों को तोड़ दिया और अपनी जान बचाकर भागा ।"

मृणाल ने कहा—"हजूर जान किसे प्यारी नहीं होती । अगर नाहर के साथ न्याय होता, अच्छा सलूक होता तो आज नाहर ईमानदार किसान होता ।"

"दूसरा केस है दफा नं ३६२-३६५ का । लोगों को उठा ले जाने का अपराध ! इसके लिए मैं श्री नरेन्द्र श्रीवास्तव को पेश करना चाहती हूँ ।"

अदालत ने आज्ञा दी। नरेन्द्र बाबू कठघरे में पहुँचे। शपथ दिलाई। मृणाल ने पूछा—"आप इन्हें पहचानते हैं।"

"जी, ये हैं नाहरसिंह।"

"आप इन्हें कैसे पहचानते हैं ?"

"मुझे अम्बाह में ड्रामा समाप्त होने के बाद उठा ले जाया गया था। अड्डे पर पहुंचने पर इनसे मेरी मुलाकात हुई।"

"उठाने वालों में नाहर थे।"

"जी नहीं, कोई दो दूसरे आदमी थे।"

"योर आनर ! बयान पर ध्यान दिया जावे। नाहर ने आज तक किसी को स्वयं नहीं उठाया। उठाने वाले दूसरे लोग थे।"

सरकारी वकील उठ खड़े हुए बोले—"सरकार ! वे आदमी नाहर की आज्ञा से ही उठाते थे········।"

बीच ही में मृणाल बोली—"आज्ञा देने से पूरी सजा के मुस्तहक नहीं हो जाते। अगर आप किसी को कत्ल की आज्ञा दें तो यह साबित नहीं होता कि आपने कत्ल किया है।···············हजूर। मुझे आगे बढ़ने की आज्ञा दी जावे।"

"इजाजत है, बयान जारी रहे।"

"हाँ तो नरेन्द्र बाबू ! मैं यह पूछ रही थी कि नाहरसिंह ने आपके साथ कैसा सलूक किया।"

"बिल्कुल दोस्ताना········।"

"कितने रुपए मांगे········।"

"कुछ भी नहीं········।"

"क्यों····क्यों नहीं मांगे गए।"

"क्योंकि मुझसे कुछ लेना नहीं था।"

"हजूर ध्यान दें। नाहरसिंह ने किसी के साथ बुरा सलूक नहीं किया। सरकारी वकील एक भी ऐसा आदमी बताएँ जिसे नाहर ने अपने केम्प में ले जाकर सताया हो। रुपए अलबत्ता उनसे मांगे गए, जिनसे नाहर को कुछ लेना था। जिन्होंने नाहर की जमीन दाबी थी, मकान हड़प लिया था, जेवर गिरवी रखे

थे। उनसे नाहर किस तरह रुपया वसूल करता। उसने अपना सीधा तरीका अपनाया। और इसके सिवा उसके पास चारा भी क्या था ?"

"तीसरा केस है डाके का। सरकारी वकील ने अनेक डाकों के नाम गिनाए हैं, उनमें सन्तपुरा भी है। इस बारे में मैं श्री भँवरसिंह को पेश करना चाहती हूँ।"

"इजाजत है, भँवरसिंह हाजिर किये जावें।"

भँवरसिंह कठघरे में पहुँचे। शपथ ली। मृणाल ने पूछा—"जिस समय सन्तपुरा में डाका पड़ा था, आप कहाँ थे।"

"मैं वहीं था। मैं गाँव की रक्षा की व्यवस्था कर रहा था।"

"आपने डाके में नाहरसिंह को देखा था।"

"जी नहीं। उसमें जण्डेल और बोधासिंह ही आए थे।"

"क्या पुलिस की नाहर से मुठभेड़ हुई थी।"

"जी नहीं। सन्तपुरा के डाके में पुलिस ने केवल प्रोपेगेण्डा ही किया था। उसमें न तो नाहरसिंह ही थे, और न पुलिस ने डाकुओं का मुकाबला किया था। बोधासिंह को गाँव वालों ने पकड़ा था।"

"मि लार्ड! बयान पर ध्यान दिया जावे। ऐसे कितने ही डाकों के नाम पुलिस ने दर्ज किए हैं, जिनमें नाहरसिंह थे ही नहीं, या जिनसे नाहरसिंह से कोई सम्बन्ध न था। इस बात की पुष्टि में मैं दिनांक ३ मार्च १९५७ का यह अखबार पेश करना चाहती हूँ, जिसमें साफ लिखा है कि थानेदार ने डाकूदल से हुई मुठभेड़ की एक झूठी रिपोर्ट दर्ज की थी, जिसे डी. एस. पी श्री सरीन द्वारा मौअत्तिल किया गया। इससे जाहिर है योर अनर कि जितने डाकों के नाम दर्ज हैं, वे सही नहीं हैं। केवल अपराध की गुरुता बढ़ाने के लिए यह सब पूर्व-योजनाएँ हैं।"

"तीसरा केस है ३०२ में लोगों को गोली से उड़ाने का। हजूर मैं पूछना चाहती हूं, ये लोग डाके में गोली कब चलाते हैं? हर कोई जानता है कि जब इनको जान का खतरा होता है, तो ये गोली चलाते हैं। योर आनर! अपनी जान बचाने के लिए अगर गोली चलाई जावे तो धारा १६ के अनुसार वह सजा का हकदार नहीं है। बहुत सी गोलियाँ भागते भागते छोड़ी जाती हैं, जिनके पीछे कोई इरादा नहीं होता, अतः भूल से छूटी हुई गोली से मृत्यु भी अपराध का

कारण नहीं बनती । मि लार्ड ! अगर यह सच है कि नाहर ने जानबूझ कर किसी को गोली से मारा हो तो उन नामों की सूची पेश का जावे । उनके घावों से निकली गोली पेश की जावे और उनके नम्बर का मिलान किया जावे । उनमें बहुत सी गोलियाँ वे होंगी जो पुलिस जवानों द्वारा दागी गई थीं ।''

सरकारी वकील उठ खड़ा हुआ – ''हुजूर ! सफाई की आदरणीया वकील जुर्म को छुपाने की कोशिश में यह भूली जा रही हैं कि डाकुओं की गोली के नम्बर दर्ज नहीं होते, अतः उनका सबूत दिया जाना नामुमकिन है ।''

मृणाल ने गरज कर कहा—''तब यह कैसे मान लिया जाय कि जो खून हुए हैं वे नाहर की गोली से ही हुए हैं । हजूर सरकारी वकील गवाह पेश करें, सबूत पेश करें ।''

सरकारी वकील ने लाल होकर कहा—''हजूर ! इस बात के गवाह वे हजारों लोग हैं, जिन्होंने गोलियाँ चलते अपनी आँखों से देखी हैं ।''

मृणाल ने कहा—''यह सरासर गलत है हजूर ! जब गोलियाँ चलती हैं तो उन्हें देखने के लिए कोई खड़ा नहीं रहता । अपनी जान सबको प्यारी होती है । उस समय सर छुपाने की पड़ती है, गोलियाँ देखने और गिनने की नहीं । इसलिए यह सिद्ध नहीं होता कि नाहरसिंह ने जानबूझ कर किस की हत्या की हो ।''

'इसी तरह सड़क तोड़ने का इल्जाम लगाया गया है । सड़क बरसात में टूटी थी, जिसे नाहर के आदमी होशियारी से पार गए थे और सिपाही इधर खड़े ही रह गए । थाने में आकर उसकी रिपोर्ट इस प्रकार दर्ज कराई गई ।'

''थाने जलाने की भी बात कही गई है । थाना जला था कारतूसों के स्टोर में आग लगने से । अगर सही बात की रिपोर्ट दर्ज होती तो थानेदार और सिपाहियों को सजा होती, मगर हरएक नुकसान डाकुओं के नाम दर्ज किया जाता रहा है, क्योंकि इसमें बचने की बहुत गुंजायश है ।'

'माई लार्ड ! आपने और जूरी साहबान ने ध्यान से सुना कि मुल्जिम नाहरसिंह पर लगाए गए इलजामात सही नहीं हैं, उनके कोई आधार नहीं हैं, उनके कोई सबूत नहीं हैं । अतः उन पर विचार नहीं किया जा सकता ।'

'दूसरी तरफ नाहरसिंह के बारे में जानकारी हासिल की जावे तो इलाके का हर एक आदमी, उसकी इज्जत करता है । क्यों ? क्योंकि उसने आज

तक किसी गरीब को नहीं सताया, किसी स्त्री पर कुदृष्टि नहीं डाली। उसने गरीबों की सहायता की है। दान दिया है, दहेज दिया है। डी. एस. पी. श्री सरीन व नरेन्द्र बाबू को भली प्रकार ज्ञात है कि युवक सेवक समाज के कर्मभूमि के लिए उसके दल ने कड़ा परिश्रम करके पाँच हजार रुपए दान दिए हैं।'

'नाहरसिंह एक भला आदमी रहा है। पिछले कई महीनों से तो उसने बन्दूक भी नहीं उठाई। वह एक भक्तप्राण आदमी है। दोनों समय पूजा करता है, रामायण का पाठ करता है।'

'अब आप ही कहिए योर आनर ! ऐसे आदमी को कैसे फाँसी की सजा दी जाए। मानवता का गला किस प्रकार घोट दिया जावे। और सबसे बड़ी बात यह है कि ये बन्दी नहीं हैं। इन्होंने स्वयं आत्मसमर्पण किया है, अपने आप उपस्थित हुए हैं। प्रायश्चित की ज्वाला में जल चुके हैं। कहिये सरकार ! इससे बड़ा दण्ड इन्हें और क्या मिलेगा। माई लार्ड सहृदयतापूर्वक विचार किया जावे। बस मुझे यही कहना है

अदालत ने सबकी ओर दृष्टि डाली, पूछा—"और किसी को कुछ कहना है।"

सब चुप खड़े थे, निर्णय की प्रतीक्षा में। सबके हृदय धड़क रहे थे। एक पहेली हलचल मचा रही थी। क्या होगा। मृणाल पसीना पोंछती अपनी जगह पर आ बैठी। जज साहब ने जूरी साहबान की ओर देख कर कहा—"जूरी महोदय ! आपने मुकदमे की सारी तफ्सील अपने सामने सुनी। अब आप अपनी राय जाहिर करें। यह एक अहम मामला है, और इसी निर्णय पर दूसरे लोगों का भी भाग्य टिका हुआ है, अतः इस पर मनोयोगपूर्वक विचार किया जावे।"

जूरी लोग पास के कमरे में गए। परामर्श किया थोड़ी देर बाद सब लौट आए। अपना निर्णय जज साहब को पेश कर दिया। जज महोदय ने स्वयं विचार किया, फिर धीरे-धीरे बोले—"मुल्जिम नाहरसिंह के अपराध गम्भीर हैं। किन्तु उनकी तह में उसकी बदनीयती नहीं झलकती। अतः उसे धारा ३६१ के अन्तर्गत दस साल के कारावास का दण्ड दिया जाता है।" यह कह कर अदालत उठ गई।

'हाल तालियों से गूंज उठा। सभी चर्चा करते हुए बाहर निकले। नाहर पुलिस की कस्टडी में जाने को हुआ। नरेन्द्र और मृणाल को देखा तो आँखें भर

आईं। नरेन्द्र ने उसके आंसू पोंछे। बोला—"कमजोर न बनो नाहर, तुमने अपने पर विजय पाई है।"

मृणाल बोली—"हमने तुम्हें काल के गाल से निकाल लिया है। इन सींखचों में से भी निकालने का प्रयत्न करेंगे।"

भँवरसिंह ने कहा—"जी हल्का न करो नाहर ! हम हमेशा तुम्हारे साथ हैं।"

नाहरसिंह हिचकी लेकर बोला—"मैं रो नहीं रहा हूँ। मैं चाहता हूँ, अपने आँसुओं से तुम्हारे चरण धो दूँ। जिस देश में तुम जैसे नौजवान लड़के-लड़कियाँ हों, उसका पीढ़ियों तक कोई बाल बांका न कर सकेगा।"

"हम तुमसे मिलते रहेंगे नाहर ! तुम हमारी आशाओं को रखना। सादा जीवन बिताना।" मृणाल बोली।

"नाहर तो मर गया बहन ! अब तो मैं नरहरी हूं, बचपन का नरहरी।" इस प्रकार सिसकता हुआ नाहर सिपाहियों के साथ चला गया।

मृणाल, नरेन्द्र और भँवरसिंह गद्गद हृदय लिए अदालत से बाहर हुए।

३९

दूसरे दिन युवक सेवक समाज की बैठक हुई। नरेन्द्र के चले जाने और मृणाल के पिता के देहान्त के कारण उसके कार्यों में उदासीनता आ गई थी। इधर भँवर-सिंह और रूपा भी अपनी अपनी व्यथाओं से पीड़ित थे। डायना के दुखद अन्त का भी समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा था और ऐसा घाव किया था जो पुर नहीं पा रहा था। नरेन्द्र के लौट आने से आशा की किरणें फिर चमकने लगीं, किन्तु इतने दिन नरेन्द्र अन्य आवश्यक कार्यों में इतना व्यस्त था कि सदस्यगण अपनी कोई योजना कार्यान्वित नहीं कर पा रहे थे। नाहर के मुकदमें में विजय को युवक सेवक समाज अपनी विजय मानकर गौरव अनुभव करने लगा। उसमें हर्ष की एक लहर छा गई और सभी कार्यकर्ता सक्रिय हो उठे। भोर होते ही रमा मृणाल के यहाँ पहुँचा, बोला—"दीदी, अगर आपको अवकाश हो तो साँझ को युवक सेवक समाज कार्य-कारिणी की बैठक बुलाई जाय।"

"हाँ! हाँ! विचार अच्छा है" मृणाल ने कहा—"मगर इतना ख्याल रहे कि नरेन्द्र जी के सामने समाज की गरिमा की अवहेलना न की जाय।"

"मैं समझ गया, आप निश्चिन्त रहे।"

"तब ठीक है, सब व्यवस्था सँभाल लेना।"

रमाकान्त चला गया। मृणाल उठी, ऊपर के कमरे में आई। धीरे से किवाड़ खोला। देखा, 'नरेन्द्र मेज पर झुका लिखने में व्यस्त है। आहट पाकर बोला—"आओ मृणाल""""तुम इतनी देर से आई""""मैं कब से प्रतीक्षा कर रहा था।"

"मैं समझी थी, आप सो रहे होंगे, मगर आप तो""""।"

"अपनी थीसिस का पूर्वार्ध पूरा कर रहा था.........मैं चाहता हूं कुछ दिन मन लगा कर मेहनत की जाए और इसे पूरा कर लिया जाय.....।"

"मेरे कारण आपके इस कार्य में बहुत व्यवधान पड़ा।" मृणाल ने कहा।

"यह तुम कहती हो। तुम तो मेरी प्रेरणा हो। तुम्हारे बिना तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता.........।"

"जभी तो बस्तर अकेले चले गए थे तुम?" मृणाल ने चुटकी ली।

"तुमने ही भेजा था.........क्यों है न?" नरेन्द्र ने मुस्करा कर कहा।

"हाय ....तुम्हें कैसे मालूम?"

"केन्द्रीय कार्यालय के पत्रों द्वारा" नरेन्द्र ने कहा—"पर तुमने यह एहसान ही किया। इतने दिनों में परिस्थितियाँ अपने आप में उलझ उलझ कर तीव्रतम होती गईं। हो सकता है मैं यहाँ रहता तो.....।'

मृणाल ने कहा —"यही तो मैंने सोचा था।"

नरेन्द्र ने कहा—"नहीं तो कब मैं तुम्हारी आँखों से दूर होना चाहता था। तुम्हारे लिए कितना तड़पा, तरसा हूँ.........।"

बीच में मृणाल ने कहा—"अच्छा! अब छोड़ो बातें.........चलो नीचे चाय पी जाए.........उठो।"

"चलो! मुझे तो तुम्हारी हर आज्ञा मान्य है।"

वे दोनों नीचे आए। देखा भँवरसिंह उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। बोले—"नरेन्द्र बाबू! कक्का आपसे मिलने आए हैं।"

दोनों ने दृष्टि घुमा कर देखा, पास ही कक्का बैठे मुस्करा रहे हैं, बोले—"मृणाल बिटिया के जनम जनम गुन गाऊँगा। जगडेल को फाँसी के फन्दे से बचा लिया। पाँच साल की सजा हुई है। मेरे बेटे को।"

"पाँच साल की?" नरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ! सिर्फ पाँच साल की। डी० एस० पी० सरीन की सिफारिश पर। उनके बयान के अनुसार जगडेल ने यह अपराध पहली बार किया था और छीतू चमार ने अपनी अपील वापस ले ली थी।"

मृणाल ने कहा—"अब पाँच साल बाद मेरा भाई जेल से आएगा तो उसका ब्याह धूमधाम से रचाऊँगी।"

"अब तो पाँच साल तक मैं मृणाल बिटिया की सेवा टहल करूँगा, तब उऋण होऊँगा।" ठाकुर ने कहा।

"क्यों नरक में ढकेलते हो कक्का, "मृणाल ने कहा—"आओ अपन चाय पीएँ। आओ भँवरसिंहजी !"

सब ड्राइंग रूम में पहुंचे। वहां चाय तैयार थी। सब लोग बैठ गए। मृणाल ने चाय बनाई। सबको दी। चुस्की लेते हुए नरेन्द्र ने कहा—"अब क्या विचार है कक्का ?"

"जैसा भँवरसिंह जानें।"

"मैं तो अब यहीं रह कर कुछ ठोस कार्य करूँगा।" भँवरसिंह ने कहा।

"मैं भी इनके पास पड़ा रहूँगा।" ठाकुर बोले।

"नहीं, नहीं, कक्का आप गाँव चले जाँय।" मृणाल ने कहा।

"गाँव में कौन है मेरा। यहाँ रहूँगा तो जराडेल के दुख-सुख की पूछ आया करूँगा। उसे देखते-देखते ही ये दिन कट जाएँगे।"

"जराडेल की आप फिक्र न करो, आखिर वह मेरा भी कुछ है।" भँवरसिंह ने कहा—"आप गाँव जाकर सब सँभालें।"

"हाँ कक्का !" नरेन्द्र ने कहा—"वहाँ खेत क्यार, घर सब बर्बाद हो रहे होंगे। पाँच साल में और भी मिट जाएंगे। पाँच साल की दस फसलें उगाओगे। जराडेल आएगा तो घर को चाँदी से और खलियान को अनाज से भरा पाएगा, तो पिछला दुख भूल जाएगा। उसकी छाती दूनी हो जाएगी।"

"हाँ ! आते ही उसकी शादी भी तय करनी है। घर को सजा संवार कर रखना कक्का !" मृणाल बोली।

"ठीक है बेटा," ठाकुर बोले—"अगर तुम सब लोगों की यही राय है तो मैं चला जाऊंगा। पर तुम भी उधर आते रहना। मुझ बूढ़े को भूल न जाना।"

"कैसी बातें करते हो कक्का," भंवरसिंह बोले—"मैं हर महीने आया करूंगा आपके पास।"

"और मैं हर साल" मृणाल बोली।

"सावन में ही न ?" ठाकुर ने कहा। सब हँस पड़े। ठाकुर विदा हुए। भँवरसिंह चलने को तत्पर हुए, तो मृणाल ने कहा—"शाम को युवक सेवक समाज की बैठक है, आपको सूचना तो मिलेगी। मगर आप अवश्य आएँ।"

"जरूर आऊँगा। अब तो मैं उसका एक सिपाही हूँ, उसके लिए मैं अपना जीवन दूंगा। अच्छा नमस्ते।"

"अच्छा ! नमस्ते ।" दोनों ने हाथ जोड़े ।

दिन भर नरेन्द्र ने अपनी थीसिस सुनाई । बस्तर के अनुभव सुनाए । बेडमी की लगन और तपस्या के बारे में बताया । मृणाल बोली—"सच बताओ....कैसी थी बेडमी ?"

"तुम जैसी........" नरेन्द्र न हँसकर कहा---"रूप से नहीं, हृदय से ।"

शाम को रमा आया, बोला—"चलो दीदी, नरेन्द्र बाबू को विशेष रूप से लेती चलें ।"

"वे तो चलेंगे ही, उसके मंत्री जो हैं।"

"क्या अब भी....?"

"त्यागपत्र दिया है क्या अभी ?"

"जी नहीं अध्यक्षा महोदया ।" नरेन्द्र ने कहा । सब हंस पड़े । सब लोग कार्यालय पहुँचे । सब लोग उपस्थित थे । नरेन्द्र सबके गले मिला ।

मृणाल की अध्यक्षता में बैठक आरम्भ हुई। नरेन्द्र ने कहा—"युवक सेवक समाज एक मिशन है, जिसमें आज के हर युवक को योग देना चाहिए और देश के भावी कर्णधार के नाते आज चिन्तन करना चाहिए । जैसा समाज हम आज से दस साल बाद चाहते हैं, उसकी नींव आज से ही रखनी चाहिए । इसीलिए युवक सेवक समाज का संगठन अपने में एक महत्वपूर्ण कदम है । आज की युवा पीढ़ी का नया निर्माण करना है, नए मूल्य स्थापित करना है, किन्तु पुरातन से सामंजस्य स्थापित करके, अपने बुजुर्गों का आदर करके। उसके गलत मार्गों को बन्द करना है और आज के युवकों में छाई उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता और कहीं-कहीं फैली निराशा को दूर करना है और उसके उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की नींव रखनी है ।"

नरेन्द्र ने आगे कहा,—"ऐसे संगठनों में चिर नवीनता बनी रहे, अतः सदैव नए रक्त का स्वागत करना चाहिए, नए कन्धों को नए उत्तरदायित्व सौंपना चाहिए। इसी परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए मैं आपका आह्वान करता हूँ ।"

नरेन्द्र के बैठने पर मृणाल ने कहा—"मैं नरेन्द्रजी के प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करती हूँ और इसी परम्परा में एक अध्याय और जोड़ना चाहती हूँ मैं भी अपने पद से विदा माँगती हूँ, आशा है सदस्यगण इसे स्वीकार करेंगे ।"

अजरा ने कहा—"यह एक स्वस्थ विचार है किन्तु मैं आशा करती हूं कि आप अपना उचित मार्ग-दर्शन देते रहेंगे।"

नरेन्द्र ने कहा—"हम इसके सक्रिय सदस्य बने रहेंगे।"

शर्मा बोला—"तब नव निर्वाचन हो जाना चाहिए।"

लतीफ ने कहा—"हाँ ! आज ही ! आज से अच्छा दिन फिर कब मिलेगा।"

हार्डिकर ने कहा—"मैं प्रस्ताव रखता हूं कि अध्यक्ष पद के लिए भँवर-सिंह के नाम का सर्वसम्मति से समर्थन किया जाय।"

"हियर··· हियर !" चारों तरफ से आवाज आई। अजरा ने कहा—"इस प्रस्ताव का सब लोग समर्थन करते हैं, अब मंत्री पद के लिए मैं·········।"

बीच ही में रमा उठकर बोला—"मैं मिस अजरा खान का नाम प्रस्तावित करता हूं।"

अजरा बोली—"अध्यक्षा महोदया, पहले मुझे प्रस्ताव रखने की इजाज़त दी जाए।"

मृणाल ने हंसकर कहा—"हाँ ! कहो ! अजरा क्या चाहती हो।"

अजरा ने कहा—"इस पद के योग्य रमा भाई हैं, अतः मैं सदस्यों से अनुरोध करती हूं कि वे रमा भाई का समर्थन करें।"

रमा बोला—"नहीं अजरा बहन का।"

नरेन्द्र—"तब चुनाव वोट द्वारा कर लिया जाए।"

शर्मा ने कहा—"नहीं चुनाव सर्व-सम्मति से ही हों। मेरी राय में मंत्री पद पर रमाकांत रहे और सहायक मंत्री के रूप में अजरा खान।"

"यह ठीक है····यह ठीक है" सब ने कहा।

"एक प्रस्ताव मेरा है" भंवरसिंह ने कहा, "हमारा एक कार्य अर्ध-व्यवस्थित पड़ा है, 'कर्मभूमि' का। मेरी राय में उसका उद्‌घाटन समारोह सम्पन्न हो जाना चाहिए।"

अजरा बोली—"मेरी प्रार्थना है कि कर्म-भूमि का उद्‌घाटन श्रीयुत नरेन्द्र श्रीवास्तव के हाथों कराया जाय। जिस व्यक्ति ने उसकी नींव रखी है, वही इसे पानी दे, सरसब्ज होने और परवान चढ़ने का आशीर्वाद दे।"

मृणाल बोली—"युवक सेवक समाज की मंत्राणी के प्रस्ताव का सब समर्थन करते हैं और श्री भंवरसिंह व श्री रमाकांत को इस योजना का दायित्व सौंपते हैं। कल पन्द्रह अगस्त है अतः इस पुण्य पर्व पर यह कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिए।"

सभा के बाद चाय पान हुआ। नरेन्द्र ने कहा—"रूपा नहीं आई, न जाने क्यों ?"

"पूछूंगी ताई से" मृणाल ने कहा।

"बहुत दिन से मुझे भी नहीं दिखी" भंवरसिंह ने कहा।

"यह रही मैं" रूपा ने एक ओर से आकर कहा—"चाय पार्टी का दायित्व संभाला था मैंने ?"

"बैठक में क्यों न आई ?" मृणाल ने पूछा।

"इसलिए कोई अध्यक्षा पद के लिए नाम न ले दे।" भंवरसिंह ने कहा।

सब हंस पड़े।

कर्मभूमि के उद्घाटन का भव्य आयोजन मृणाल के बंगले पर किया गया। भंवरसिंह दिन भर व्यवस्था में लगे रहे। रमाकांत इधर से उधर भागता रहा। शर्मा, हार्डिकर, लतीफ आदि ने भारी उत्साह से काम किया। अजरा, शीला, मीना आदि भी लगी रहीं।

शाम को बगला सजकर नई दुलहिन-सा लग रहा था। चारों तरफ जगमगाहट छा रही थी। उस भव्यता में सब ओर सादगी दीप्यमान थी। द्वार मंगल तोरण से सजाए गए थे। रूपा ने अपने हाथ से मालाएं गूंथी थीं।

आठ बजे तक सभी युवक, युवतियां, नगर के संभ्रांत जन आदि उपस्थित हो गए। नरेन्द्र को लिए मृणाल आई। खादी के कुर्ते पाजामे और पीली बास्कट में नरेन्द्र बड़ा भला लग रहा था। युवकों का उत्साह देखकर उसका हृदय फूला न समाया। सब लोग यथास्थान बैठे।

नफीरी बजी, सब ध्यानस्थित हुए। पर्दा खुला, हाथ जोड़े भँवरसिंह सामने आए। सबको प्रणाम किया, बोले—"मेरे नौजवान साथियो और गुरुजन! आज युवक सेवक समाज के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ रहा है। अब युवक सेवक समाज के पास केवल समाज सेवा व निर्माण का ही कार्य नहीं है, बल्कि उसे स्वयं के शोध, परिमार्जन के साथ अपने समाज के लिए ठोस कार्यकर्ता तैयार

करने हैं। साथ ही युवकों की मानसिक, आर्थिक अक्षमताओं से संघर्ष करना है। इसीलिए आज हम अपनी इस संस्था के अन्तर्गत एक और क्रियाशील कर्मठता का अध्याय जोड़ रहे हैं।

यह हमारा सौभाग्य है कि इस विचार के प्रथम प्रवर्तक श्री नरेन्द्र श्रीवास्तव हमारे बीच उपस्थित हैं। मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि वे इस पनपते बिरवे को आशीर्वाद दें, इसका उद्‌घाटन करें।

नरेन्द्र को साथ लेकर मृणाल उठी। स्टेज पर आए। हाल तालियों से गूँज उठा। नरेन्द्र को मालाओं से लाद दिया गया। अजरा ने माइक पर घोषणा की—"आप लोगों को सुनकर हर्ष और गौरव होगा कि कर्मभूमि के लिए बहन मृणाल ने यह बंगला व अपनी सम्पत्ति दान दी है। इस शुभ अवसर पर हम उनका भी स्वागत करते हैं।"

मृणाल को भी मालाओं से लाद दिया गया। हाल फिर तालियों से गूँज उठा। मृणाल को भी पास ही कुर्सी पर बिठाया गया। नरेन्द्र उठा, माइक पर पहुँचा, बोला—

"मेरे समवयस्क साथियो, व गुरुजनो !

आज मुझे आप लोगों के बीच बातें करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है। अपने समाज की वृद्धि देखकर किसे प्रसन्नता न होगी। युवक सेवक समाज, अखिल भारतीय स्तर का संगठन है और हम प्रयत्नशील हैं कि इसे अन्तर्राष्ट्रीय रूप दिया जाय, जहाँ संसार के युवक अपने विषय में राजनैतिक दलदल से दूर रह कर कुछ चिन्तन कर सकें। मुझे आशा है आप इस पौधे में लगातार अपने सहयोग का जल देते रहेंगे, और एक दिन यह पौधा पूर्ण वृक्ष बनकर अपने आत्मीय जनों को शीतल छाँव प्रदान करेगा।

'कर्मभूमि' का विचार मेरे मस्तिष्क में तब उत्पन्न हुआ जब मैंने देश के युवकों में फैली निराशा की घटाएँ देखीं। और ये निराशाएँ बेबुनियाद नहीं थीं। आज का युवक अध्ययन कर सकता है, समाज सेवा व निर्माण में पीछे नहीं है। किन्तु क्या केवल इतने से ही उसका मार्ग प्रशस्त होता है। आज कितने पढ़े-लिखे युवकों की प्रतिभाएँ केवल सड़कों पर रातें बिताती हैं। उनके सामने कोई योजना नहीं है, कोई मार्ग नहीं है, कोई काम नहीं है।

इसलिए विचार आया कि क्यों न एक जगह बैठ कर इस समस्या का सब मिलकर समाधान करें। बेकारी से संघर्ष करें। क्यों न एक दूसरे के दुख में हाथ बटाएँ। कुछ काम सीखें, अपने जीवन को गलत राह पर जाने से बचाएँ।

'कर्मभूमि एक ऐसी ही संस्था होगी, जिसमें सिद्धान्तों के सही प्रतिपादन के साथ कर्म की प्रधानता होगी। यहाँ युवकों, युवतियों को छोटे धन्धों के लिए प्रशिक्षित किया जायेगा। आगे पढ़ने की सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी। असहाय युवकों की भरसक सहायता होगी, उनकी आवश्यकता की पूर्ति होगी।

इस प्रकार हमारे नवयुवकों का मस्तिष्क विकृत होने से बचेगा। समाज में नैतिकता और अनुशासन का मूल्य बढ़ेगा और समाज को सच्चे कार्यकर्ता प्राप्त होंगे।

'कर्मभूमि' के संचालन के लिए एक हजार रुपये हम लोगों ने एकत्र किए थे, पाँच सौ हमें नाहरसिंहजी द्वारा प्राप्त हुए। किन्तु इस छोटी धनराशि से इतनी बड़ी योजना कार्यान्वित नहीं हो सकती थी, इसीलिए अब तक 'कर्मभूमि' का रूप बहुत छोटे स्तर पर था। किन्तु अब उसे श्री मृणाल देवी का यह भवन और दो लाख की सम्पत्ति प्राप्त हो गई है, उसके लिए मैं, युवक सेवक समाज की ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं। उन्होंने देश के धनी व्यक्तियों के समक्ष एक उदाहरण रखा है कि हमें समाज को सशक्त बनाने के लिए त्याग करना होगा। उनका यह कार्य निश्चय ही सराहनीय है।

अब मैं आशा करता हूं कि युवक सेवक समाज के साथ-साथ 'कर्मभूमि' भी दिनों-दिन उन्नति करेगी, और देश के युवकों को जीवन देगी। युवक सेवक समाज के कार्यकर्ताओं को मेरा परामर्श है कि 'कर्मभूमि' के कार्य सम्पादन के लिए एक अलग व्यक्ति को दायित्व सौंपना चाहिए। वह व्यक्ति ऐसा हो जो युवक-युवतियों दोनों की पीड़ाओं को समझता हो, जो लगन से इसका कार्य कर सके और जो अपना पूरा समय इसके लिए दे सके।

अंत में मैं समाज के प्रधान, मंत्री, मंत्राणी तथा अन्य सदस्यों का हृदय से आभारी हूं कि मुझे आप लोगों ने दो शब्द कहने का अवसर दिया। मैं तो आप लोगों में से ही एक युवक हूँ और इसीलिए मैं आपकी इन प्रतिस्थापनाओं की हृदय से मंगल कामना करता हूँ। अच्छा धन्यवाद।"

नरेन्द्र बैठ गया। रमाकांत ने धन्यवाद देते हुए कहा—"हम श्री नरेन्द्रजी के परामर्श का हृदय से स्वागत करते हैं और इसीलिए श्री मृणाल देवी, श्री ंवरसिंह, कुमारी अजरा खान इन तीनों की सम्मिलित सम्मति से 'कर्मभूमि' के कुशल संचालन के लिए युवक सेवक समाज की कर्मठ सदस्या कुमारी रूपवती का नाम घोषित करते हैं, आशा है वे इस नये उत्तरदायित्व को सहर्ष स्वीकार करेंगी। हमें उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।"

रूपा उठी, बोली—"युवक सेवक समाज के नए मंत्री की आज्ञा मुझे मान्य है, अथवा अनुशासनहीनता की दोषी हूंगी। अब मैं आप सब लोगों का आशीर्वाद चाहती हूँ ताकि मैं अपने कार्य में सफल हो सकूं।

इके बाद विशाल पार्टी का आयोजन हुआ। तरह-तरह की चर्चाओं की भीनी गन्ध में पार्टी समाप्त हुई।

४०

एक सप्ताह के लिए नरेन्द्र और मृणाल दिल्ली आ गए। वहाँ युवक सेवक समाज के केन्द्रीय कार्यालय में दोनों का भव्य स्वागत हुआ। नरेन्द्र ने अपने केन्द्र की गतिविधियों से परिचय कराया व कर्मभूमि की योजना समझाई। राजधानी के युवकों को यह योजना बहुत बहुत पसन्द आई। महामंत्रीजी ने इसे सभी केन्द्रों पर विकसित करने की आशा व्यक्त की। उन्होंने नरेन्द्र से बस्तर के बारे में भी बातचीत की और नरेन्द्र के प्रयासों से प्रभावित भी हुए, और अधिक सम्भावनाओं की आशा व्यक्त की।

इस प्रसंग से नरेन्द्र अधीर हो उठा। उसका हृदय बार-बार वहाँ पहुँचने के लिए बेचैन हो गया। ग्वालियर आते ही उसने अपना इरादा पक्का कर लिया। मगर वह मृणाल से किस प्रकार कहे। बार-बार कहने को होता, कि हिचक उसे रोक लेती। यह अप्रिय प्रसंग छेड़कर वह उसे दुखी नहीं करना चाहता था। वह जानता था कि मृणाल ने केवल उसके लिए इतने बड़े वैभव का त्याग किया है, अब वह किस प्रकार उससे कहे कि वह जाना चाहता है। मगर बस्तर के भोले-भाले पिछड़े लोग उसकी आँखों में नाच रहे थे, और उसका हृदय जल्दी से जल्दी वहाँ पहुंचने को मचल रहा था। वह सोचता था कि यहाँ अब मुझे काम ही क्या है? सब काम योग्य व्यक्तियों को सौंप दिया है, क्यों न मैं अपने मार्ग पर बढ़ूं। और उसके रिसर्च का भी काम अधूरा है, उसे वहीं पहुंच कर पूरा किया जा सकता है। नहीं''''नहीं''''वह किसी भी मूल्य पर नहीं जाएगा। किसी प्रकार वह अपनी मृणाल को मना लेगा और उसकी स्वीकृति प्राप्त कर लेगा।

एक दिन अचानक उसने कहा—"मृणाल! मेरा अधूरा काम मुझे याद कर रहा है'''मैं जा रहा हूँ'''?"

"हाँ ! आप जा रहे हैं, किन्तु मेरे साथ।" मृणाल ने कहा।

"क्या मतलब ? तब क्या तुम मेरे साथ बस्तर चलोगी ?" नरेन्द्र ने अवाक् होकर कहा—"क्या सच तुम मेरे साथ वहाँ की विषमताओं से संघर्ष करोगी···· ओह···!"

मृणाल ने कहा—"हाँ ! निश्चय ही। मैं तुम्हारे साथ आग पर चलूँगी ····काँटों पर भोऊंगी। रूखा खाऊंगी और मुस्कराऊंगी।"

"ओह ! मेरी अच्छी मृणाल ! तब चलें अपना सामान संभालें।"

"सामान संभल चुका है रिसर्च स्कालर साहब ! आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा थी।" मृणाल ने हंसकर कहा।

सुबह तक सब जगह खबर फैल गई कि नरेन्द्र और मृणाल, साढ़े ग्यारह के मेल से जा रहे हैं, बस्तर के लिए। सब लोग स्टेशन की ओर उमड़ पड़े। ग्यारह बजे तक स्टेशन भीड़ से भर गया। दोनों मालाओं से लाद दिए गए। वे सबसे गले मिल रहे थे और हंस हंस कर बातें कर रहे थे।

भवरसिंह ने कहा—"नरेन्द्र बाबू ! कुछ दिन तो आप मार्ग-दर्शन देते ! इतनी जल्दी क्यों····?"

नरेन्द्र ने कहा—"तुम्हारी योग्यता पर मुझे विश्वास है।"

रमा ने रुआंसे होकर कहा—"दीदी ! आपने मेरा तो ख्याल किया होता।"

मृणाल हंसी, बोली—"रमा ! तुम बहुत होनहार निकलोगे, मुझे तुमसे बड़ी-बड़ी आशाएं हैं।"

शर्मा, लतीफ, हार्डिकर मालाओं से लादकर रो पड़े। नरेन्द्र ने कहा—"है····यह क्या ! तुम तो इतने समझदार हो, फिर भी····।"

अजरा बोली—"हमें छोड़कर जा रही हैं दीदी। आज ऐसा लग रहा है दीदी सच जैसे आप ससुराल जा रही हों।"

सब हंस पड़े। उसकी चुटकी से मृणाल को याद हो आई बोली—"रूपा कहाँ है, दिखती नहीं।"

कोई कुछ कहे कि देखा गेट से सजी सिमटी-सी रूपा सरीन के साथ आ रही है। दोनों ने आकर नरेन्द्र और मृणाल को मालाओं से लाद दिया।

मृणाल ने ध्यान से देखकर पूछा—"अरी सच...?"

"मैंने अपनी भूल सुधार ली है मृणाल ! आप जीत गईं । हमने विवाह कर लिया है।" सरीन ने कहा।

"बधाई....बधाई ! अरे मिठाई तो खिलाते।" नरेन्द्र ने कहा।

"मिठाई खाने का मौका आप ही कब दे रहे हैं" भँवरसिंह ने कहा।

अजरा ने कहा—"भंवरसिंहजी ! ऐसे माहौल को देखकर आपकी कविता बन रही होगी !"

भंवरसिंह ने कहा—"एक नहीं, दो दो। भाई सरीन का मैं बहुत एहसानमन्द हूं, कि उन्होंने मेरी बात रखी।"

"एहसान तो मैं मानता हूँ कवि जी ! कि आपने मुझे रोशनी दी।" सरीन ने कहा।

"अरे काहे के एहसान हो रहे हैं, हमको भी मालूम पड़े।" मृणाल ने हंसकर कहा।"

"नई दुलहन पाने के।" नरेन्द्र ने कहा।

रूपा लजा गई। इतने में रामवती भी आ गई। मृणाल से लिपटते हुए बोली—"बेटी ! तेरा एहसान मैं जनम-जनम न भूलूंगी। तूने मेरी नाव किनारे लगा दी।"

मृणाल हंसी, बोली—"तो मुझे भी एहसान मिल गया। ताई ! मैं तो तेरी बेटी हूँ....।"

"और नरेन्द्र बाबू.... ?" रूपा ने धीमे से कहा।

मृणाल लजा गई। इतने में घण्टी बजी। मेल धड़धड़ाता हुआ आ गया। रुका। दोनों चढ़े। सबने सामान रखा। सब ने हाथ जोड़े। इतने में गेट पर भीड़ में आवाज हुई। सबका ध्यान उस ओर मुड़ गया। सबने देखा, स्पेशल कस्टोडी में नाहर आ रहा है। आते ही पैरों में गिर गया, बोला—"भाग्य में दर्शन बदे थे। मेरी साध पूरी हो गई।"

नरेन्द्र ने उसे छाती से लगा लिया—"नाहर, तुम फिक्र न करो ! हम शीघ्र लौटेंगे। हमारे आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"

"मुझे भी तो आशीर्वाद दो, अपने बचपन के सहपाठी को क्या कुछ भी न दोगे।" सरीन ने मुस्कराकर कहा।

नरेन्द्र ने कहा—"तुम से एक प्रार्थना है। इस क्षेत्र को शान्त रखना। बन्दूक से नहीं; प्रेम से, दया से।"

मेल ने सीटी दी। धीरे-धीरे चल दिया। दोनों ने हाथ जोड़े। हजारों हाथ जुड़ गए। मेल ने स्पीड पकड़ी। वे देखते रहे। हाथ, रूमाल बराबर हिल रहे थे।

मेल अपनी तीव्र गति से लम्बा मार्ग तै करता जा रहा था। दूर चार आँखों में मोती झिलमिला रहे थे।